उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका

अक्तूबर-दिसंबर, 2012

निर्णय-सूची

	पृष्ठ संख्या
अंग्रेज सिंह **उर्फ** काका और एक अन्य **बनाम** हिमाचल प्रदेश राज्य	314
आदर्श कोआपरेटिव हाउसिंग सोसाइटी लिमिटेड **बनाम** भारत संघ और अन्य	264
इम्तियाज अहमद भाट **बनाम** एफ. आई. एल. इंडस्ट्रीज लिमिटेड	217
गुड्डा **उर्फ** सुल्तान सिंह और एक अन्य **बनाम** मध्य प्रदेश राज्य	229
चुहरू राम और एक अन्य **बनाम** हिमाचल प्रदेश राज्य	343
दीपक सुधाकर वकालेकर **बनाम** महाराष्ट्र राज्य और अन्य	246
धन सिंह और एक अन्य **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य	175
नाटू लाल और एक अन्य **बनाम** राज्य	287
राजेन्द्र **बनाम** हिमाचल प्रदेश राज्य	334
श्याम वर्मा **बनाम** हिमाचल प्रदेश राज्य	326
सुनील चंदेल **बनाम** हिमाचल प्रदेश राज्य और अन्य	299
हिमाचल प्रदेश राज्य **बनाम** श्रीमती उषा रानी और एक अन्य	307

संसद् के अधिनियम

न्यायालय अवमान अधिनियम, 1971 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ (1) – (13)

अक्तूबर-दिसंबर, 2012 (संयुक्तांक)

उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका

प्रधान संपादक
अनूप कुमार वार्ष्णेय

संपादक
डा. एम. सी. पांडेय

महत्वपूर्ण निर्णय

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 304 भाग 2 – हत्या की कोटि में न आने वाला आपराधिक मानव वध – जहां मामले के तथ्यों और साक्ष्य की गहन परीक्षा से यह स्पष्ट होता है कि अभियुक्त द्वारा मृतक के सिर पर एक ही घातक प्रहार इस जानकारी के साथ किया गया कि उससे मृत्यु कारित होना संभाव्य है किंतु यह मृत्यु कारित करने के आशय के बिना था, वहां अभियुक्त उक्त धारा के अधीन दंडित किए जाने का दायी है ।

अंग्रेज सिंह उर्फ **काका और एक अन्य** बनाम **हिमाचल प्रदेश राज्य** 314

संसद् के अधिनियम

न्यायालय अवमान अधिनियम, 1971 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ (1) – (13)

पृष्ठ संख्या 175 – 351 **(2012) 2 दा. नि. प.**

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका – अक्तूबर-दिसंबर, **2012** (संयुक्तांक) (पृष्ठ संख्या **175 – 351**)

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

कारागार अधिनियम, 1894 (1894 का 9)

– धारा 59 [सपठित कारागार (मुम्बई फर्लो और पैरोल) नियम, 1959 – नियम 6, परंतुक 10] – कैदी का छोड़ा जाना – खुले कारागार में निरुद्ध कैदी को अनुमोदनकर्ता प्राधिकारी या प्राधिकारियों द्वारा कैदी के नातेदारों द्वारा बंधपत्र के निष्पादन की अपेक्षा छूट प्रदान करते हुए फर्लो या पैरोल पर निर्मुक्त किया जा सकता है ।

दीपक सुधाकर वकालेकर बनाम **महाराष्ट्र राज्य और अन्य** 246

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2)

– धारा 102 – संपत्ति का अभिग्रहण – बेनामी संव्यवहार – बैंक खातों का अभिग्रहण – जहां किन्हीं बैंक खातों के संव्यवहार से बेनामी संव्यवहार और अवैध रीति से विभिन्न प्राधिकारियों से उनके पदीय हैसियत के दुरुपयोग से अनापत्ति प्राप्त करके भूमि आबंटन कराने के अपराध किए जाने का संदेह होता है, वहां सोसाइटी के बैंक खातों का अभिग्रहण अनुज्ञेय और विधिसम्मत है ।

आदर्श कोआपरेटिव हाउसिंग सोसाइटी लिमिटेड बनाम **भारत संघ और अन्य संघ और अन्य** 264

– धारा 227 – आरोपों को विरचित किया जाना – यदि अभियोजन द्वारा पेश सामग्री को प्रथमदृष्ट्या देखने और उसे पढ़ने से भी यह प्रकट हुआ है कि यदि मामले में दो अभियुक्त– धारा 227 – आरोपों को विरचित किया जाना – यदि अभियोजन द्वारा पेश सामग्री को प्रथमदृष्ट्या देखने और उसे पढ़ने से भी यह प्रकट हुआ है कि यदि मामले में दो अभियुक्त एक गाड़ी चालक तथा दूसरा उसके साथ बैठा हुआ व्यक्ति है तो गाड़ी चालक के विरुद्ध

पृष्ठ संख्या

धारा 307 के अधीन आरोप विरचित किए जाने की दशा में दूसरे व्यक्ति के विरुद्ध भी धारा 307 का आरोप विरचित किया जाना उचित नहीं है ।

चुहरू राम और एक अन्य बनाम **हिमाचल प्रदेश राज्य** 343

– धारा 311 – साक्षियों को समन करने और परीक्षा करने की शक्ति – न्यायालय अभियोजन के साक्ष्य की समाप्ति के पश्चात् भी विचारण के किसी प्रक्रम पर किसी व्यक्ति को साक्षी के रूप में समन करने और परीक्षा करने के लिए धारा 311 के अधीन सशक्त है, अतः, विचारण न्यायालय द्वारा किए गए विवेकाधिकार के प्रयोग को गलत और अवैध नहीं कहा जा सकता ।

श्याम वर्मा बनाम **हिमाचल प्रदेश राज्य** 326

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45)

– धारा 299 और 300 – आपराधिक मानव वध या हत्या – आशय – संपत्ति की नुकसानी को निवारित करने के आशय से क्षणिक आवेश में लाठी से प्रहार किए जाने से यह सिद्ध नहीं होता कि अभियुक्तों का आशय मृतक की मृत्यु कारित करना था, अतः मामला दंड संहिता की धारा 304 भाग 2 के अधीन आता है ।

नाटू लाल और एक अन्य बनाम **राज्य** 287

– धारा 299 और 300 – आपराधिक मानव वध या हत्या – ज्ञान – अभियुक्त द्वारा लाठी जैसे भोथर हथियार से मृतक के सिर पर एकल क्षति कारित करने से इस बात की परिकल्पना नहीं की जा सकती कि अभियुक्त को ज्ञान था कि क्षति इतनी आसन्न खतरनाक है कि मृत्यु पूरी अधिसंभाव्यता में कारित हो

पृष्ठ संख्या

जाएगी या मृत्यु कारित होना संभाव्य है ।

नाटू लाल और एक अन्य बनाम **राज्य** 287

– धारा 300 – हत्या – जहां पीड़ित की मृत्यु दाह क्षतियों से हुई हो और वे क्षतियां अभियुक्त द्वारा पूतिजीवरक्तता से हुई क्षतियों के कारण पहुंचाई गई हों वहां अभियुक्त के कार्य का प्रत्यक्ष और सन्निकट परिणाम न होते हुए भी अभियुक्त पीड़ित की मृत्यु कारित करने का दायी है ।

गुड्डा उर्फ **सुल्तान सिंह और एक अन्य** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** 229

– धारा 304ख – दहेज मृत्यु – मृत्यु के कुछ पूर्व – यदि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों तथा सभी तथ्य साक्षियों के अकाट्य, विश्वसनीय और संगत साक्ष्यों से साबित होता है कि मृतका की मृत्यु असामान्य परिस्थितियों में तथा मृत्यु के कुछ पूर्व दहेज की मांग पूरा न कर पाने के परिणामस्वरूप अप्राकृतिक रूप से हुई वहां अभियुक्त उक्त धारा के अधीन दोषसिद्ध ठहराए जाने का दायी है ।

धन सिंह और एक अन्य बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** 175

– धारा 304 भाग 2 – हत्या की कोटि में न आने वाला आपराधिक मानव वध – जहां मामले के तथ्यों और साक्ष्य की गहन परीक्षा से यह स्पष्ट होता है कि अभियुक्त द्वारा मृतक के सिर पर एक ही घातक प्रहार इस जानकारी के साथ किया गया कि उससे मृत्यु कारित होना संभाव्य है किंतु यह मृत्यु कारित करने के आशय के बिना था, वहां अभियुक्त उक्त धारा के अधीन दंडित किए जाने का दायी है ।

अंग्रेज सिंह उर्फ **काका और एक अन्य** बनाम **हिमाचल प्रदेश राज्य** 314

पृष्ठ संख्या

– धारा 307 और 324 – खतरनाक आयुध से स्वेच्छया हत्या करने का प्रयास – जहां अभियोजन अपराध की परिस्थितियों में प्रयुक्त हथियारों, चिकित्सा प्रमाण पत्र, अपराध के आशय और हेतु तथा साक्षियों के साक्ष्य से युक्तियुक्त संदेह से परे यह साबित नहीं कर सका कि अपराध अभियुक्त द्वारा ही कारित किया था, वहां अभियुक्त दोषमुक्त ठहराए जाने का दायी है ।

हिमाचल प्रदेश राज्य बनाम **श्रीमती उषा रानी और एक अन्य** 307

– धारा 376 – बलात्संग – अभियोक्त्री द्वारा अपने पति को बलात्संग के बारे में घटना के अगले दिन बताना – अभियोक्त्री के शरीर पर कोई क्षति या उसके वस्त्र भी फटे हुए नहीं पाया जाना – बलात्संग के संबंध में अभियोक्त्री का कथन विश्वासोत्पादक नहीं पाया जाना – अभिलेख पर मामले के तथ्यों और परिस्थितियों तथा साक्षियों के साक्ष्य की गहन संवीक्षा करने पर सहमतिजन्य मैथुन का मामला पाए जाने के कारण अभियुक्त को संदेह का फायदा देकर दोषमुक्त करना उचित होगा ।

राजेन्द्र बनाम **हिमाचल प्रदेश राज्य** 334

दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 (1961 का 28)

– धारा 2 – दहेज की मांग – जहां पति द्वारा विवाह या विवाह से संबंधित अनुष्ठान के दौरान मोटर साइकिल की मांग की गई हो वहां पति (अभियुक्त) उक्त अधिनियम के अधीन दहेज की मांग का दोषी ठहराए जाने का दायी है ।

धन सिंह और एक अन्य बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** 175

पृष्ठ संख्या

परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 (1881 का 26)

– धारा 138 – चैक का अनादर – न्यायालय की क्षेत्रीय अधिकारिता – उपरवाल बैंक ही संदाय से इनकार करता या चैक का अनादर करता है तथा संग्रहकर्ता बैंक की प्रास्थिति चैक के पाने वाले के अभिकर्ता या मित्र से अधिक नहीं है, अतः धारा 138 के अधीन परिवाद ग्रहण करने और विचारण करने की अधिकारिता उसी न्यायालय को है, जिसकी अधिकारिता के भीतर उपरवाल बैंक स्थित है ।

इम्तियाज अहमद भाट बनाम **एफ. आई. एल. इंडस्ट्रीज लिमिटेड** 217

– धारा 138 का परंतुक (ख) और (ग) – चैक का अनादर और सूचना की प्राप्ति – लेखीवाल द्वारा चैक के अनादर की सूचना जिस स्थान पर प्राप्त होती है, अनादर से संबंधित तात्विक घटना उस स्थान पर हुई मानी जाएगी न कि उस स्थान पर जहां से चैक के पाने वाले द्वारा सूचना प्रेषित की जाती है और सूचना की प्राप्ति का स्थान न्यायालय की क्षेत्रीय अधिकारिता का अवधारण करेगा ।

इम्तियाज अहमद भाट बनाम **एफ. आई. एल. इंडस्ट्रीज लिमिटेड** 217

परिसीमा अधिनियम, 1963 (1963 का 36)

– धारा 15 – विलंब की माफी – जहां पुनरीक्षण फाइल करने में विलंब की माफी के लिए पर्याप्त कारण न दर्शाया गया हो बल्कि प्रत्यर्थी द्वारा फाइल की गई अभिरक्षा याचिका की घोर निंदा के रूप में आवेदक द्वारा पुनरीक्षण फाइल किया गया हो वहां किसी भी

पृष्ठ संख्या

दृष्टि से विलंब माफी का कोई मामला नहीं बनता ।

सुनील चंदेल बनाम **हिमाचल प्रदेश राज्य और अन्य** 299

साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1)

– धारा 32 – मृत्युकालिक कथन – मृतका द्वारा अपने विवाह के एक मास पश्चात् अपने माता-पिता से अभियुक्तों द्वारा की गई मांग का कथन उक्त अधिनियम की धारा 32 के अधीन ग्राह्य है क्योंकि यह उसकी मृत्यु के हेतुक से संबंधित है ।

धन सिंह और एक अन्य बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** 175

– धारा 32(1) [सपठित दंड संहिता, 1860 – धारा 300] – मृत्युकालिक कथन – जहां न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि मृत्युकालिक कथन करने वाले की मानसिक और शारीरिक स्थिति ऐसा कथन करने के लिए ठीक थी और उसने स्वेच्छया किसी दबाव के बिना कथन किया वहां साक्ष्य का सारवान् भाग होने के कारण मृत्युकालिक कथन के आधार पर दोषसिद्धि का आदेश पारित किया जा सकता है ।

गुड्डा उर्फ **सुल्तान सिंह और एक अन्य** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** 229

संपादक-मंडल

श्री विनोद कुमार भसीन,
सचिव, विधायी विभाग

डा. संजय सिंह,
अपर सचिव (प्रशा.), विधायी विभाग

डा. आर. डी. मीना, संयुक्त सचिव,
राजभाषा खंड

डा. बी. एन. मणि, अधिवक्ता,
(पूर्व संपादक) वि.सा.प्र.

डा. प्रीती सक्सेना, प्रोफेसर,
बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर केन्द्रीय विश्वविद्यालय, लखनऊ

डा. वैभव गोयल, संकायाध्यक्ष
विधि संकाय, स्वामी विवेकानन्द सुभारती विश्वविद्यालय, मेरठ

श्री सुरेन्द्र शर्मा, प्राचार्य,
विधि विभाग, गुरू गोविंद सिंह इन्द्रप्रस्थ विश्वविद्यालय, दिल्ली

डा. आर. पी. सिंह,
सेवानिवृत्त संयुक्त सचिव, राजभाषा खंड

श्री लालजी प्रसाद,
सेवानिवृत्त प्रधान संपादक, वि.सा.प्र.

श्री के. जी. अग्रवाल,
सेवानिवृत्त संपादक, वि.सा.प्र.

श्री अनूप कुमार वार्ष्णेय,
प्रधान संपादक

श्री महमूद अली खां,
संपादक

श्री जुगल किशोर,
संपादक

डा. मिथिलेश चन्द्र पाण्डेय,
संपादक

सहायक संपादक : सर्वश्री विनोद कुमार आर्य, कमला कान्त, अविनाश शुक्ल और असलम खान

उप-संपादक : सर्वश्री दयाल चन्द ग्रोवर, एम. पी. सिंह, जसवन्त सिंह और बी. के. भटनागर

कीमत : डाक-व्यय सहित

एक प्रति : ₹ 36

वार्षिक : ₹ 135

© 2012 भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय

प्रकाशन और विक्रय प्रबंधक, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय (विधायी विभाग), भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित तथा.................................. द्वारा मुद्रित ।

सादर

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा तीन मासिक निर्णय पत्रिकाओं – उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका का प्रकाशन किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका में उच्चतम न्यायालय के चयनित निर्णयों को और उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका तथा उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिकाओं में देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के क्रमश: चयनित सिविल और दांडिक निर्णयों को हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है । इन पत्रिकाओं को और अधिक आकर्षक बनाने के लिए इनमें जनवरी, 2010 के अंक से महत्वपूर्ण केन्द्रीय अधिनियमों का प्राधिकृत हिन्दी पाठ को पाठकों की सुविधा के लिए श्रृंखलाबद्ध रूप से प्रकाशित किया जा रहा है । तीनों निर्णय पत्रिकाओं की वार्षिक कीमत केवल ₹ 495/- है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 225/- है, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है । तीनों मासिक निर्णय पत्रिकाओं के नियमित ग्राहक बनकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के इस महान यज्ञ के भागी बन कर अनुगृहीत करें ।

विधि साहित्य प्रकाशन
(विधायी विभाग)
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार
भारतीय विधि संस्थान भवन,
भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001
दूरभाष : 011-23387589, 23385259, 23382105

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित और विक्रय के लिए उपलब्ध विधि पाठ्य पुस्तकों की सूची

	पुस्तक का नाम	लेखक	पृष्ठ सं.	कीमत (₹)
1.	भारत का विधिक इतिहास	श्री सुरेन्द्र मधुकर	410	30.00
2.	माल विक्रय और परक्राम्य लिखत विधि	डा. एन. पी. परांजपे	371	40.00
3.	वाणिज्य विधि	डा. आर. एल. भट्ट	630	108.00
4.	अपकृत्य विधि के सिद्धान्त (तृतीय संस्करण)	श्री शर्मन लाल अग्रवाल	357	40.00
5.	अंतर्राष्ट्रीय विधि के प्रमुख निर्णय (द्वितीय संस्करण)	डा. एस. सी. खरे	273	115.00
6.	मानव अधिकार	डा. शिवदत्त शर्मा	340	120.00
7.	दण्ड प्रक्रिया संहिता	न्या. महावीर सिंह	840	200.00

पुस्तकों की सूची जिन पर छूट देने की स्वीकृति प्राप्त की गई है ।

	पुस्तक का नाम	लेखक	पृष्ठ सं.	मूल दर (₹)	संशोधित दर (₹)
1.	संविदा विधि (द्वितीय संस्करण)	डा. रामगोपाल चतुर्वेदी	552	275.00	137.00
2.	श्रम विधि (तृतीय संस्करण)	श्री गोपी कृष्ण अरोड़ा	658	452.00	226.00
3.	चिकित्सा न्यायशास्त्र और विष विज्ञान (तृतीय संस्करण)	डा. सी. के. पारिख अनुवादक डा. एन. के. पटोरिया	969	293.00	146.00
4.	आधुनिक पारिवारिक विधि	श्री राम शरण माथुर	767	429.00	214.00
5.	भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम (कालजयी निर्णय)	संकलन संपादन – ब्रह्मदेव चौबे	209	225.00	112.00
6.	हिन्दू विधि (द्वितीय संस्करण)	डा. रवीन्द्र नाथ	617	425.00	212.00
7.	भारतीय दंड संहिता	डा. रवीन्द्र नाथ	696	741.00	370.00
8.	भारतीय भागीदारी अधिनियम (द्वितीय संस्करण)	श्री माधव प्रसाद वाशिष्ठ	272	165.00	82.00
9.	प्रशासनिक विधि (तृतीय संस्करण)	डा. कैलाश चन्द्र जोशी	635	200.00	100.00
10.	विधिक उपचार (द्वितीय संस्करण)	डा. एस. के. कपूर	414	311.00	155.00
11.	विधि शास्त्र	डा. शिवदत्त शर्मा	501	580.00	377.00

विधि साहित्य प्रकाशन

(विधायी विभाग)

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

भारतीय विधि संस्थान भवन,

भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

धन सिंह और एक अन्य

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

तारीख 19 मार्च, 2012

न्यायमूर्ति विनोद प्रसाद

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 304-ख – दहेज मृत्यु – मृत्यु के कुछ पूर्व – यदि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों तथा सभी तथ्य साक्षियों के अकाट्य, विश्वसनीय और संगत साक्ष्यों से साबित होता है कि मृतका की मृत्यु असामान्य परिस्थितियों में तथा मृत्यु के कुछ पूर्व दहेज की मांग पूरा न कर पाने के परिणामस्वरूप अप्राकृतिक रूप से हुई वहां अभियुक्त उक्त धारा के अधीन दोषसिद्ध ठहराए जाने का दायी है ।

साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1) – धारा 32 – मृत्युकालिक कथन – मृतका द्वारा अपने विवाह के एक मास पश्चात् अपने माता-पिता से अभियुक्तों द्वारा की गई मांग का कथन उक्त अधिनियम की धारा 32 के अधीन ग्राह्य है क्योंकि यह उसकी मृत्यु के हेतुक से संबंधित है ।

दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 (1961 का 28) – धारा 2 – दहेज की मांग – जहां पति द्वारा विवाह या विवाह से संबंधित अनुष्ठान के दौरान मोटरसाइकिल की मांग की गई हो वहां पति (अभियुक्त) उक्त अधिनियम के अधीन दहेज की मांग का दोषी ठहराए जाने का दायी है ।

अपीलार्थियों के विरुद्ध लगाए गए आरोप जो मृतका गीता के पिता इत्तिलाकर्ता गुंची लाल द्वारा लिखाए गए हैं, अपने लिखित प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में यह लिखा गया था कि उसकी पुत्री जिसकी आयु लगभग 22 वर्ष है, उसका अखिलेश कुमार के साथ विवाह हुआ था । हिन्दू विवाह रीति के अनुसार तारीख 6 दिसंबर, 2001 को इत्तिलाकर्ता की इच्छानुसार तथा आर्थिक संसाधनों के साथ विवाह का अनुष्ठान हुआ था, तो भी अपीलार्थियों ने दहेज के रूप में 40,000/- रुपए से भी अधिक के कीमत की मोटरसाइकिल की मांग की थी । श्रीमती मक्खन द्वारा उक्त दहेज की मांग पूरी न होने पर मृतका को अत्यधिक प्रताड़ित किया था । सभी समयों

पर जब कभी इत्तिलाकर्ता अपीलार्थी के मकान पर जाता वे उक्त मांग के बारे में उससे पुनः कहा करते थे । रंगीन टेलीविजन और फ्रिज जो विवाह में दिए गए थे जिन्हें श्रीमती मक्खन द्वारा नुकसान पहुंचाया गया था क्योंकि अपीलार्थी उनसे एल. जी. कंपनी का टेलीविजन और फ्रिज चाहते थे । जब इत्तिलाकर्ता का भाई रामेश्वर दयाल गीता को वापस लाने के लिए गया था तब उसे गाली दी गई और उसे वापस भेज दिया गया । अभियुक्त श्रीमती मक्खन ने मृतक के माता-पिता और अन्य नातेदारों को यह सूचना दी थी कि जब तक उनकी मांग पूरी नहीं हो जाती तब तक वे उन्हें गीता से मिलने नहीं देंगे और सभी समयों पर जब कभी उन्होंने मृतक से मिलने का साहसिक कदम उठाया, उन्हें लौटा दिया गया । तारीख 23 नवंबर, 2003 को बरुवा सागर के इत्तिलाकर्ता के नातेदार ग्यासी लाल ने धन सिंह को यह बताया था कि रात्रि में उसकी पुत्री की मृत्यु हो गई है और यह आश्वस्त किया गया कि अपीलार्थियों द्वारा या तो उसका गला घोंटा गया या उसे जहर देकर उसकी हत्या कर दी गई थी क्योंकि दहेज मांग को पूरा नहीं किया गया था तब पिता इत्तिलाकर्ता गुंची लाल रिपोर्ट लिखकर पुलिस थाना बरुवा सागर गया और उसी दिन 3.10 बजे अपराह्न दंड संहिता की धारा 498-क, 304-ख के अधीन 2003 का अपराध मामला सं. 505 दर्ज कराया गया । हैड मोहर्रिर पी. के. चतुर्वेदी ने चिक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट प्रदर्श क-8 तथा साधारण डायरी प्रविष्टी प्रदर्श तैयार करके प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज करवाई थी । सहायक पुलिस अधीक्षक बलवंत राय ने अपराध में अन्वेषण किया और पी. के. चतुर्वेदी तथा साक्षी गयादीन कुशवाह, प्रमिला झा और प्रियंका झा के कथनों को अभिलिखित किया था । इसके पश्चात् घटनास्थल का निरीक्षण किया गया था तथा घटनास्थल का नक्शा प्रदर्श तैयार किया गया । तत्पश्चात्, इत्तिलाकर्ता का अन्वेषण के दौरान कथन अभिलिखित किया । इसके पश्चात् भारसाधक अधिकारी ने मृत्यु-समीक्षा और मृत्यु परीक्षण रिपोर्टों की प्रतियां तैयार कीं और अभियुक्त-अपीलार्थियों से पूछताछ की तथा उनके कथन अभिलिखित किए । तत्पश्चात्, विवाह निमंत्रण कार्ड सामग्री अभिगृहीत किया तथा अभिग्रहण ज्ञापन प्रदर्श क-2 तैयार किया । इसके पश्चात्, भारसाधक अधिकारी ने मृत्यु-समीक्षा के बारे में पूछताछ की और बरामदगी के साक्षियों के कथन लिखे । डा. वी. वी. आर्य जिन्होंने मृतका के शव की शव-परीक्षा की थी, उनसे भी पूछताछ की गई और उनके कथन को भी लिखा गया था और उसके द्वारा विवाह के फोटो सामग्री भी अभिगृहीत किया गया था और अभिग्रहण ज्ञापन प्रदर्श क-3 भी तैयार किया गया था । भारसाधक

अधिकारी द्वारा तारीख 28 दिसंबर, 2003 को अन्वेषण समाप्त करने के पश्चात् अभियुक्त-अपीलार्थियों के विरुद्ध के माध्यम से आरोप पत्र फाइल किया गया था । इन दो संबंधित अपीलों में पिता धन सिंह, माता श्रीमती मक्खन और उनका पुत्र अखिलेश कुमार जो एक ही कुटुंब के हैं, ससुराल वाले हैं तथा गीता (मृतक) का पति, ने दंड संहिता की धारा 304-ख(2), 498-क तथा दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 4 के अधीन प्रथम आरोप में 10 वर्ष के कठोर कारावास का दंडादेश, द्वितीय आरोप के लिए, प्रत्येक अपीलार्थी के लिए दो वर्ष का कठोर कारावास के साथ 5,000/- रुपए जुर्माने का संदाय करने तथा जुर्माने के संदाय का व्यतिक्रम करने पर तीन मास का साधारण कारावास भोगने, द्वितीय आरोप के लिए एक वर्ष के कठोर कारावास के साथ 2,500/- रुपए जुर्माने तथा जुर्माने के संदाय का व्यतिक्रम करने पर दो माह की भी कठोर कारावास भोगने, 2004 के सेशन विचारण सं. 85, राज्य बनाम धन सिंह और अन्य, पुलिस थाना बरुवा सागर, जिला झांसी में अपर सेशन न्यायाधीश, न्यायालय सं. 2, झांसी द्वारा तारीख 23 मार्च, 2005 को पारित किए गए आक्षेपित निर्णय और आदेश से अधिरोपित किए गए हैं, अपनी दोषसिद्धि को चुनौती दी है । अभियुक्तों द्वारा सेशन न्यायालय द्वारा किए गए निर्णय के विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपील फाइल की गई । उच्च न्यायालय द्वारा अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – मृतका के विवाह तथा उसकी मृत्यु के बीच की अवधि दो वर्ष से कम है । इस अवधि के बीच में दहेज की बार-बार मांग की गई थी । सभी तथ्यों के साक्षियों ने अकाट्य साक्ष्य दिया है और उनके साक्ष्यों से विश्वास प्रेरित होता है कि अभियुक्त ने दहेज में मोटरसाइकिल की निरंतर मांग की थी । उक्त मांग को उन्होंने कभी भी पूरा नहीं किया । इसके बावजूद इन साक्षियों से विस्तृत प्रतिपरीक्षा की गई । प्रतिरक्षा पक्ष अपने अभिसाक्ष्य को प्रस्तुत करने में विफल हुआ है । सभी साक्षियों ने एक-दूसरे की सम्पुष्टि की है और इत्तिलाकर्ता और अन्य साक्षियों के लिए ऐसा कोई कारण नहीं था कि उन्होंने अभियुक्त के विरुद्ध कोई मिथ्या कहानी गढ़ी हो, इस मामले में संदेह की कोई गुंजाइश नहीं है कि उक्त मांग कभी भी समाप्त नहीं हुई थी तथा निरंतर मांग की गई थी और अपीलार्थी किसी भी समय पर ऐसी मांग करने से पीछे नहीं हटे । इत्तिलाकर्ता का यह स्पष्ट मामला है कि जब कभी भी मृतका के पैतृक नातेदारों से कोई भी व्यक्ति मिलने पहुंचा तो अपीलार्थी ने मांग उठाई और उन्होंने बार-बार मोटरसाइकिल की मांग दोहराई थी । अपीलार्थियों ने यह दलील दी थी कि संतान के जन्म होने के पश्चात् उक्त मांग समाप्त हो

गई थी । इसके प्रतिकूल अभिलेख पर सामग्री प्रकट है क्योंकि इस संबंध में किसी तथ्य के साक्षी की प्रतिपरीक्षा नहीं की गई थी और न इस आशय का कोई साक्ष्य लिया गया था । अभियोजन का संगत रूप से पक्षकथन यह है कि मोटरसाइकिल के दहेज की मांग तब तक निरंतर करते गए जब तक कि गीता की मृत्यु नहीं हो गई । यदि अभियुक्त संतान के उत्पन्न होने के पश्चात् उक्त मांग का फायदा लेना चाहते तो उनके द्वारा इस विषय पर खासतौर पर साक्षियों की प्रतिपरीक्षा की जानी चाहिए थी जब साक्षी कठघरे में खड़े हुए थे । ऐसा साआशय और सचेत होकर मात्र इस कारण से नहीं किया गया था कि अभियुक्त इस तथ्य के बारे में भी सचेत थे कि ऐसी मांग कभी भी नहीं छोड़ी गई थी । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन उनके कथनों में उन्होंने ऐसे किसी अभिवाक् का उल्लेख नहीं किया है । इस दलील से यह प्रतीत होता है कि यह केवल दूसरी दलील को कमजोर करने के लिए दी गई है । वास्तव में, उस दलील के संबंध में इसका कोई आधार नहीं है । परिणामस्वरूप, अपीलार्थी की दलील नकारात्मक है । इस पहलू पर निम्नलिखित विनिश्चयों से समर्थन मिल सकता है । उपरोक्त चर्चाओं से मेरा यह निष्कर्ष है कि अपीलार्थियों द्वारा दहेज की मांग की गई थी और इस मांग को पूरा न करने पर मृतका के विवाह के सात वर्ष के भीतर उसकी मृत्यु गला घोंट कर की गई थी और इसलिए, अभियोजन पक्ष द्वारा उनके विरुद्ध लगाए गए आरोप संदेह के परे सिद्ध किए हैं । उक्त दृष्टिकोण से अभियोजन साक्षियों का विश्लेषण करने पर यह निष्कर्ष निकाला गया है कि अति प्रारंभ से यह स्पष्ट और असंदिग्ध अभिकथन किया गया था कि विवाह के दौरान और कुछ समय पश्चात् 40,000/- रुपए से अधिक की कीमत की मोटरसाइकिल की मांग की गई थी । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में बिना किसी अनिश्चितता के ऐसे अभिकथन का उल्लेख किया गया है । यह भी उल्लेख किया गया है कि श्रीमती मक्खन उक्त दहेज की मांग के पूरा न होने पर मृतका को प्रताड़ित किया करता था । इत्तिलाकर्ता का वृत्तांत यह था कि जब कभी उसे अपीलार्थियों द्वारा भेजा गया तब उसने केवल उक्त मांग को दोहराया । यह भी उल्लेख किया गया है कि रंगीन टेलीविजन और फ्रिज जो उसे विवाह के समय पर दिए गए थे, उन्हें जमीन पर पटककर नष्ट कर दिया गया था । उक्त पहलू पर और सभी तथ्य के साक्षियों ने बिना किसी असंगति के एक दूसरे की सम्पुष्टि की है । धन सिंह जब साक्षी कठघरे में खड़ा हुआ तब उसने विनिर्दिष्ट रूप से यह प्राख्यान किया है कि मोटरसाइकिल की मांग अतिरिक्त की गई थी यद्यपि, इस मांग के बारे में दहेज वस्तु के रूप में

कोई सहमति नहीं हुई थी । विवाह के समय पर सभी तीनों अपीलार्थियों ने उक्त मांग को उठाया था यद्यपि, इत्तिलाकर्ता ने इस मांग को पूरा करने में अपनी असमर्थता व्यक्त की थी । विवाह के एक माह पश्चात् जब श्रीमती मक्खन मृतका को उसके ससुराल के मकान से वापस लाया गया तब उस समय मृतका ने अपीलार्थियों द्वारा की गई मांग के बारे में अपने माता-पिता को बताया था । मृतका का यह कथन साक्ष्य अधिनियम की धारा 32 के अंतर्गत स्वीकार योग्य है क्योंकि यह उसके मृत्यु के कारण से संबंधित है और इसलिए, उसके मृत्युकालिक कथन के प्रतिरूप में माना गया है । धन सिंह अपने बड़े भाई भगवती के साथ जब मृतका को वापस लेने के लिए इत्तिलाकर्ता के मकान पर पहुंचा तब उस समय भी धन सिंह द्वारा मोटरसाइकिल देने की मांग उठाई गई थी । जब श्रीमती मक्खन अपनी बहिन को दूसरी बार वापस लाने के लिए गया था तब उसे उसके साथ नहीं भेजा गया क्योंकि उन्होंने उक्त मांग को पूरा नहीं किया था । उस समय धन सिंह और अखिलेश कुमार ने मोटरसाइकिल की मांग को भी दोहराया था । अखिलेश कुमार से यह भी कहा गया था कि फ्रिज और टेलीविजन अच्छी कंपनी के नहीं हैं और इन्हें एल. जी. कंपनी से बदला जाना चाहिए । श्रीमती मक्खन मृतका के बिना वापस आ गया था । दो दिन के पश्चात् इत्तिलाकर्ता धन सिंह के मकान पर गया था किंतु प्रारंभ में उसने पूर्ववर्ती कारणों की वजह से उसकी पुत्री को उससे मिलने से मना कर दिया और उस समय अनुनय करने के पश्चात् इत्तिलाकर्ता अपनी पुत्री से मिल सका जिसने उसे यह बताया था कि दहेज की मांग पूरी न कर पाने के कारण उसे मारा-पीटा जा रहा है तथा खाना भी नहीं दिया गया था । मृतका इत्तिलाकर्ता के साथ वापस नहीं भेजी गई थी । एक सप्ताह के पश्चात् जब अखिलेश कुमार रामेश्वर दयाल इत्तिलाकर्ता का भाई और मृतका के चाचा उसे वापस लाने के लिए गए तब उसके द्वारा किया गया प्रयास भी अपीलार्थी द्वारा पूर्वोक्त कारणों से विफल कर दिया गया । घटना की तारीख को धन सिंह को यह बताया था कि उसकी पुत्री की मृत्यु हो चुकी है और अपीलार्थी दाह संस्कार के लिए उसे ले जा रहे हैं । इत्तिलाकर्ता ने दूरभाष संदेश भेजकर ग्यासी लाल से यह अनुरोध किया कि उन्हें शव का दाह संस्कार करने से रोका जाए किंतु उसने अपनी असमर्थता दिखाई तब इत्तिलाकर्ता पुलिस थाना, गुरसरायन गया और उसने गुरसरायन के भारसाधक अधिकारी से यह अनुरोध किया कि इस बारे में पुलिस थाना, बरुवा सागर को सूचित करें कि उसकी पुत्री की हत्या की गई है और अभियुक्त उसके शव का दाह संस्कार करने की कोशिश कर रहे हैं ।

पुलिस के कहने पर मृतका की मृत्यु के स्थान पर इत्तिलाकर्ता और उसका साला और चचेरे भाई के पहुंचने से पहले मृतका का अंतिम संस्कार नहीं किया जा सका । उसने मकान की प्रथम मंजिल के कमरे में लाश पाई थी और उसकी गर्दन पर लाल और काला बंध चिह्न मौजूद था । इत्तिलाकर्ता द्वारा दिए गए ऐसे अभिसाक्ष्य के बारे में अभियुक्त द्वारा तनिक भी इनकार नहीं किया जा सकता । इस बारे में, अभियुक्तों से काफी थका देने वाली और विस्तृत प्रतिपरीक्षा की गई जो कई पृष्ठों में अंकित है । धन सिंह पुलिस विभाग में नियोजित था और तद्नुसार उसने यह प्रतिरक्षा ली कि वह एलआईयू में तैनात था । इस बात को ध्यान में रखते हुए कोई व्यक्ति उसके विरुद्ध मिथ्या रिपोर्ट दर्ज करने का साहस नहीं जुटा सका । धन सिंह से मृतका द्वारा लिखे गए अभिकथित पत्रों के बारे में प्रश्न पूछा गया था किंतु उसने स्पष्ट तथा विनिर्दिष्ट रूप से यह कथन किया है कि विवाह के पश्चात् उसके और मृतका के बीच कोई पत्र व्यवहार नहीं हुआ था यद्यपि, उसने यह स्वीकार किया है कि गीता स्नातक थी । धन सिंह ने अपने कथन में यह भी स्पष्ट किया है कि किसी भी पड़ोसी ने उसकी कोई मदद नहीं की थी और न वे घटना के स्थान पर उसके साथ थे । उसने यह भी साक्ष्य दिया है कि जब अपीलार्थी के पड़ोसियों ने उन्हें इत्तिलाकर्ता के साथ मृतका को भेजे जाने के लिए मनाने की कोशिश की तब उन्होंने इस बात की भर्त्सना की थी । पति द्वारा प्रथा के रूप में मोटरसाइकिल की मांग की गई थी, वह विवाह की रस्म को पूरा करने जा रहा था और इसलिए, इसे दहेज मांग की शब्दावली के अंतर्गत नहीं रखा जा सकता है । इस दलील में, तनिक भी कोई सार नहीं है । या तो विवाह के दौरान या उसके संबंध में दहेज की मांग की जाती है । पति अखिलेश कुमार द्वारा इस तरह की गई मांग विवाह समारोह के दौरान विवाह से संबंधित थी और परिणामस्वरूप इसकी परिधि से अलग नहीं हो सकती । दहेज की धारणा और इसकी परिभाषा में स्वतः प्रत्येक मांग विवाह के संबंध में की गई है । वर्तमान वाले मामले में अखिलेश कुमार द्वारा विवाह में अपनी पत्नी के रूप में मृतका को अपने पास रखने के लिए मोटरसाइकिल की मांग की गई थी । यह दहेज की मांग के अलावा कुछ भी नहीं है । मानव स्वभाव और उसके क्रियाकलाप विनिर्दिष्ट क्षेत्र के अंतर्गत सीमित नहीं हो सकते । प्रत्येक मामले का उसके स्वयं के गुणागुण पर न्यायनिर्णयन और विनिश्चय किया जाना चाहिए । दहेज मांग को जो बातें गठित करेंगी उनका प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में न्यायनिर्णयन किया जाना चाहिए जो तथ्यों के अनुसार निर्भर होती हैं ।

कोई ऐसा कठोर सूत्र नहीं हो सकता जिससे कि दहेज मांग को चिह्नांकित किए जा सके । विधानमंडल ने विवाह की तारीख से 7 वर्ष तक ऐसी मांग करने के समय अंतराल को नियत किया है । यह अभिनिर्धारित किया है कि पति द्वारा विवाह के दौरान दहेज की मांग की जाती है तब उसे दहेज मांग की परिधि के बाहर माना जाएगा और अन्यथा यह भी अभिनिर्धारित किया गया है कि विधानमंडल द्वारा क्या विहित किया गया है और विधि के अंतर्गत ऐसे प्रकट की गई बात दहेज प्रतिषेध अधिनियम के प्रबल प्रयोजन को विफल करेंगी । सभी सामान्य संवेदनाओं के बिना 'दहेज' शब्द की नई परिभाषा देनी पड़ी थी । कोई मांग जो पति या उसके नातेदारों द्वारा जो वैवाहिक बंधन के संबंध के कारण है उन्हें 'दहेज मांग' के अंतर्गत शामिल किया गया है या शामिल किए जाने की संभावना है, ये बातें प्रत्यात्मकतापूर्वक समझी जानी चाहिए जो तथ्यों के समूह में वर्णित है । 'दहेज की धारण' भिन्न-भिन्न न्यायिक निर्वचनों के अध्यधीन है और यह अधिक समय तक अनिर्णीत विषय नहीं रहा है । यह समुचित होगा कि इस प्रक्रम पर उन विनिश्चयों का उल्लेख करें । (पैरा 22, 25, 32 और 35)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2010]	ए. आई. आर. 2010 एस. सी. 2839 : **अशोक कुमार** बनाम **हरियाणा राज्य** ;	26,29
[2010]	ए. आई. आर. 2010 एस. सी. 3506 : **उदय चक्रवर्ती** बनाम **पश्चिमी बंगाल राज्य** ;	34
[2009]	ए. आई. आर. 2009 एस. सी. 913 : **बलदेव सिंह** बनाम **पंजाब राज्य** ;	15, 27
[2009]	ए. आई. आर. 2009 एस. सी. 1454 : **तरसेम सिंह** बनाम **पंजाब राज्य** ;	18
[2007]	ए. आई. आर. 2007 एस. सी. 763 : **अप्पा साहिब और अन्य** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ;	28
[2003]	ए. आई. आर. 2003 एस. सी. 2865 : **हीरा लाल** बनाम **राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, दिल्ली सरकार)।**	14

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2005 की दांडिक अपील सं. 1486.

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 374 के अधीन अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से सर्वश्री जगदीश सिंह सैंगर और सुनील सिंह

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री पंतजलि मिश्रा, अपर सरकारी अधिवक्ता

न्यायमूर्ति विनोद प्रसाद – इन दो संबंधित अपीलों में पिता धन सिंह (अभियुक्त सं. 1), माता श्रीमती मक्खन (अभियुक्त सं. 2) और उनका पुत्र अखिलेश कुमार (अभियुक्त सं. 3) जो एक ही कुटुंब के हैं, ससुराल वाले हैं तथा गीता (मृतका) का पति, ने दंड संहिता की धारा 304-ख(2), 498-क तथा दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 4 के अधीन प्रथम आरोप में 10 वर्ष के कठोर कारावास का दंडादेश, द्वितीय आरोप के लिए, प्रत्येक अपीलार्थी के लिए दो वर्ष का कठोर कारावास के साथ 5,000/- रुपए जुर्माने का संदाय करने तथा जुर्माने के संदाय का व्यतिक्रम करने पर तीन मास का साधारण कारावास भोगने, द्वितीय आरोप के लिए एक वर्ष के कठोर कारावास के साथ 2,500/- रुपए जुर्माने तथा जुर्माने के संदाय का व्यतिक्रम करने पर दो माह की भी कठोर कारावास भोगने, 2004 के सेशन विचारण सं. 85, राज्य बनाम धन सिंह और अन्य, पुलिस थाना बरुवा सागर, जिला झांसी में अपर सेशन न्यायाधीश, न्यायालय सं. 2, झांसी द्वारा तारीख 23 मार्च, 2005 को पारित किए गए आक्षेपित निर्णय और आदेश से अधिरोपित किए गए हैं, अपनी दोषसिद्धि को चुनौती दी है ।

2. अपीलार्थियों के विरुद्ध लगाए गए आरोप जो मृतका गीता के पिता इत्तिलाकर्ता गुंची लाल (अभि. सा. 1) द्वारा लिखाए गए हैं, अपने लिखित प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में प्रदर्श क-1 में यह लिखा गया था कि उसकी पुत्री जिसकी आयु लगभग 22 वर्ष है, उसका अखिलेश कुमार (अभियुक्त सं. 3) के साथ विवाह हुआ था । हिन्दू विवाह रीति के अनुसार तारीख 6 दिसंबर, 2001 को इत्तिलाकर्ता की इच्छानुसार तथा आर्थिक संसाधनों के साथ विवाह का अनुष्ठान हुआ था, तो भी अपीलार्थियों ने दहेज के रूप में 40,000/- रुपए से भी अधिक के कीमत की मोटरसाइकिल की मांग की थी । अभियुक्त सं. 2 द्वारा उक्त दहेज की मांग पूरी न होने पर मृतका को अत्यधिक प्रताड़ित किया था । सभी समयों पर जब कभी इत्तिलाकर्ता

अपीलार्थी के मकान पर जाता वे उक्त मांग के बारे में उससे पुनः कहा करते थे । रंगीन टेलीविजन और फ्रिज जो विवाह में दिए गए थे जिन्हें अभियुक्त सं. 2 द्वारा नुकसान पहुंचाया गया था क्योंकि अपीलार्थी उनसे एल. जी. कंपनी का टेलीविजन और फ्रिज चाहते थे । जब इत्तिलाकर्ता का भाई रामेश्वर दयाल गीता को वापस लाने के लिए गया था तब उसे गाली दी गई और उसे वापस भेज दिया गया । अभियुक्त सं. 2 ने मृतका के माता-पिता और अन्य नातेदारों को यह सूचना दी थी कि जब तक उनकी मांग पूरी नहीं हो जाती तब तक वे उन्हें गीता से मिलने नहीं देंगे और सभी समयों पर जब कभी उन्होंने मृतका से मिलने का साहसिक कदम उठाया, उन्हें लौटा दिया गया ।

3. तारीख 23 नवंबर, 2003 को बरुवा सागर के इत्तिलाकर्ता के नातेदार ग्यासी लाल ने अभि. सा. 1 को यह बताया था कि रात्रि में उसकी पुत्री की मृत्यु हो गई है और यह आश्वस्त किया गया कि अपीलार्थियों द्वारा या तो उसका गला घोटा गया या उसे जहर देकर उसकी हत्या कर दी गई थी क्योंकि दहेज मांग को पूरा नहीं किया गया था तब पिता इत्तिलाकर्ता गुंची लाल (अभि. सा. 1) रिपोर्ट प्रदर्श क-1 लिखकर पुलिस थाना बरुवा सागर गया और उसी दिन 3.10 बजे अपराह्न दंड संहिता की धारा 498-क, 304-ख के अधीन 2003 का अपराध मामला सं. 505 दर्ज कराया गया ।

4. हैड मोहर्रिर पी. के. चतुर्वेदी (अभि. सा. 6) ने चिक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट प्रदर्श क-8 तथा साधारण डायरी प्रविष्टि प्रदर्श क-9 तैयार करके प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज करवाई थी । सहायक पुलिस अधीक्षक बलवंत राय (अभि. सा. 8) ने अपराध में अन्वेषण किया और पी. के. चतुर्वेदी (अभि. सा. 6) तथा साक्षी गयादीन कुशवाह, प्रमिला झा और प्रियंका झा के कथनों को अभिलिखित किया था । इसके पश्चात् घटनास्थल का निरीक्षण किया गया था तथा घटनास्थल का नक्शा प्रदर्श क-11 तैयार किया गया । तत्पश्चात्, इत्तिलाकर्ता का अन्वेषण के दौरान कथन अभिलिखित किया । इसके पश्चात् भारसाधक अधिकारी ने मृत्यु-समीक्षा और मृत्यु-परीक्षण रिपोर्टों की प्रतियां तैयार कीं और अभियुक्त-अपीलार्थियों से पूछताछ की तथा उनके कथन अभिलिखित किए । तत्पश्चात्, विवाह निमंत्रण कार्ड सामग्री (प्रदर्श 1) अभिगृहीत किया तथा अभिग्रहण ज्ञापन प्रदर्श क-2 तैयार किया । इसके पश्चात्, भारसाधक अधिकारी ने मृत्यु-समीक्षा के बारे में पूछताछ की और बरामदगी के साक्षियों के कथन लिखे ।

डा. वी. वी. आर्य (अभि. सा. 7) जिन्होंने मृतका के शव की शव-परीक्षा की थी, उनसे भी पूछताछ की गई और उनके कथन को भी लिखा गया था और उसके द्वारा विवाह के फोटो सामग्री (प्रदर्श 2 और 3) भी अभिगृहीत किया गया था और अभिग्रहण ज्ञापन प्रदर्श क-3 भी तैयार किया गया था । भारसाधक अधिकारी (अभि. सा. 8) द्वारा तारीख 28 दिसंबर, 2003 को अन्वेषण समाप्त करने के पश्चात् अभियुक्त-अपीलार्थियों के विरुद्ध प्रदर्श क-12 के माध्यम से आरोप पत्र फाइल किया गया था ।

5. तारीख 23 नवंबर, 2003 को 4.45 बजे अपराह्न से 6.00 बजे अपराह्न तक महेन्द्र प्रताप सिंह, नायब तहसीलदार (अभि. सा. 5) गरोथा ने मृतका के शव की मृत्यु-समीक्षा की थी और मृत्यु-समीक्षा रिपोर्ट प्रदर्श क-2 तैयार की थी और इसी तरह अन्य सुसंगत कागजात प्रदर्श क-3 से क-7 फोटो लाश, चालान लाश, मोहर आदि की रिपोर्ट तैयार की थी । शव की मृत्यु-समीक्षा समाप्त करने के पश्चात् उसे मोहरबंद करके पुलिस थाना बरुवा सागर के कांस्टेबल अरविन्द कुमार और राम किशोर के माध्यम से शवपरीक्षण के लिए भेज दिया गया ।

6. डा. वी. वी. आर्य, ज्येष्ठ चिकित्सा अधिकारी, जिला झांसी (अभि. सा. 7) के साथ डा. प्रदीप पांडे ने तारीख 24 नवंबर, 2003 को 4.00 बजे अपराह्न मृतक के शव की शव-परीक्षा की थी और शवपरीक्षण रिपोर्ट प्रदर्श क-10 तैयार की थी जिस पर डा. पांडे द्वारा प्रति-हस्ताक्षर किया गया था । डाक्टरों के आकलन के अनुसार मृतका की आयु 22 वर्ष थी और वह औसत कद-काठी की थी । उसकी आंखें बंद पाई गई थीं और मुंह आधा खुला हुआ था तथा उसके सिर और गर्दन ऊपरी सिरे पर शव काठिन्य मौजूद था । उसके मस्तिष्क की झिल्लियां, फुफ्फुसावरण दोनों फेफड़े, ग्रासनली संकुचित थे, श्वासप्रणाल का अस्थिभंग हुआ था और रक्त के धक्के मौजूद होने के साथ संकुचित । उसके आमाशय में 150 मि. ली. अर्ध पचित तरल पदार्थ था, छोटी आंते अम्लान्न और गैस से भरी हुई थी और बृहत् आंत में मल पदार्थ और गैस (वायु) भरी हुई थी । उसकी मृत्यु हुए डेढ़ दिन बीत गया था और उसकी मृत्यु का कारण मृत्यु-पूर्व गला घोंटने के परिणामस्वरूप श्वासारोध था । चिकित्सकों ने रासायनिक विश्लेषण के लिए उसके विसरा को भी सुरक्षित रखा था ताकि मृतक को जहर देने के संभावना की पुष्टि हो सके या नहीं । चिकित्सा द्वारा मृतक के शव पर निम्नलिखित मृत्यु-पूर्व क्षतियों का उल्लेख किया गया है :–

"बाएं कान से 10 से. मी. नीचे गर्दन के सामने 11 से. मी. x

1.5 से. मी. आकार का बंध चिह्न । अवटुग्रन्थि के नीचे क्षैतिज चिह्न, 'एल' चिह्न का ग्रोव रक्ताभ । विसरा के प्रथम जार में आमाशय की अंतर्वस्तु के सात छोटे आंतों के टुकड़े और दूसरे जार में पित्ताशय के साथ यकृत, दोनों ओर के गुर्दे और पूरा प्लाहा रखे हुए थे ।"

7. आरोप पत्र प्रदर्श क-12 प्रस्तुत किया गया । 2000 का मामला सं. 42, राज्य बनाम धन सिंह और अन्य वाले मामले में अपीलार्थियों के विरुद्ध मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, झांसी के समक्ष मामले का रजिस्ट्रीकरण किया गया जिन्होंने तारीख 27 मार्च, 2004 को सेशन न्यायालय को मामला इसलिए सुपुर्द किया कि अपराध सेशन न्यायालय द्वारा विचारणीय है और सेशन न्यायाधीश, झांसी के समक्ष 2004 के सेशन विचारण सं. 85, राज्य बनाम धन सिंह और अन्य वाला मामला तारीख 2 अप्रैल, 2004 को अभियुक्त के विरुद्ध रजिस्ट्रीकृत किया गया था ।

8. अपर सेशन न्यायाधीश/त्वरित निपटान न्यायालय सं. 3, झांसी ने अभियुक्त-अपीलार्थियों को दंड संहिता की धारा 498-क, 304-ख तथा दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 3/4 के अधीन 4 जून, 2008 को आरोपित किया था जिन आरोपों को अभियुक्त के सामने पढ़ा गया और उन्हें स्पष्ट किया गया जिसपर उन सभी अभियुक्तों ने मामला होने से इनकार किया और विचारण किए जाने का दावा किया । उसके पश्चात् आरोपों तथा उनकी दोषिता सिद्ध करने के लिए विचारण प्रक्रिया चलाई गई थी तथा विचारण प्रक्रिया के दौरान अभियोजन पक्ष ने 8 साक्षियों के मौखिक परिसाक्ष्य का अवलंब लिया जिनमें से इत्तिलाकर्ता गुंची लाल (अभि. सा. 1) उसका पुत्र आशीष कुमार (अभि. सा. 2) भाई रामेश्वर दयाल (अभि. सा. 3) और पत्नी श्रीमती राममूर्ति (अभि. सा. 4) तथ्य के साक्षी हैं । नायब तहसीलदार एम. पी. सिंह (अभि. सा. 5), हैड मोहर्रिर पी. के. चतुर्वेदी (अभि. सा. 6), डा. वी. वी. आर्य (अभि. सा. 7) और भारसाधक अधिकारी, सहायक पुलिस अधीक्षक बलवंत राय (अभि. सा. 8) की औपचारिक साक्षियों के रूप में परीक्षा की गई थी ।

9. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन अभियुक्त अपीलार्थियों ने अपने कथनों में अभियोजन साक्ष्य में उनके विरुद्ध प्रकट अपराध में फंसाने वाली परिस्थितियों से इनकार किया है तथा उन्होंने मिथ्या फंसाने का अभिवाक् किया है । उन्होंने मृतका द्वारा लिखे गए अधिकथित पत्रों को भी फाइल किया है । अभियुक्त सं. 1 ने अपना

लिखित कथन भी फाइल किया है जिसके अनुसार अपने पुत्र के विवाह के पूर्व अभियुक्त सं. 1 एलआईयू में नियोजित था तथा जिला ओरिया जालोन में रह रहा था । उसने तो कभी मृतका से और न कभी उसके माता-पिता से मोटरसाइकिल और 40,000/- रुपए की मांग की थी । अभियुक्त सं. 3 के नियोजन में नहीं होने के कारण इत्तिलाकर्ता उससे क्रोधित था और उन्होंने तारीख 13 मार्च, 2003 को मृतका गीता को अपने घर ले जाने के पश्चात् वापस नहीं भेजा था । गीता ने मई, 2003 में अभियुक्त सं. 3 को दूरभाष से संदेश भेजा था और उसे गुरसरायन पर बुलाया था । जब अखिलेश अभियुक्त सं. 3 अपने ब्रदर-इन-ला के साथ उसे वापस लाने के लिए गया तब इत्तिलाकर्ता ने उनसे दुर्व्यवहार किया था और अपनी पुत्री को भेजने से इनकार करते हुए उन्हें खाली हाथ वापस भेजा दिया था । अभियुक्त सं. 3 द्वारा इस बारे में सूचना देने पर अभियुक्त सं. 1 अपने भाई के साथ उनकी अपनी पुत्रवधु को वापस लाने के लिए गया तब उन्हें पीटा गया था किंतु गांववासियों के हस्तक्षेप करने पर गीता को उसके ससुराल के मकान पर उसके साथ भेजा गया था । अक्तूबर, 2002 में मृतका त्वचा की बीमारी से ग्रसित थी और जिसका डा. गोविल द्वारा उपचार किया गया था । मृतका के गर्भावस्था में होने के कारण उसे डा. दुबे को भी दिखाया गया था और जिन्होंने उसका इलाज जिला अस्पताल में किया था । उसका प्रसव ओरिया जिला अस्पताल में हुआ था क्योंकि अभियुक्त सं. 1 और 2 वहां पर निवास कर रहे थे । प्रसव के पश्चात् मृतका अपने नवजात शिशु के साथ अपने पति के पास वापस आई और अभियुक्त सं. 3 के साथ बरुवा सागर पर निवास करने लगी । किंतु दुर्घटनावश उसकी मृत्यु हो गई या अपने पति के नियोजन में नहीं होने के बारे में इत्तिलाकर्ता द्वारा ताने मारने के कारण उसने आत्महत्या कर ली । घटना के समय पर अभियुक्त सं. 1 किसी कार्य से ग्राम तंदीर गया हुआ था और मृतका अकेले अपने कमरे में थी । अभियुक्त सं. 3 और मृतका के बीच काफी मिलनसार संबंध थे और मृतका द्वारा लिखे गए पत्रों को इस बाबत फाइल किया गया । गीता की मृत्यु के पश्चात् इत्तिलाकर्ता ने अभियुक्त सं. 1 से 3,00,000/- रुपए की मांग की थी । परंतु जब उसने यह कार्य नहीं किया तब इत्तिलाकर्ता ने वर्तमान झूठे मामले में अभियुक्त-अपीलार्थियों को फंसा दिया था । अभियुक्त सं. 2 ने वही प्रतिरक्षा ली है परंतु पति अखिलेश (अभियुक्त सं. 3) ने अलग प्रतिरक्षा फाइल की है जिसमें उसने अभियुक्त सं. 1 की प्रतिरक्षा विस्तारपूर्वक लिखकर प्रकट किया था कि वह मृतका को बहुत अधिक प्यार करता था और उसने नत्थी किए गए पत्रों को लिखा

था । उसने यह भी अभिवाक् किया है कि वह बेरोजगार था । बेरोजगार होने के कारण उसके पास आय का कोई स्वतंत्र स्रोत नहीं था इसलिए वह अपने पिता पर निर्भर था जिस कारण इत्तिलाकर्ता उससे क्रोधित था तथा उससे दुर्व्यवहार किया करता था । मार्च, 2003 में जब इत्तिलाकर्ता मृतका को अपने मकान पर लाया और उसके बाद मृतका को उसने वापस नहीं भेजा । मृतका से जब बातचीत हुई तब वह अपने ब्रदर-इन-ला के साथ उसे वापस लाने के लिए वहां गया था । इत्तिलाकर्ता ने उन्हें गाली दी और बेरोजगार पति के साथ उसे वापस भेजने से इनकार कर दिया और गीता ऐसे लज्जित होने की बात सह नहीं सकी । उसने अभियुक्त सं. 3 को यह सूचना दी कि गर्भावधि के दौरान उसकी अच्छी तरह से देखभाल नहीं की गई थी । अपने ससुराल के मकान से वापस आने के पश्चात् अभियुक्त सं. 3 ने अभियुक्त सं. 1 को गलत कदम उठाने के बारे में बताया और तब जून, 2003 में अभियुक्त सं. 1 अपने भाई के साथ गीता को वापस लाने के लिए गया परंतु इत्तिलाकर्ता द्वारा उन्हें अपमानित किया गया था । इस मुसीबत में गांववासियों द्वारा मध्यक्षेप करने पर गीता को अभियुक्त सं. 1 के साथ भेजा गया था । मृतका का जिला अस्पताल, झांसी में इलाज कराया गया था । प्रसव के समय पर उसे जिला ओरिया ले जाया गया था जहां अभियुक्त सं. 1 को अभियुक्त सं. 2 के साथ देखरेख करने के लिए तैनात किया गया था । मृतका तारीख 13 अक्तूबर, 2003 को अस्पताल में भर्ती की गई थी और उसी दिन उसका प्रसव हो गया था परंतु उसके माता-पिता उसकी खुशी या उसकी सेवा करने के लिए नहीं आए । अस्पताल से छुट्टी मिल जाने के पश्चात् पत्नी और पुत्री को अभियुक्त सं. 3 द्वारा बरुवा सागर लाया गया था । घटना की रात्रि को अभियुक्त सं. 3 समेकन और कृषि कार्य से अपने गांव गया था और अगले दिन उसे अपने पड़ोसियों से अपनी पत्नी की मृत्यु के बारे में पता चला था । अभियुक्त की अग्रिम प्रतिरक्षा के अनुसार मृतका गीता अपने पिता द्वारा गलत कदम उठाने और ताने देने के कारण उसकी मृत्यु हुई क्योंकि या तो उसने आत्महत्या की या दुर्घटनावश उसकी मृत्यु हुई । यह भी कथन किया गया कि अभियुक्त सं. 3 ने उसकी हत्या नहीं की और उसकी मृत्यु के पश्चात् इत्तिलाकर्ता ने पैसों की मांग की थी । पैसे देने में असफल हो जाने के पश्चात् उसने मिथ्या रिपोर्ट दर्ज की थी । अपनी प्रतिरक्षा को सिद्ध करने के लिए अभियुक्त-अपीलार्थियों ने तीन प्रतिरक्षा साक्षी भगवान दास (डी. डब्ल्यू. 1), घंसु राम (डी. डब्ल्यू. 2) और राजेश झा (डी. डब्ल्यू. 3) की परीक्षा की थी ।

10. विद्वान् विचारण न्यायाधीश ने आक्षेपित निर्णय और आदेश द्वारा यह अभिनिर्धारित किया कि आरोप विरचित करके अपीलार्थी की दोषसिद्धि सभी युक्तियुक्त संदेह के परे सिद्ध की गई थी और इसलिए, आरोपित अपराधों के लिए उन्हें दोषसिद्ध करके दंडादिष्ट किया गया जैसाकि इस निर्णय के प्रारंभिक भाग में पहले ही इस बात का उल्लेख किया गया है । इस अपील में पूर्वोक्त निर्णय में अपीलार्थियों की दोषसिद्धि को चुनौती दी गई है ।

11. मैंने अपीलार्थियों की ओर से विद्वान् अधिवक्ता, श्री जे. एस. सैंगर और श्री सुनील सिंह तथा राज्य की ओर से विद्वान् अपर सरकारी अधिवक्ता श्री पंतजलि मिश्रा को सुना तथा मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य तथा दूसरी ओर के साक्षियों के साक्ष्य सहित अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का परिशीलन किया ।

12. दोषसिद्धि के आक्षेपित निर्णय पर आक्षेप करते हुए यह दलील दी गई कि अपीलार्थियों द्वारा कभी भी दहेज की कोई मांग नहीं की गई थी और तद्नुसार वैवाहिक अनुष्ठान और रीति रिवाज के अनुसार अभियुक्त सं. 3 ने मोटरसाइकिल की मांग की थी और ऐसी मांग 'दहेज मांग' की परिधि के अंतर्गत नहीं आएगी और इसलिए, दंड संहिता की धारा 364 के अधीन कोई अपराध नहीं बनता है अतः, अपीलार्थियों के विरुद्ध मामला नहीं बना सकता है । दूसरी यह दलील दी गई थी कि अभियुक्त सं. 1 और 2 के खिलाफ उनकी नातेदारी होने के कारण आरोप विरचित किए गए तथा साक्षियों के परिसाक्ष्य में इस बात का महत्वपूर्ण लोप हुआ है । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में किसी भी ब्यौरे का उल्लेख नहीं किया गया है जो गढ़ा गया हो और जानबूझकर या षड्यंत्र या मिथ्या अभिकथन करके मामला प्रकट हुआ है । आगे यह दलील दी गई कि डाक्टर को प्रभाव में लेकर मृतका की मृत्यु को स्वाभाविक रूप दिया गया था, इस बात का उल्लेख नहीं किया गया है । शव-परीक्षा रिपोर्ट में कण्ठिका अस्थि का अस्थिभंग हुआ है । अभियोजन साक्षी 1 का वृत्तांत अलंकृत, बेहुदा और अविश्वसनीय है । आगे यह दलील दी गई कि ऐसा कोई साक्ष्य नहीं है कि मृतका के मृत्यु के शीघ्र पूर्व उससे दहेज मांग के कारण उसको प्रताड़ित किया गया और परिणामस्वरूप दहेज मृत्यु के अपराध को प्रकट करने के लिए महत्वपूर्ण अनिवार्य संघटक वर्तमान मामले में विद्यमान नहीं है तथा दंड संहिता की धारा 304-ख के अधीन दोषसिद्धि उचित है । अंतिम दलील पर विचार करते हुए यह निवेदन किया गया कि संतान के जन्म होने के

पश्चात् दहेज की कोई मांग नहीं की गई थी और दंड संहिता की धारा 498-क, 304-ख के साथ पठित धारा दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 4 के अधीन अपराधों के लिए अपीलार्थियों की दोषसिद्धि अवैध है और अभिलेख पर प्रकट साक्ष्य के विपरीत है, इसलिए, इसे अपास्त किया जाए । प्रारंभ में पूर्वोक्त निवेदनों पर यह दलील दी गई कि अपील मंजूर की जानी चाहिए और अपीलार्थियों को दोषमुक्त करके उन्हें निर्मुक्त कर दिया जाना चाहिए ।

13. इसके विपरीत, विद्वान् सरकारी अधिवक्ता ने दलील देते हुए यह निवेदन किया कि अभियोजन पक्ष ने मृतका के वास्तविक कुटुंब सदस्यों के तर्कसंगत और विश्वसनीय साक्षियों के आधार पर बिना किसी और स्पष्टता या बिना किसी संदिग्धता के आरोपों को सिद्ध किया है, और इसलिए, अपीलार्थियों की दोषिता सभी युक्तियुक्त संदेह के परे साबित हुई है और आक्षेपित आदेश अचूक है और इसलिए, इस न्यायालय द्वारा उसमें कोई हस्तक्षेप करना अपेक्षित नहीं है । आगे यह दलील दी गई थी कि ऐसा कोई कारण नहीं है कि मृतका के माता-पिता, सगा भाई और चाचा ने अपीलार्थियों को फंसाने के लिए मिथ्या कहानी गढ़ी हो । खासतौर पर, जब वे पोते-पोतियों वाले हों । प्रबल रूप से यह भी दलील दी गई थी कि चिकित्सा रिपोर्ट पूरी तरह प्रतिरक्षा कहानी के बाहर है जैसाकि मृतका की मृत्यु गला घोंटने के कारण हुई थी जिसे मृतका द्वारा स्वयं अंजाम नहीं दिया जा सकता । इस बात पर सावधानी बरतते हुए मृतका का विसरा सुरक्षित रखा गया था कि जहर पीने की कोई संभावना बनती है । अपीलार्थियों की दलील कि मृत्यु का कारण सुनिश्चित नहीं हो पाया था, उस पर यह निवेदन किया गया कि प्रतिरक्षा पक्ष डाक्टर के कथन को अविश्वास योग्य ठहराने में विफल हुआ था कि मृतका की मृत्यु का कारण गला घोंटना था । इस संबंध में डाक्टर का परिसाक्ष्य स्पष्ट है जब उन्होंने मृतका की मृत्यु के बारे में फंदा लगाने की संभावना से इनकार किया था । विद्वान् सरकारी अधिवक्ता ने यह दलील दी कि अपीलार्थी और मृतका के बीच विवाह का समय दो वर्ष से कम है और मृतका हृष्ट-पुष्ट और जवान थी और उसकी आयु लगभग 22 वर्ष थी तथा उसको मातृत्व का आशीर्वाद मिला था और इसलिए, आत्म-हत्या करने का कोई कारण नहीं था । विवाह के समय पर इत्तिलाकर्ता को अभियुक्त सं. 3 के बेरोजगार होने के बारे में पूरी जानकारी थी इसलिए यह कोई कारण नहीं हो सकता कि माता-पिता द्वारा अपीलार्थी के विरुद्ध यह मामला बनाया गया है । यह भी दलील दी

गई कि मोटरसाइकिल की दहेज की निरंतर और असंबद्ध मांग के परिणामस्वरूप मृतका को शारीरिक और मानसिक प्रताड़ना दी गई और अंततः ससुराल वालों के घर में हत्या हुई थी तथा परिणामस्वरूप अपील सार रहित है और पूर्णतया खारिज की जाती है ।

14. मैंने परस्पर प्रतिस्पर्धी दलीलों पर विचार किया और दोनों ओर से किए गए भिन्न-भिन्न निवेदनों के प्रकाश में साक्ष्य और सुसंगत दस्तावेजों की जांच की तथा परस्पर विरोधी दलीलों की परीक्षा करने के पूर्व मैंने दंड संहिता की धारा 304-ख (दहेज मृत्यु) का परिशीलन किया, इससे यह उपदर्शित होता है कि अभियुक्त पर उक्त आरोप को सफलतापूर्वक अभियोजित करने के लिए अभियोजन पक्ष ने सभी युक्तियुक्त संदेहों के परे विश्वासपूर्वक उन्हें साबित किया है तथा बिना किसी संदिग्धता के अनिवार्य संघटकों का पालन किया है । मौखिक साक्ष्य या दस्तावेज या दोनों से विश्वास उत्प्रेरित होता है । प्रथमतः, कि पत्नी की मृत्यु और विवाह के अनुष्ठान की तारीख से 7 वर्ष व्यतीत नहीं हुए हैं । दूसरा, कि मृतका की मृत्यु से कुछ पूर्व उसके पति या उसके नातेदारों द्वारा दहेज की मांग के लिए उसे प्रताड़ित किया गया था । तीसरा, उसकी मृत्यु दाह या शारीरिक क्षति के कारण हुई थी या अन्यथा सामान्य परिस्थितियों के अधीन, चौथा, कि मृतका को दहेज की मांग के कारण उसकी मृत्यु से कुछ पूर्व से प्रताड़ित किया गया था । यदि ये संघटक विश्वासपूर्वक साबित किए जाते हैं, पति और/या उसके नातेदार दहेज मृत्यु के कारण अपराध से हटाया नहीं जा सकता है । उक्त अपराध के संघटकों का विस्तृत रूप से स्पष्टीकरण देते हुए उच्चतम न्यायालय ने **हीरा लाल** बनाम **राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, दिल्ली सरकार)**[1], वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया जो इस प्रकार है :–

> "यह उपबंध तब लागू किया जाता है जब किसी स्त्री की उसके विवाह के 7 वर्ष के भीतर सामान्य परिस्थितियों की अपेक्षा मृत्यु किसी दाह या शारीरिक क्षति से कारित हुई हो और यह उपदर्शित हुआ हो कि अपनी मृत्यु के कुछ पूर्व वह अपने पति द्वारा या अपने पति के किसी नातेदारों द्वारा दहेज की मांग के संबंध में क्रूरता या तंग किए जाने के अध्यधीन रही हो । दंड संहिता की धारा 304 के लागू होने की ओर ध्यान आकर्षित करने के लिए आवश्यक संघटक

---

[1] ए. आई. आर. 2003 एस. सी. 2865.

निम्न प्रकार हैं :–

(i) जहां किसी स्त्री की मृत्यु किसी दाह या शारीरिक क्षति द्वारा कारित की जाती है या उसके विवाह के 7 वर्ष के भीतर सामान्य परिस्थितियों से अन्यथा हो जाती है ।

(ii) ऐसी मृत्यु उसके विवाह के 7 वर्ष के भीतर घटित होनी चाहिए ।

(iii) उसे अपने पति या अपने पति के किसी नातेदार द्वारा उसे तंग किया था या उससे क्रूरता बरती गई हो ।

(iv) ऐसी क्रूरता या तंग किया जाना दहेज के किसी मांग से संबंधित होनी चाहिए ।

(v) ऐसी क्रूरता या तंग किया जाना उसकी मृत्यु के कुछ पूर्व दर्शित हो ।"

15. **बलदेव सिंह** बनाम **पंजाब राज्य**[1] वाले मामले में तत्पश्चात् यह भी अभिनिर्धारित किया गया जो इस प्रकार है :–

"6. दंड संहिता की धारा 304-ख के लागू होने के लिए निम्नलिखित संघटकों से संतुष्ट होना चाहिए –

(i) किसी स्त्री की मृत्यु दाह या शारीरिक क्षति से कारित की जानी चाहिए या उसके विवाह के 7 वर्ष के भीतर सामान्य परिस्थितियों से अन्यथा होनी चाहिए ।

(ii) ऐसी मृत्यु विवाह के 7 वर्ष के अंतर्गत होनी चाहिए ।

(iii) ऐसी मृत्यु के कुछ पूर्व, उस स्त्री से उसके पति या पति के किसी नातेदार द्वारा उससे क्रूरता या तंग किया जाना होना चाहिए ।

(iv) ऐसी क्रूरता या तंग किया जाना दहेज की मांग के संबंध में होना चाहिए ।"

16. यहां पर यह उल्लेख करना लाभदायक होगा कि विधानमंडल ने अपनी बुद्धिमत्ता से साक्ष्य अधिनियम की धारा 113-ख अधिनियमित किया है जिसमें उक्त अपराध के संबंध में उपधारणा का उपबंध करके दहेज मृत्यु

---

[1] ए. आई. आर. 2009 एस. सी. 913.

के आरोप को सिद्ध करने के लिए अभियोजन पक्ष के लिए एक और उपबंध उपबंधित किया गया है । इस पहलू पर उच्चतम न्यायालय द्वारा **हीरा लाल** (उपरोक्त) वाले मामले में विचार किया गया है जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया जो इस प्रकार है :–

> "साक्ष्य अधिनियम की धारा 113-ख वर्तमान मामले के लिए सुसंगत है । दंड संहिता की धारा 304 तथा साक्ष्य अधिनियम की धारा 113-ख दोनों को अंतर्विष्ट किया गया है जैसाकि दहेज मृत्यु बढ़ने के संबंध में मत प्रकट करते हुए दहेज प्रतिषेध (संशोधन) अधिनियम, 1986 का 43 में पहले ही उल्लेख किया गया है । धारा 113-ख का परिशीलन करने पर जो इस प्रकार है –
>
> 113-ख – **दहेज मृत्यु के बारे में उपधारणा** - जब प्रश्न यह है कि व्यक्ति ने किसी स्त्री की दहेज मृत्यु की है और यह दर्शित किया जाता है कि मृत्यु के कुछ पूर्व ऐसे व्यक्ति ने दहेज की किसी मांग के लिए, या उसके संबंध में उस स्त्री के साथ क्रूरता की थी या उसको तंग किया था तो न्यायालय यह उपधारणा करेगा कि क्या ऐसे व्यक्ति ने दहेज मृत्यु कारित की थी ।
>
> **स्पष्टीकरण** – इस धारा के प्रयोजनों के लिए 'दहेज मृत्यु' का वहीं अर्थ है जो भारतीय दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) की धारा 304-ख में है ।"

इन दो उपबंधों के अंतर्वेशन की आवश्यकता है, इस पर भारत के विधि आयोग द्वारा दहेज मृत्यु और विधि सुधार पर तारीख 10 अगस्त, 1988 को अपनी 21वीं रिपोर्ट में इसका व्यापक विश्लेषण किया है । साक्ष्य को सुरक्षित रूप देने के लिए पूर्व विद्यमान विधि पर मत व्यक्त करते हुए दहेज संबंधित मृत्यु को साबित करने के लिए विधानमंडल ने यद्यपि कतिपय आधारभूत आवश्यक तत्वों के सबूत पर दहेज मृत्यु की उपधारणा से संबंधित उपबंध को बुद्धिमत्ता से अंतर्विष्ट किया है । साक्ष्य अधिनियम में धारा 113-ख उपधारणात्मक पृष्ठभूमि पर इसे रखा गया है और उसका अंतर्वेशन किया गया है । दंड संहिता की धारा 304-ख में 'दहेज मृत्यु' की परिभाषा तथा साक्ष्य अधिनियम की धारा 113-ख के उपधारणात्मक शब्दों के अनुसार आवश्यक संघटकों में से एक जो अन्य के बीच में से है । ये दोनों उपबंध स्त्री से संबंधित हैं जो किसी महिला से क्रूरता बरता जाना या उसे तंग किए जाने या दहेज की मांग के संबंध में 'उसकी मृत्यु से कुछ

पूर्व' के अध्यधीन होना चाहिए । धारा 113-ख के अधीन उपधारणा विधि की उपधारणा है । उसमें उल्लिखित आवश्यक सबूत पर न्यायालय के लिए यह बाध्यकारी हो गया है कि ऐसी उपधारणा पर विचार करें कि अभियुक्त ने दहेज मृत्यु कारित की है । यह उपधारणा निम्नलिखित आवश्यकताओं के सबूत पर गणना में ली जाएगी :–

1. न्यायालय के समक्ष यह प्रश्न होना चाहिए कि क्या अभियुक्त ने किसी स्त्री की दहेज मृत्यु की है । (इससे यह अभिप्रेत है कि यह उपधारणा केवल तब उद्भूत हो सकती है यदि अभियुक्त का दंड संहिता की धारा 304-ख के अधीन अपराध के लिए विचारण किया जा रहा है ।)

2. ऐसी स्त्री से उसके पति या नातेदारों द्वारा क्रूरता बरती गई हो या उसे तंग किया गया हो ।

3. ऐसी क्रूरता या तंग किया जाना दहेज की किसी मांग के संबंध में था ।

4. ऐसी क्रूरता या तंग किया जाना उसकी मृत्यु के कुछ पूर्व हुआ था ।

9. साक्ष्य अधिनियम की धारा 113-ख और दंड संहिता की धारा 304-ख का संयुक्त रूप से परिशीलन करने पर यह दर्शित हुआ है कि यह प्रकट करने के लिए कुछ सामग्री होनी चाहिए कि ऐसी स्त्री या पीड़िता से मृत्यु के कुछ पूर्व उससे क्रूरता बरती गई थी या उसे तंग किया गया था । अभियोजन पक्ष को इस बारे में नैसर्गिक या आकस्मिक मृत्यु की संभावना को बाहर करने के लिए ऐसी मृत्यु को इस परिधि के अंतर्गत लाना चाहिए कि मृत्यु सामान्य परिस्थितियों से भिन्न परिस्थितियों में हुई हो । "कुछ पूर्व" वहां पर अति सुसंगत है जहां साक्ष्य अधिनियम की धारा 113-ख और दंड संहिता की धारा 304-ख का प्रयोग किया जाता है । अभियोजन पक्ष यह दर्शित करने के लिए विवश है कि घटना से कुछ पूर्व ऐसी स्त्री से क्रूरता बरती गई थी या उसे तंग किया गया था । केवल ऐसे मामले में ऐसी उपधारणा प्रवर्तन में लाई जाएगी । इस बारे में साक्ष्य अभियोजन पक्ष द्वारा दिया जाना चाहिए । "कुछ पूर्व" सापेक्षिक शब्द है और यह प्रत्येक मामले की परिस्थितियों पर निर्भर होता है । इस बारे में कोई कठोर सूत्र अधिकथित नहीं किया जा सकता जो घटना के कुछ पूर्व

की अवधि को गठित करता है । यह कठिन होगा कि कोई नियत अवधि को इस बारे में उपदर्शित किया जाए । दहेज मृत्यु के अपराध के सबूत के रूप में तथा साक्ष्य अधिनियम की धारा 113-ख के अधीन उपधारणा के प्रकट होने के लिए निकटस्थ परीक्षा का महत्व है । उसकी मृत्यु से "कुछ पूर्व" की अभिव्यक्ति दंड संहिता की धारा 304-ख तथा साक्ष्य अधिनियम की धारा 113-ख में सारभूत रूप से प्रयोग में लाई गई है जो निकटस्थ परीक्षा के लिए विचार में रखी गई है । इसमें कोई निश्चित अवधि को उपदर्शित नहीं किया गया है तथा "कुछ पूर्व" की अभिव्यक्ति को परिभाषित नहीं किया गया है । धारा 114 में प्रयुक्त "कुछ पूर्व" अभिव्यक्ति के साक्ष्य का अधिनियम के दृष्टांत (क) में निर्देश दिया गया है, जो सुसंगत है । यह अधिकथित किया गया है कि कोई न्यायालय यह उपधारणा कर सकेगा कि कोई व्यक्ति जिसका चोरी से कुछ पूर्व माल कब्जे में रखा गया है या तो वह चोर है जिसने चुराई गई उन वस्तुओं की जानकारी होते हुए माल को प्राप्त किया है । जब तक कि उसके कब्जे से प्राप्ति नहीं हो सकती । अवधि की अवधारणा जो कुछ पूर्व शब्द के अंतर्गत आ सकती है, इस बात का न्यायालय अवधारणा करने लिए स्वतंत्र है और अलग-अलग मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर यह बात निर्भर करती है । तथापि, यह उपदर्शित करना पर्याप्त है कि "कुछ पूर्व" की अभिव्यक्ति से सामान्यतया यह विवक्षित होता है कि प्रश्नगत संबंधित क्रूरता या तंग किया जाना और मृत्यु के बीच अत्यधिक अंतराल नहीं होना चाहिए । इसमें निकटस्थता विद्यमान होनी चाहिए तथा दहेज मांग के आधार पर क्रूरता का प्रभाव तथा संबंधित मृत्यु के बीच सक्रिय कड़ी होनी चाहिए । यदि क्रूरता की अभिकथित घटना समय से दूरस्थ है तब संबंधित स्त्री के मानसिक संतुलन को बाधित करना पर्याप्त नहीं होगा । इसका कोई परिणाम नहीं होगा ।

स्पष्टीकरण के लिए यह उल्लेख करना भी समुचित होगा कि "दहेज" की अभिव्यक्ति से क्या अभिप्रेत है । "दहेज" की परिभाषा दहेज प्रतिषेध अधिनियम के अंतर्गत है, जो इस प्रकार है :–

"इस अधिनियम में, 'दहेज' कोई सम्पत्ति या मूल्यवान प्रतिभूति या तो प्रत्यक्ष रूप से या अप्रत्यक्ष रूप से दी जाती है या दिए जाने का करार किया जाता है –

(क) विवाह के किसी एक पक्षकार द्वारा विवाह के दूसरे

पक्षकार को ; या

(ख) विवाह के किसी भी पक्षकार के माता-पिता द्वारा या किसी अन्य व्यक्ति द्वारा विवाह के किसी भी पक्षकार को या किसी अन्य व्यक्ति को या पहले [या विवाह के पश्चात् किसी समय पर] [उक्त पक्षकारों से विवाह के संबंध में परंतु इसमें सम्मिलित नहीं है] उन व्यक्तियों के संबंध में जिन्हें मुस्लिम स्वीय विधि (शरीयत) लागू होती है, स्त्रीधन लागू होता है, स्त्रीधन या मेहर इसके अंतर्गत नहीं है ।

स्पष्टीकरण II – 'मूल्यवान प्रतिभूति' का वही अर्थ है जो भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 30 में है ।''

17. यह अभिव्यक्ति भिन्न-भिन्न न्यायिक निर्णयों/उद्घोषणाओं के अध्यधीन है जिस पर उच्चतम न्यायालय द्वारा **हीरा लाल** (उपरोक्त) वाले मामले में उल्लेख किया गया है :–

"11. पूर्वोक्त परिभाषा से यह स्पष्ट है कि 'दहेज' से कोई सम्पत्ति या मूल्यवान प्रतिभूति जो या तो प्रत्यक्ष रूप से या अप्रत्यक्ष रूप से एक पक्षकार द्वारा दूसरे पक्षकार को दी जाती है या दिए जाने का करार किया जाता है जिसमें एक-दूसरे के पक्षकारों के माता-पिता या कोई अन्य व्यक्ति जो विवाह के पूर्व या विवाह के पश्चात् किसी समय पर उक्त पक्षकारों के विवाह के संबंध में दी जाती हैं, अभिप्रेत है । किंतु इसमें मुस्लिम स्वीय विधि के अधीन स्त्रीधन या मेहर सम्मिलित नहीं है । इस धारा के अधीन प्रयुक्त सभी अभिव्यक्तियों का अति व्यापक अर्थ है । 'या विवाह के पश्चात् किसी समय और' 'उक्त पक्षकारों के विवाह के संबंध में' जिसे संशोधन अधिनियम, 1984 का 63 और अधिनियम, 1986 का 43 जो क्रमशः तारीख 2 अक्तूबर, 1985 और 19 नवंबर, 1986 से पुरःस्थापित किया गया था, प्रभाव में है । इन संशोधनों से उक्त पक्षकारों के विवाह के संबंध में विवाह के पूर्व या विवाह के पश्चात् समय पर सभी मांगों को सम्मिलित करने के आशय से किया जाना प्रतीत होता है । इससे स्पष्ट रूप से विधानमंडल का यह आशय दर्शित हुआ है कि इन अभिव्यक्तियों का व्यापक अर्थ और क्षेत्र है । 'विवाह के संबंध में' की अभिव्यक्ति का निर्बंधित या संकीर्ण अर्थ में वर्णन नहीं किया जा सकता है । 'विवाह के संबंध में' की अभिव्यक्ति एक सामान्य परिपाटी

है और इसकी स्पष्ट भाषा को सामान्यतया समझा जाना चाहिए । इसका उद्देश्य यह रहा है कि प्रत्येक बात जो किसी समय पर अर्थात् विवाह के पूर्व या पश्चात् अपराध के अंतर्गत है । इस परिभाषा के अंतर्गत शामिल होगी किंतु दहेज की मांग जो 'विवाह के संबंध में' की जाती है उसे इस तरह प्रथागत न माना जाए और यह इस धारा के उपबंधों के मूल्यों पर लागू नहीं होता है ।

12. इस प्रक्रम पर, यह उल्लेख करना समुचित होगा कि कतिपय उदाहरणों से यह दर्शित हुआ है कि न्यायालयों द्वारा 'दहेज' क्या माना जाए या क्या नहीं माना जाए । इस न्यायालय ने राम सिंह **बनाम** हरियाणा राज्य [(2008) 4 एस. सी. सी. 70 = ए. आई. आर. 2008 एस. सी. 1294 = 2008 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 1342] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया है कि देनदारियां जो प्रथागत देनदारियों के रूप में हैं, उदाहरण के लिए जो संतान के जन्म के समय पर या अन्य समारोह पर दी जाती हैं समाज या विवाहित कुटुंबों में प्रचलित हैं दहेज की अभिव्यक्ति के अंतर्गत, नहीं आएंगी । सतबीर सिंह **बनाम** पंजाब राज्य (ए. आई. आर. 2001 एस. सी. 2828 = 2001 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 3793) वाले मामले में इस न्यायालय ने पुनः यह अभिनिर्धारित किया है कि 'दहेज' शब्द से ऐसी सम्पत्ति या कोई मूल्यवान वस्तु जो विवाह के संबंध में दी जाती हैं या दिए जाने का करार किया जाता है, से अभिप्रेत होगा । संतान के जन्म तथा अन्य समारोह के संबंध में प्रथागत देनदारियां 'दहेज' शब्द की परिधि के अंतर्गत नहीं आते हैं । मधु सूदन मल्होत्रा **बनाम** के. सी. भंडारी (1988 सप्ली. 1 एस. सी. सी. 424) वाले मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि आभूषणों की तथा अन्य घरेलू वस्तुओं की सूची देना जैसाकि फ्रिज, फर्नीचर और बिजली का सामान आदि जो दुल्हन के माता-पिता या संरक्षकों द्वारा विवाह के तय होने के समय पर, दहेज की मांग की रकम अधिनियम की धारा 2 के अर्थ के अंतर्गत है । 'दहेज' की परिभाषा विवाह के पूर्व या विवाह के समय पर दहेज के लिए करार या दहेज मांग के संबंध में पैसा संदाय किया जाना को निर्बंधित नहीं किया जा सकता है । परंतु इसमें पश्चात्वर्ती मांगों को भी सम्मिलित किया गया है, आंध्र प्रदेश राज्य **बनाम** राजगोपाल आश्वा वाले मामले में इस न्यायालय ने सिद्धांत प्रतिपादित किया है ।

13. न्यायालयों ने यह भी मत व्यक्त किया है कि जहां पति द्वारा अपने ससुर से विनिर्दिष्ट राशि की मांग की गई थी और उसको नहीं लेने पर उसके द्वारा पत्नी को तंग किया गया या प्रताड़ित किया गया और कुछ दिनों के पश्चात् उसकी मृत्यु हो गई, ऐसे मामले स्पष्ट रूप से अधिनियम के अधीन दहेज की परिभाषा के अंतर्गत आते हैं । अधिनियम की धारा 4 दंडात्मक धारा है तथा दहेज की मांग करना जैसाकि अधिनियम की धारा 2 के अधीन परिभाषित है, इस धारा के अधीन दंडनीय है । जैसाकि पूर्व में उल्लेख किया गया है हम इस पहलू की विवेचना करना आवश्यक नहीं समझते हैं क्योंकि हमारे समक्ष अभियुक्त को न तो उक्त अपराध के लिए न तो आरोपित किया गया और न दंडित किया गया है । हमने अधिनियम की धारा 2 के उपबंधों का दंड संहिता की धारा 304-ख के उपबंधों की प्रयोज्यता के बारे में दी गई दलीलों पर विचार करते हुए, अति सीमित क्षेत्र की परीक्षा की है ।

14. हमने दंड संहिता की धारा 304-ख के उपबंधों का पहले ही उल्लेख किया है और 'उसकी मृत्यु से कुछ पूर्व' की अभिव्यक्ति को अत्यधिक महत्व देते हुए धारा में प्रयुक्त किया गया है । हमारा यह मत है कि 'उसकी मृत्यु से कुछ पूर्व' की अभिव्यक्ति का कोई निर्बंधित या संकीर्ण के रूप में अर्थ नहीं निकाला जा सकता है । उन्हें अपनी स्पष्ट भाषा तथा सामान्य परिपाटियों के अर्थ में इसे समझना चाहिए । ये मानव व्यवहार से संबंधित उपबंध हैं और इसलिए, इनका ऐसा कोई संकीर्ण अर्थ नहीं निकाला जा सकता जो अधिनियम के उपबंधों के पूर्ण प्रयोजनों को विफल करते हैं । निःसंदेह ये दंडात्मक उपबंध हैं और इनका कठोर अर्थान्वयन किया जाना चाहिए । परंतु जहां पर कठोर अर्थान्वयन के नियम अपेक्षित हों तब इन उपबंधों को अधिनियम के अन्य सुसंगत उपबंधों तथा स्कीम के साथ संयुक्त रूप से पढ़ा जाना चाहिए । इसके अतिरिक्त वर्णित निर्वचनों को पूर्ण होना चाहिए और जिनसे बेतुके परिणामों से बचा जाना चाहिए और विधि के उद्देश्य और कारणों पर ध्यान दिया जाना चाहिए जिसके लिए उन्हें अधिनियमित किया गया है ।

15. हमारा विचारित मत यह है कि युक्तियुक्त समय की अवधारणा को उत्तम मापदंडों के अनुसार लागू किया जाना चाहिए तथा ऐसे मामलों का मूल्यांकन और परीक्षा की जानी चाहिए । तरसेम

सिंह **बनाम** पंजाब राज्य (ए. आई. आर. 2009 एस. सी. 1454 = 2009 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 928) वाले मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि विधानमंडल का 'उसकी मृत्यु से कुछ पूर्व' के शब्दों को करने के लिए समय की एक परिधि का उपबंध करने का उद्देश्य रहा है जिससे इस विचार को बल मिलता है कि सभी संभ्याव्यताओं के अंतर्गत उसकी मृत्यु ऐसी क्रूरता बरते जाने या तंग किए जाने के परिणामस्वरूप होनी चाहिए । दूसरे शब्दों में यह युक्तियुक्त होना चाहिए और यदि यह प्रत्यक्ष नहीं है, उसकी मृत्यु और क्रूरता से संबंधित दहेज की मांग या उसको तंग किए जाने पर उसकी मृत्यु के बीच के प्रत्यक्ष या निकट का संबंध नहीं है । यशोदा **बनाम** मध्य प्रदेश राज्य वाले मामले में इस न्यायालय ने ऐसा ही मत अभिव्यक्त किया है जहां इस न्यायालय ने यह कहा है कि अवधि की अवधारणा वर्णित मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर होगी । तथापि, ऐसी अभिव्यक्ति से सामान्यतया यह विवक्षित होगा कि प्रश्नगत मृत्यु के संबंध में की गई क्रूरता के बीच युक्तियुक्त समय अंतराल होना चाहिए । यदि ऐसा है तब विधान-मंडल ने अपनी बुद्धिमत्ता से विनिर्दिष्ट रूप से कोई अवधि तय की है जिस पर इस धारा के उपबंध लागू होते हैं । तथापि, दहेज की मांग के साथ क्रूरता के कार्य तथा पीड़िता की मृत्यु के बीच निकटस्थ कड़ी विद्यमान होनी चाहिए । किसी विनिर्दिष्ट अवधि के अभाव में युक्तियुक्त की अवधि की धारणा लागू होगी । इस प्रकार, क्रूरता, तंग किया जाना और दहेज की मांग इतनी पुरानी नहीं होनी चाहिए जिसके पश्चात् पति-पत्नी और कुटुंब के सदस्य ने खुशी से अपना जीवन निर्वाह किया था और इससे उक्त संरक्षण का दुरुपयोग होगा । ऐसी मांग या तंग किया जाना इन उपबंधों के क्षेत्र के अंतर्गत पूर्णतया और समानता के रूप में नहीं आ सकता जब तक कि उसके प्रतिकूल निश्चित साक्ष्य दर्शित न किया जाए । निःसंदेह इन मामलों की वर्णित मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर परीक्षा की जाएगी ।"

18. **तरसेम सिंह** बनाम **पंजाब राज्य**[1] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया है, जो इस प्रकार है :–

"धारा 113-ख के निबंधनों में उपधारणा विधि में पूर्ण है ।

---

[1] ए. आई. आर. 2009 एस. सी. 1454 = 2009 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 928.

इसमें उल्लिखित आवश्यक बातों के सबूत पर न्यायालयों पर बाध्यता डालता है कि ऐसी उपधारणा को प्रकट करे जिस पर अभियुक्त ने दहेज मृत्यु कारित की । निम्नलिखित आवश्यकताओं की सबूत पर भी उपधारणा की जाएगी –

(1) न्यायालय के समक्ष यह प्रश्न होना चाहिए कि क्या अभियुक्त ने किसी स्त्री की दहेज हत्या की है । (इससे यह अभिप्रेत है कि उपधारणा केवल तब की जा सकती है यदि अभियुक्त का दंड संहिता की धारा 304-ख के अधीन अपराध के लिए विचारण किया जा रहा हो)

(2) ऐसी स्त्री अपने पति या उसके नातेदारों द्वारा बरती गई क्रूरता तथा तंग किए जाने के अध्यधीन थी ।

(3) ऐसी क्रूरता या तंग किया जाना किसी दहेज की मांग के संबंध में बरती गई थी ।

(4) ऐसी क्रूरता या तंग किया जाना उसकी मृत्यु से कुछ पूर्व हुआ था ।"

19. दहेज मृत्यु अपराध के संबंध में उपरोक्त प्रतिपादित विधि का विश्लेषण करते हुए जब वर्तमान अपील के तथ्यों का विश्लेषण किया जाए तब यह सुस्पष्ट हो जाता है कि कुछ इन संघटकों के संबंध में अभियोजन पक्ष और अभियुक्त के बीच कोई विसंगति प्रकट नहीं हुई है । प्रथमतः, मृतका का विवाह तारीख 6 दिसंबर, 2001 को मृतका की मृत्यु के 7 वर्ष के अंतर्गत अनुष्ठापित हुआ था । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन कथन प्रश्न सं. 1 का उत्तर देते हैं, अभियुक्त द्वारा विवाह की तारीख स्वीकार की गई है । मृतका की मृत्यु 23 नवंबर, 2003 को हुई थी जिस पर अभियुक्त द्वारा कोई भी प्रश्न नहीं किया गया है । अभियोजन पक्ष ने अपनी ओर से इस विषय पर अकाट्य, विश्वसनीय और विश्वासयोग्य साक्ष्य दिया है । प्रतिरक्षा पक्ष द्वारा अपराध के इस पहलू को कोई चुनौती नहीं दी है । इस प्रकार, विवाह होने के बाद समय व्यतीत हो चुका है जो 7 वर्ष के अंतर्गत ठीक-ठाक था, घटना का स्थान और मृत्यु की तारीख और समय, प्रतिरक्षा द्वारा इन सभी पहलुओं को स्वीकार किए जाने के कारण साबित समझी जाएं और सभी संदेह स्पष्ट हो गए हैं तथा इसलिए, दंड संहिता की धारा 304 के अधीन अपराध के प्रथम संघटक बनते हैं कि मृत्यु विवाह के 7 वर्ष के भीतर हुई थी जिसे सिद्ध किया गया है क्योंकि

यह एक घिसी-पिटी विधि है कि स्वीकार किए गए तथ्य को साबित करने की आवश्यकता नहीं है ।

20. एक अन्य संघटक का भी उल्लेख करते हैं कि जो इस बारे में है कि क्या उसकी मृत्यु दाह या शारीरिक क्षति या उससे भिन्न सामान्य परिस्थितियों के अधीन हुई है, अभियोजन पक्ष ने सभी तथ्य साक्षियों के मौखिक साक्ष्य द्वारा इसे सिद्ध किया है, जिस बात की शवपरीक्षण रिपोर्ट, डाक्टर के साक्ष्यों और मृत्यु-समीक्षा के दौरान पता लगाए गए तथ्यों से विश्वासपूर्वक सम्पुष्टि हुई है । सभी इन साक्षियों की मामले के इन पहलुओं पर प्रतिपरीक्षा करके परीक्षा की गई है । अपीलार्थियों की प्रतिरक्षा यह है कि मृतका की मृत्यु प्रसामान्य रूप से हुई है । प्रतिरक्षा मामले के अनुसार कि उसकी मृत्यु का कारण या तो उसने आत्महत्या की या कोई दुर्घटनावश हुई जबकि मकान में कोई व्यक्ति मौजूद नहीं था । अभियुक्त सं. 1 और 2 ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन यह अभिवाक् किया था कि वे उरई में थे और मकान में मौजूद नहीं थे जब मृतका की मृत्यु हुई थी । इसलिए, उन्होंने उसकी मृत्यु के कारण के बारे में कोई स्पष्टीकरण दिए बिना अन्यत्र होने का दावा किया । अभियुक्त सं. 3 ने यह अभिवाक् किया है कि वह समेकन और राजस्व कार्य के संबध में अपने गांव गया हुआ था तथा वह अपने मकान में मौजूद भी नहीं था और इसलिए, अपनी पत्नी की कैसे मृत्यु हुई की सूचना की जानकारी मिले बिना अन्यत्र स्थान पर रहने का अभिवाक् भी किया है । अपीलार्थियों द्वारा इस तरह की प्रतिरक्षा जो उनके अस्पष्ट कथन तथा असंदिग्ध रूप से विद्वान् विचारण न्यायालय के समक्ष प्रकट किया गया कि मृतका की मृत्यु सामान्य परिस्थितियों के अंतर्गत हुई थी । इस प्रकार, अपीलार्थियों की प्रतिरक्षा मृत्यु के कारण और समय के संबंध में दंड संहिता की धारा 304-ख के अपराध को प्रकट करने के लिए दो अत्यधिक महत्वपूर्ण संघटकों को सिद्ध करने में सबूत के प्रारंभिक भाग से अभियोजन पक्ष को उन्मोचित करता है । ये पहलू जो डाक्टर और मृतका की मृत्यु-समीक्षा तथा शव-परीक्षा रिपोर्ट के साक्ष्य द्वारा सम्पुष्ट भी किए गए हैं, कोई संदेह नहीं छोड़ते हैं कि इन पहलुओं पर अभियोजन पक्ष के अभिकथन सुस्थिर और विश्वासयोग्य हैं । मृतका के शव का शवपरीक्षण दो डाक्टरों के पैनल द्वारा किया गया था जिन्होंने अपनी रायों से सहमति व्यक्त की है कि मृतका की गला घोंट कर मृत्यु की गई थी और उन्होंने प्रचुर सावधानियां बरतते हुए मृतका की जहर पीने से मृत्यु की संभावना को देखते हुए उसका विसरा

भी सुरक्षित रखा था क्योंकि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में ऐसी परिकल्पना अभिव्यक्त की गई थी । निःसंदेह चिकित्सकों की इस पूर्वावधानियों को बेतुके और तुच्छ दलीलों तक विस्तृत किया जा सकता है कि चिकित्सक मृतका की मृत्यु के कारण के बारे में निश्चित नहीं थे । डाक्टर (अभि. सा. 7) ने अपने अभिसाक्ष्य में स्पष्ट रूप से अपनी बात रखी है कि मृतका की मृत्यु गला घोंटने के कारण हुई थी और उसने कोई अनिश्चित शब्दों का प्रयोग नहीं किया है और प्रतिरक्षा सुझाव का विरोध किया था कि मृत्यु फंदा लगाकर लटकने के कारण हो सकती है । डाक्टर ने प्रभावशाली रूप से यह सिद्ध किया था कि मृतका की कण्ठिका अस्थि का अस्थिभंग हुआ था । प्रतिरक्षा पक्ष ने अभियोजन साक्षी 7 की पूर्ण रूप से प्रतिपरीक्षा की थी और उक्त पहलुओं पर काफी गहराई से छानबीन की परंतु डा. वी. वी. आर्य अपनी राय से किसी प्रकार भी टस से मस नहीं हुआ कि मृतका की मृत्यु गला घोंटने के कारण हुई थी । डा. आर्य द्वारा अभिलिखित किए गए निष्कर्षों का डा. प्रदीप पांडे द्वारा समर्थन किया गया था । जैसाकि अभि. सा. 7 द्वारा कथन किया गया है जिन्होंने मृतका के भिन्न-भिन्न परिधान, आभूषण और चूड़ियों को भी साबित किया है जो तात्विक सामग्री के रूप में प्रदर्श क-1 से 16 हैं । प्रतिरक्षा पक्ष द्वारा इन बरामद की गई वस्तुओं को किसी प्रकार भी चुनौती नहीं दी गई है । यहां पर यह उल्लेखनीय है कि चूड़ियां टूटी हुई थीं इस बारे में अभि. सा. 7 द्वारा पुनः साक्ष्य दिया गया है कि वह इस निष्कर्ष में पहुंचा था कि मृतका के गर्दन पर बंध का चिह्न पाए जाने के कारण गला घोंटकर मृत्यु हुई थी जिसमें उसकी कण्ठिका अस्थि का अस्थिभंग हुआ था और फेफड़े, ग्रास नली और फुप्फुसावरण आदि संकुचित थे । उसकी राय के अनुसार गला घोंटने के कारण मृत्यु हुई थी जिस बात की झिल्लियों, मस्तिष्क और फुप्फुसावरण आदि के संकुचित होने के तथ्यों का पता लगाए जाने से समर्थन हुआ है । उसने यह साक्ष्य दिया था कि यद्यपि कण्ठिका अस्थि कोमल हड्डी होती है परंतु बिना दबाव के उसका अस्थिभंग नहीं हुआ है । उसने प्रतिरक्षा सुझाव से इनकार किया था कि उसका अस्थिभंग नहीं हुआ था और राजनैतिक दबाव के कारण उसने मृत्यु का कारण गला घोंटना लिखा था । ऐसा होने पर अभियोजन साक्ष्य और प्रतिरक्षा अभिवाक् पर निश्चायक रूप से यह सिद्ध किया गया है कि मृतका की मृत्यु अप्राकृतिक मृत्यु थी जो अन्यथा सामान्य परिस्थितियों के अंतर्गत है । ऐसे साक्ष्य तथा द्वितीय संघटक दहेज मृत्यु के आरोपों को साबित करने के लिए सिद्ध किया जाना आवश्यक था कि मृतका की मृत्यु

सामान्य परिस्थितियों के अंतर्गत हुई थी, इस बात को पूर्णतया साबित भी किया जाना चाहिए ।

21. पूर्वोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए जिस पर इस बारे में यह अवधारित किया जाना अपेक्षित है कि क्या मामले में दहेज की मांग की गई थी और मृतका की मृत्यु से कुछ पूर्व उक्त दहेज मांग के कारण उसे प्रताड़ित किया गया था ?

22. उक्त दृष्टिकोण से अभियोजन साक्षियों का विश्लेषण करने पर यह निष्कर्ष निकाला गया है कि अति प्रारंभ से यह स्पष्ट और असंदिग्ध अभिकथन किया गया था कि विवाह के दौरान और कुछ समय पश्चात् 40,000/- रुपए से अधिक की कीमत की मोटरसाइकिल की मांग की गई थी । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में बिना किसी अनिश्चितता के ऐसे अभिकथन का उल्लेख किया गया है । यह भी उल्लेख किया गया है कि अभियुक्त सं. 2 उक्त दहेज की मांग के पूरा न होने पर मृतका को प्रताड़ित किया करता था । इत्तिलाकर्ता का वृत्तांत यह था कि जब कभी उसे अपीलार्थियों द्वारा भेजा गया तब उसने केवल उक्त मांग को दोहराया । यह भी उल्लेख किया गया है कि रंगीन टेलीविजन और फ्रिज जो उसे विवाह के समय पर दिए गए थे, उन्हें जमीन पर पटक कर नष्ट कर दिया गया था । उक्त पहलू पर और सभी तथ्य के साक्षियों ने बिना किसी असंगति के एक दूसरे की सम्पुष्टि की है । अभि. सा. 1 जब साक्षी कठघरे में खड़ा हुआ तब उसने विनिर्दिष्ट रूप से यह प्राख्यान किया है कि मोटरसाइकिल की मांग अतिरिक्त की गई थी यद्यपि, इस मांग के बारे में दहेज वस्तु के रूप में कोई सहमति नहीं हुई थी । विवाह के समय पर सभी तीनों अपीलार्थियों ने उक्त मांग को उठाया था यद्यपि, इत्तिलाकर्ता ने इस मांग को पूरा करने में अपनी असमर्थता व्यक्त की थी । विवाह के एक माह पश्चात् जब अभि. सा. 2 मृतका को उसके ससुराल के मकान से वापस लाया गया तब उस समय मृतका ने अपीलार्थियों द्वारा की गई मांग के बारे में अपने माता-पिता को बताया था । मृतका का यह कथन साक्ष्य अधिनियम की धारा 32 के अंतर्गत स्वीकार योग्य है क्योंकि यह उसके मृत्यु के कारण से संबंधित है और इसलिए, उसके मृत्युकालिक कथन के प्रतिरूप में माना गया है । अभियुक्त सं. 1 अपने बड़े भाई भगवती के साथ जब मृतका को वापस लेने के लिए इत्तिलाकर्ता के मकान पर पहुंचा तब उस समय भी अभियुक्त सं. 1 द्वारा मोटरसाइकिल देने की मांग उठाई गई थी । जब अभि. सा. 2 अपनी बहिन को दूसरी बार वापस लाने के लिए गया था तब उसे उसके

साथ नहीं भेजा गया क्योंकि उन्होंने उक्त मांग को पूरा नहीं किया था । उस समय अभियुक्त सं. 1 और अभियुक्त सं. 3 ने मोटरसाइकिल की मांग को भी दोहराया था । अभि. सा. 3 से यह भी कहा गया था कि फ्रिज और टेलीविजन अच्छी कंपनी के नहीं हैं और इन्हें एल. जी. कंपनी से बदला जाना चाहिए । अभि. सा. 2 मृतका के बिना वापस आ गया था । दो दिन के पश्चात् इत्तिलाकर्ता अभियुक्त सं. 1 के मकान पर गया था किंतु प्रारंभ में उसने पूर्ववर्ती कारणों की वजह से उसकी पुत्री को उससे मिलने से मना कर दिया और उस समय अनुनय करने के पश्चात् इत्तिलाकर्ता अपनी पुत्री से मिल सका जिसने उसे यह बताया था कि दहेज की मांग पूरी न कर पाने के कारण उसे मारा-पीटा जा रहा है तथा खाना भी नहीं दिया गया था । मृतका इत्तिलाकर्ता के साथ वापस नहीं भेजी गई थी । एक सप्ताह के पश्चात् जब अभि. सा. 3 रामेश्वर दयाल इत्तिलाकर्ता का भाई और मृतका के चाचा उसे वापस लाने के लिए गए तब उसके द्वारा किया गया प्रयास भी अपीलार्थी द्वारा पूर्वोक्त कारणों से विफल कर दिया गया । घटना की तारीख को अभि. सा. 1 को यह बताया था कि उसकी पुत्री की मृत्यु हो चुकी है और अपीलार्थी दाह संस्कार के लिए उसे ले जा रहे हैं । इत्तिलाकर्ता ने दूरभाष संदेश भेजकर ग्यासी लाल से यह अनुरोध किया कि उन्हें शव का दाह संस्कार करने से रोका जाए किंतु उसने अपनी असमर्थता दिखाई तब इत्तिलाकर्ता पुलिस थाना गुरसरायन गया और उसने गुरसरायन के भारसाधक अधिकारी से यह अनुरोध किया कि इस बारे में पुलिस थाना, बरुवा सागर को सूचित करें कि उसकी पुत्री की हत्या की गई है और अभियुक्त उसके शव का दाह संस्कार करने की कोशिश कर रहे हैं । पुलिस के कहने पर मृतका की मृत्यु के स्थान पर इत्तिलाकर्ता और उसका साला और चचेरे भाई के पहुंचने से पहले मृतका का अंतिम संस्कार नहीं किया जा सका । उसने मकान की प्रथम मंजिल के कमरे में लाश पाई थी और उसकी गर्दन पर लाल और काला बंध चिह्न मौजूद था । इत्तिलाकर्ता (अभि. सा. 1) द्वारा दिए गए ऐसे अभिसाक्ष्य के बारे में अभियुक्त द्वारा तनिक भी इनकार नहीं किया जा सकता । इस बारे में, अभियुक्तों से काफी थका देने वाली और विस्तृत प्रतिपरीक्षा की गई जो कई पृष्ठों में अंकित है । अभियुक्त सं. 1 पुलिस विभाग में नियोजित था और तद्नुसार उसने यह प्रतिरक्षा ली कि वह एलआईयू में तैनात था । इस बात को ध्यान में रखते हुए कोई व्यक्ति उसके विरुद्ध मिथ्या रिपोर्ट दर्ज करने का साहस नहीं जुटा सका । अभि. सा. 1 से मृतका द्वारा लिखे गए अभिकथित पत्रों के बारे में प्रश्न पूछा गया था किंतु उसने स्पष्ट तथा

विनिर्दिष्ट रूप से यह कथन किया है कि विवाह के पश्चात् उसके और मृतका के बीच कोई पत्र व्यवहार नहीं हुआ था यद्यपि, उसने यह स्वीकार किया है कि गीता स्नातक थी । अभि. सा. 1 ने अपने कथन में यह भी स्पष्ट किया है कि किसी भी पड़ोसी ने उसकी कोई मदद नहीं की थी और न वे घटना के स्थान पर उसके साथ थे । उसने यह भी साक्ष्य दिया है कि जब अपीलार्थी के पड़ोसियों ने उन्हें इत्तिलाकर्ता के साथ मृतका को भेजे जाने के लिए मनाने की कोशिश की तब उन्होंने इस बात की भर्त्सना की थी ।

23. घटना के पूर्वोक्त पहलुओं पर बिना किसी महत्वपूर्ण विभेदों को प्रकट करते हुए शेष तीन तथ्यों के साक्षियों के द्वारा अभि. सा. 1 के साक्ष्य की सम्पुष्टि की गई है । मृतका का भाई (अभि. सा. 2) जब उसे साक्षी कठघरे में खड़ा किया गया था तब उसने यह भी सिद्ध किया है कि उसको दिखाए गए पत्र उसकी बहिन के हाथों से नहीं लिए गए थे और न उस पर उसके हस्ताक्षर हैं । उसने प्रतिरक्षा सुझाव से इनकार किया है कि मृतका के कहने पर उसने उन पत्रों को भेजा था । उसने यह भी अभिसाक्ष्य दिया है कि अभियुक्त सं. 2 और अभियुक्त सं. 3 जिन्होंने मकान के अंदर झांकने से इनकार कर दिया था, जब वह अपनी बहिन को वापस लेने के लिए गया था ।

24. इत्तिलाकर्ता का भाई रामेश्वर दयाल (अभि. सा. 3) ने दोनों साक्षियों के साक्ष्य की सम्पुष्टि की है और यह सिद्ध किया है कि वह अभियुक्त सं. 2 था जिसने उससे यह कहा कि वह एल. जी. कंपनी से टेलीविजन और फ्रिज को बदलना चाहता है और उसने 40,000/- रुपए की राशि की मोटरसाइकिल की मांग भी दोहराई थी । उसके अभिसाक्ष्य में यह बात प्रकट हुई है कि अभियुक्त सं. 2 द्वारा टेलीविजन जमीन पर फेंक दिया गया था जहां उसे रखा गया था और उसने टेलीविजन और फ्रिज वापस लाने के लिए लोडर की व्यवस्था की थी । उसके अभिसाक्ष्य में यह प्रकट हुआ है कि उस समय उसने अभियुक्त सं. 2 को यह सलाह दी थी कि फ्रिज और टेलीविजन को वापस न करें क्योंकि यह अच्छी कंपनी के हैं किंतु उसने उसकी सलाह पर कोई ध्यान नहीं दिया । इस साक्षी ने अभियुक्त द्वारा फाइल किए पत्रों को भी दिखाया था और इन प्रश्नों के उत्तर में उसने स्पष्ट रूप से यह अभिसाक्ष्य दिया है कि ये पत्र मृतका के हस्तलेख में नहीं थे । इन बातों को ध्यान में रखते हुए सभी अभियोजन साक्षी संगत हैं और यह कहने में उनकी विश्वसनीयता है कि अपीलार्थियों

द्वारा 40,000/- रुपए की राशि की मोटरसाइकिल की मांग की थी और इसकी मांग पूरी न करने पर मृतका की मृत्यु हुई जो अप्राकृतिक थी । इस प्रकार इस बात को युक्तियुक्त संदेह के परे सिद्ध किया गया है और बिना अंतराल के दहेज की मांग लगातार की गई थी और मृतका अपनी मृत्यु से कुछ पूर्व उक्त मांग को पूरी न कर पाने के कारण उसे प्रताड़ित किया गया था ।

25. इस प्रक्रम पर मैं श्री सैंगर की दलील का उल्लेख करना चाहूंगा कि पति द्वारा प्रथा के रूप में मोटरसाइकिल की मांग की गई थी, वह विवाह की रस्म को पूरा करने जा रहा था और इसलिए, इसे दहेज मांग की शब्दावली के अंतर्गत नहीं रखा जा सकता है । इस दलील में, तनिक भी कोई सार नहीं है । या तो विवाह के दौरान या उसके संबंध में दहेज की मांग की जाती है । पति अभियुक्त सं. 3 द्वारा इस तरह की गई मांग विवाह समारोह के दौरान विवाह से संबंधित थी और परिणामस्वरूप इसकी परिधि से अलग नहीं हो सकती । दहेज की धारणा और इसकी परिभाषा में स्वतः प्रत्येक मांग विवाह के संबंध में की गई है । वर्तमान वाले मामले में अभियुक्त सं. 3 द्वारा विवाह में अपनी पत्नी के रूप में मृतका को अपने पास रखने के लिए मोटरसाइकिल की मांग की गई थी । यह दहेज की मांग के अलावा कुछ भी नहीं है । मानव स्वभाव और उसके क्रियाकलाप विनिर्दिष्ट क्षेत्र के अंतर्गत सीमित नहीं हो सकते । प्रत्येक मामले का उसके स्वयं के गुणागुण पर न्यायनिर्णयन और विनिश्चय किया जाना चाहिए । दहेज मांग को जो बातें गठित करेंगी उनका प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में न्यायनिर्णयन किया जाना चाहिए जो तथ्यों के अनुसार निर्भर होती हैं । कोई ऐसा कठोर सूत्र नहीं हो सकता जिससे कि दहेज मांग को चिन्हांकित किए जा सकें । विधानमंडल ने विवाह की तारीख से 7 वर्ष तक ऐसी मांग करने के समय अंतराल को नियत किया है । यह अभिनिर्धारित किया है कि पति द्वारा विवाह के दौरान दहेज की मांग की जाती है तब उसे दहेज मांग की परिधि के बाहर माना जाएगा और अन्यथा यह भी अभिनिर्धारित किया गया है कि विधानमंडल द्वारा क्या विहित किया गया है और विधि के अंतर्गत ऐसे प्रकट की गई बात दहेज प्रतिषेध अधिनियम के प्रबल प्रयोजन को विफल करेंगी । सभी सामान्य संवेदनाओं के बिना 'दहेज' शब्द की नई परिभाषा देनी पड़ी थी । कोई मांग जो पति या उसके नातेदारों द्वारा जो वैवाहिक बंधन के संबंध के कारण है उन्हें 'दहेज मांग' के अंतर्गत शामिल किया गया है या शामिल किए जाने

की संभावना है, ये बातें प्रत्यात्मकतापूर्वक समझी जानी चाहिएं जो तथ्यों के समूह में वर्णित है । 'दहेज की धारणा' भिन्न-भिन्न न्यायिक निर्वचनों के अध्यधीन है और यह अधिक समय तक अनिर्णीत विषय नहीं रहा है । यह समुचित होगा कि इस प्रक्रम पर उन विनिश्चयों का उल्लेख करें ।

26. **अशोक कुमार** बनाम **हरियाणा राज्य**[1] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया है जो इस प्रकार है :–

> "9. प्रारंभ में हम अपीलार्थी की ओर से किए गए विधिक अनुरोधों पर विचार करेंगे । परंतु इससे पूर्व हम इस बात का भी उल्लेख करना चाहेंगे कि अपीलार्थी को न तो अधिनियम की धारा 4 के अधीन अपराध से आरोपित किया गया था और न वह उक्त अपराध का दोषी पाया गया था । इस प्रकार, इन अनुरोधों की केवल इस दृष्टिकोण से परीक्षा की जानी चाहिए कि अपीलार्थी संहिता की धारा 304-ख के अधीन अपराध के लिए दोषसिद्ध किया गया और अधिनियम के उपबंध मामले के गुणागुण पर परीक्षा करने के लिए ही सुसंगत हैं या अन्यथा इस संबंध में दी गई दलील के संबंध में की 'दहेज' की अभिव्यक्ति संहिता के धारा 304-ख के उपबंधों के स्पष्टीकरण के अनुसार है, जिसका अधिनियम की धारा 2 में वही अर्थ दिया गया है ।
>
> 10. अपीलार्थी दंड संहिता की धारा 304-ख के अधीन अपराध से आरोपित किया गया था । इस दंडात्मक धारा से मामले के आधारिक संघटक स्पष्ट रूप से प्रकट होते हैं जिनका स्पष्ट रूप से अर्थान्वयन किया जाना अपेक्षित है और मामलों के महत्व पर विचार किया जाना चाहिए जहां ऐसी स्त्री की मृत्यु दाह, शारीरिक क्षति या सामान्य परिस्थितियों से भिन्न हुई हो, ऐसी मृत्यु किसी भी प्रकार से विवाह के 7 वर्ष के अंतर्गत हुई हो । यह प्रथम मानदंड है जिसे अभियोजन पक्ष द्वारा साबित किया जाना चाहिए । दूसरा, कि ऐसी स्त्री की मृत्यु के कुछ पूर्व उसे दहेज की मांग के संबंध में पति या पति के किसी नातेदार द्वारा उससे क्रूरता बरती गई या उसे तंग किया गया । तब ऐसी मृत्यु 'दहेज मृत्यु' कही जाएगी तथा यथास्थिति पति या नातेदार ऐसी मृत्यु कारित किया जाना समझा जाएगा । इस धारा के स्पष्टीकरण में यह अपेक्षित है कि दहेज की अभिव्यक्ति

---

[1] ए. आई. आर. 2010 एस. सी. 2839.

अधिनियम की धारा 2 में जो कुछ प्रकट किया गया है, उसका भी वही अर्थ होगा । अधिनियम की धारा 2 के अधीन दहेज की परिभाषा निम्न प्रकार है –

इस अधिनियम में 'दहेज' से कोई ऐसी सम्पत्ति या मूल्यवान प्रतिभूति अभिप्रेत है जो या तो प्रत्यक्ष रूप से या अप्रत्यक्ष रूप से दी जाती है या दिए जाने का करार किया जाता है –

(क) विवाह के एक पक्षकार द्वारा विवाह के दूसरे पक्षकार को ; या

(ख) विवाह के किसी भी पक्षकार के माता-पिता द्वारा या किसी अन्य व्यक्ति द्वारा विवाह के किसी भी पक्षकार को या किसी अन्य व्यक्ति को या पहले [या विवाह के पश्चात् किसी समय पर] [उक्त पक्षकारों के विवाह के संबंध में परंतु इसमें सम्मिलित नहीं है] उन व्यक्तियों के संबंध में जिन्हें मुस्लिम स्वीय विधि (शरीयत) लागू होती है, स्त्रीधन या मेहर इसके अंतर्गत नहीं है ।

स्पष्टीकरण II – मूल्यवान प्रतिभूति पद का वही अर्थ है जो भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 30 में है –

11. उपरोक्त परिभाषा से यह स्पष्ट है कि 'दहेज' से कोई ऐसी संपत्ति या मूल्यवान प्रतिभूति अभिप्रेत है जो विवाह के समय या उसके पूर्व या पश्चात् विवाह के एक पक्षकार द्वारा विवाह के दूसरे पक्षकार को या विवाह के किसी पक्षकार के माता-पिता द्वारा या किसी अन्य व्यक्ति द्वारा विवाह के किसी पक्षकार को या किसी अन्य व्यक्ति को उक्त पक्षकारों के विवाह के प्रतिफलस्वरूप या तो प्रत्यक्षतः या अप्रत्यक्षतः दी गई है या दी जाने के लिए करार की गई है परंतु मुस्लिम स्वीय विधि (शरीयत) के अंतर्गत जिसमें स्त्रीधन या मेहर सम्मिलित नहीं है । इन सभी अभिव्यक्तियों को इस धारा के अधीन प्रयुक्त किया गया है, व्यापक रूप से महत्व दिया गया है । 'या विवाह के किसी समय पश्चात् और उक्त पक्षकारों के विवाह के संबंध में' संशोधित अधिनियम, 1984 का 63 और अधिनियम, 1984 का 43 जो क्रमशः तारीख 2 अक्तूबर, 1985 और 19 नवंबर, 1986 से प्रभाव में आएगी, पुरःस्थापित किया गया था । इन संशोधनों को किए जाने का अभिप्राय विवाह के पूर्व या विवाह के पश्चात् भी किसी समय पर सभी मांगों को सम्मिलित किए जाने का आशय प्रकट

किया गया है, जहां तक उक्त पक्षकारों के संबंध में उन्हें रखा गया था । इससे विधानमंडल का आशय स्पष्ट रूप से उपदर्शित हुआ है कि इन व्यक्तियों का व्यापक अर्थ और क्षेत्र है । 'विवाह के संबंध में अभिव्यक्ति का निर्बंधित या संकीर्ण अर्थ नहीं लिया जा सकता है । विवाह के संबंध में अभिव्यक्ति की आम भाषा और इसकी स्पष्ट शब्दावली को सामान्यतया समझा जाना चाहिए । इसका उद्देश्य यह है कि प्रत्येक बात किसी समय पर भी अपराध को प्रकट करने वाली हों अर्थात् विवाह के पूर्व या पश्चात् जो इस परिभाषा के अंतर्गत समाविष्ट होगी किंतु दहेज की मांग विवाह के संबंध में होनी चाहिए न कि प्रथागत रूप से ....।'

12. इस प्रकम पर यह समुचित होगा कि यह दर्शित करने के लिए कतिपय उदाहरणों का उल्लेख करें कि न्यायालयों द्वारा 'दहेज' के रूप में किन वस्तुओं को माना गया है या नहीं माना गया है । राम सिंह **बनाम** हरियाणा राज्य [(2008) 4 एस. सी. सी. 70 = ए. आई. आर. 2008 एस. सी. 1294 = 2008 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 1342] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि देय जो प्रथागत देय हैं, उदाहरण के लिए संतान के जन्म के समय या अन्य समारोह में दी जाती हैं जिनका समाज और विवाहित कुटुंबों में प्रचलन है । 'दहेज' की अभिव्यक्ति के अधीन नहीं आएगी । सतबीर सिंह **बनाम** पंजाब राज्य (ए. आई. आर. 2001 एस. सी. 2828 = 2001 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 3739) वाले मामले में इस न्यायालय ने पुनः यह अभिनिर्धारित किया है कि 'दहेज' शब्द से कोई सम्पत्ति या मूल्यवान प्रतिभूति विवाह के संबंध में दी जाती है या दिए जाने का करार किया जाता है, होनी चाहिए । किसी संतान के जन्म के समय के संबंध में अन्य समारोह में प्रथागत देय 'दहेज' शब्द की परिधि के अंतर्गत नहीं आते हैं । इस न्यायालय ने मधूसूदन मल्होत्रा **बनाम** के. सी. भंडारी [(1988) सप्ली. 1 एस. सी. सी. 424] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया है कि आभूषणों और अन्य घरेलू वस्तुओं जैसे फ्रिज, फर्नीचर, बिजली उपकरण आदि दुल्हन के माता-पिता या संरक्षकों द्वारा विवाह के तय किए जाने के समय पर, या दहेज के मांग की राशि या रकम दी जाती हैं तो अधिनियम की धारा 2 के अंतर्गत है । 'दहेज' की परिभाषा विवाह के पूर्व या विवाह के समय पर दहेज के संदाय के लिए मांग को करार द्वारा निर्बंधित नहीं

किया जा सकता है । परंतु इसमें पश्चात्वर्ती मागें भी सम्मिलित हैं इस बारे में आन्ध्र प्रदेश राज्य **बनाम** राजगोपाल आश्वा (यथामुद्रित) वाले मामले में इस न्यायालय ने सिद्धांत प्रतिपादित किया था ।

13. न्यायालयों ने यह भी मत व्यक्त किया है कि जहां पति द्वारा अपने ससुर से विनिर्दिष्ट रकम की मांग की गई थी और नहीं दिए जाने पर पत्नी को प्रताड़ित किया गया था और उसके कुछ दिनों के पश्चात् उसकी मृत्यु हो गई ऐसे मामले अधिनियम के अधीन 'दहेज' की परिभाषा के अंतर्गत स्पष्ट रूप से आते हैं । अधिनियम की धारा 4 दंडात्मक धारा है और अधिनियम की धारा 2 के अधीन दहेज की मांग को परिभाषित किया गया है जो इस धारा के अधीन दंडनीय है । जैसाकि पहले ही उल्लेख किया गया है, हमें इस पहलू पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि हमारे समक्ष हाजिर हुआ अभियुक्त न तो आरोपित किया गया है और न उक्त अपराध से दंडित किया गया है । हमने अधिनियम की धारा 2 के उपबंधों की परीक्षा की, संहिता की धारा 304-ख के उपबंधों की प्रयोज्यता के बारे में प्रकट दलीलों पर विचार करने के लिए अतिसीमित दायरा है ।"

27. **बलदेव सिंह** बनाम **पंजाब राज्य**[1] के विनिश्चय में यह अभिनिर्धारित किया गया है जो इस प्रकार है :-

"11. अभियुक्त के विरुद्ध अभिकथित अपराध दंड संहिता की धारा 304-ख के अधीन है जिसमें 'दहेज की मांग' की जाती है, जो स्वतः दंडनीय है । ऐसी मांग न तो स्वीकार की जाती है और न किसी करार द्वारा स्वीकार की जाएगी । किसी अपराधी को दोषसिद्ध किए जाने के लिए दहेज के लिए करार किए जाने की बात साबित होनी चाहिए, तभी कोई अपराधी विधि के चंगुल में जकड़ा जाएगा । जब धारा 304-ख 'दहेज की मांग' का उल्लेख किया जाता तब इसमें अधिनियम के अधीन 'दहेज' की परिभाषा में निर्दिष्ट संपत्ति या मूल्यवान प्रतिभूति की मांग के प्रतिनिर्देश किया जाता है । यह दलील दी जाती है कि वर्तमान मामले में दहेज की कोई मांग नहीं की गई, इसमें कोई बल नहीं है । दहेज मृत्यु और आत्महत्याओं के मामले में पारिस्थितिक साक्ष्य की एक महत्वपूर्ण भूमिका होती है और ऐसे साक्ष्य के आधार पर निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं । ऐसा या तो प्रत्यक्ष या

[1] ए. आई. आर. 2009 एस. सी. 913.

अप्रत्यक्ष हो सकता है । यह महत्वपूर्ण है कि अधिनियम की धारा 4 को अधिनियम, 1984 का 63 द्वारा भी संशोधित किया गया है जिसके अधीन दुल्हन के माता-पिता या अन्य नातेदारों या उनके संरक्षक से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से दहेज की मांग करने का अपराध बनता है । 'करार' शब्द का धारा 2 में उल्लेख किया गया है जिस पर प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में अनुमान निकाला जाना चाहिए । यह निर्वचन किया गया है कि अभियुक्त की दहेज के लिए करार किए जाने पर भी दोषसिद्धि की जा सकती है, यह बात भ्रामक है । यह बात अधिनियम के आज्ञापक उद्देश्य के प्रतिकूल होगी । 'दहेज' की परिभाषा में धारा 3 सहित अधिनियम के अन्य उपबंधों का निर्वचन किया गया है जिसमें दहेज लेने-देने का उल्लेख किया गया है और धारा 4 में अधिनियम और दंड संहिता के अधीन दहेज की मांग के लिए शास्ति पर विचार किया गया है । इसमें यह स्पष्ट है कि अन्य संरक्षकों से दहेज की मांग किए जाने का समाधान होने पर ऐसी मांग किया जाना दंडनीय है । यह हमेशा आवश्यक नहीं है कि दहेज के लिए कोई करार हुआ है ।"

28. **अप्पा साहिब और अन्य** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया जो इस प्रकार है :–

"9. दंड संहिता की धारा 304-ख के दो आवश्यक संघटक अन्य संघटकों से अलग हैं, (i) किसी स्त्री की मृत्यु किसी दाह या शारीरिक क्षति द्वारा कारित की जाती है या सामान्य परिस्थितियों से अन्यथा हो जाती है, और (ii) ऐसी स्त्री से ऐसी किसी 'दहेज' की मांग के संबंध में अपने पति या अपने पति के किसी नातेदार द्वारा उससे क्रूरता बरती जाती है या उसे तंग किया जाता है । ऐसा स्पष्टीकरण दंड संहिता की धारा 304-ख की उपधारा (1) में संलग्न किया गया है जिसमें यह कहा गया है कि 'दहेज' शब्द का वही अर्थ है जो दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 की धारा 2 में है ।

दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 2 का परिशीलन करने पर इस प्रकार है –

"2. 'दहेज' की परिभाषा – इस अधिनियम में 'दहेज' से कोई

[1] ए. आई. आर. 2007 एस. सी. 763.

सम्पत्ति या मूल्यवान प्रतिभूति अभिप्रेत है जो या तो प्रत्यक्षतः या अप्रत्यक्षतः दी जाती है या दिए जाने का करार किया जाता है –

(क) विवाह के एक पक्षकार द्वारा विवाह के दूसरे पक्षकार को ; या

(ख) विवाह के किसी भी पक्षकार के माता-पिता द्वारा या किसी अन्य व्यक्ति द्वारा विवाह के किसी पक्षकार को या किसी अन्य व्यक्ति को उक्त पक्षकारों के विवाह के संबंध में विवाह से पूर्व या विवाह के पश्चात् किसी समय जो वस्तुएं दी जाती हैं, ऐसे व्यक्तियों के मामले में जिनमें मुस्लिम स्वीय विधि (शरीयत) लागू होती है, स्त्रीधन या मेहर सम्मिलित नहीं है ।

'दहेज' शब्द की पूर्वोक्त परिभाषा को ध्यान में रखते हुए कोई सम्पत्ति या मूल्यवान प्रतिभूति जो उक्त पक्षकारों के विवाह के संबंध में विवाह से पूर्व या विवाह से किसी समय पश्चात् प्रत्यक्षतः या अप्रत्यक्षतः दी जाती है या दिए जाने का करार किया जाता है, इसलिए, सम्पत्ति या मूल्यवान प्रतिभूति को देना या लेना पक्षकारों के विवाह से संबंधित होना चाहिए तथा पक्षकारों के विवाह के संबंध में सम्पत्ति या मूल्यवान प्रतिभूति को देने या लेने के बीच संबंध आवश्यक है । दंडात्मक उपबंध के होते हुए इसका पूर्णतया अर्थान्वयन किया जाना चाहिए । दहेज भारत में सामाजिक रीति-रिवाज के लिए जाना जाता है । कानून के सिद्धांत का निर्वचन में यह सुस्थापित किया गया है कि यदि कोई अधिनियम विशिष्ट व्यापार, कारोबार या संव्यवहार के बारे में पारित किया गया है और इसमें प्रयुक्त किए गए शब्द के बारे में प्रत्येक व्यक्ति को व्यापार, कारोबार या संव्यवहार के बारे में पता चलना चाहिए या उसके विशिष्ट अर्थ को समझना चाहिए तब उन शब्दों का विशिष्ट अर्थ के रूप में अर्थान्वयन किया जाना चाहिए । [देखिए भारत संघ **बनाम** गरवा नाइलोन लिमिटेड (ए. आई. आर. 1996 एस. सी. 3509) और केमिकल्स और फाइबर्स आफ इंडिया **बनाम** भारत संघ (ए. आई. आर. 1997 एस. सी. 558], कुछ वित्तीय अभाव के कारण या कुछ अति आवश्यक घरेलू खर्चों को पूरा करने या खाद खरीदने के लिए पैसों की मांग किया जाना दहेज की मांग की शब्दावली में नहीं आ सकता क्योंकि उक्त शब्द को सामान्यतया समझा जाता है ।

अभियोजन पक्ष द्वारा पेश किया गया साक्ष्य से यह दर्शित नहीं होता है कि 'दहेज' के लिए कोई मांग जो दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 2 में परिभाषित है अपीलार्थियों द्वारा की गई थी जिनके बारे में यह अभिकथित किया गया है कि घरेलू खर्चों को पूरा करने के लिए कुछ पैसों के लिए कहा गया था चूंकि दंड संहिता की धारा 304-ख के आवश्यक संघटक यानि दहेज की मांग को सिद्ध नहीं किया गया है इसलिए अपीलार्थियों की दोषसिद्धि कायम रखे जाने योग्य नहीं हो सकती है ।"

29. **अशोक कुमार** (उपरोक्त) वाले मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया है जो इस प्रकार है :–

"16. पति या उसके किसी नातेदार द्वारा क्रूरता बरता जाना या तंग किया जाना जो दहेज की किसी मांग के संबंध में प्रत्यक्षतः संबंधित हो सकती है । दहेज की मांग की अभिव्यक्ति का उसी प्रकार अर्थान्वयन किया जाएगा जो कि इस अभिव्यक्ति के शब्दों में प्रकट की गई है । इसी तरह, 'विवाह के संबंध में' जो अभिव्यक्ति की गई है उसका व्यापक लक्ष्य प्रकट किया गया है ।

कुछ महत्व ऐसा है कि ये अभिव्यक्तियां पक्षकारों के बीच असम्यक् तंग किए जाने या कोई लाभ प्राप्त करने से बचने के लिए समुचित रूप से इसका अर्थान्वयन किया जाना चाहिए । ये दंडात्मक उपबंध हैं किंतु अन्ततोगत्वा ये सामाजिक विधायन की प्रकृति के हैं परंतु इनका आशय सम्पूर्ण समाज से संबंधित अपराधों पर नियंत्रण करना है । दहेज कुछ ऐसी वस्तु है जो पर्याप्त समय के लिए हमारे देश में विद्यमान है और विधानमंडल ने अपनी बुद्धिमत्ता से दहेज प्रतिषेध से संबंधित विधि को अधिनियमित करने के लिए समुचित रूप से विचार किया है जिससे कि यह सुनिश्चित हो जाए कि विवाह का किसी पक्षकार द्वारा विवाह को अस्तित्व में रखने के लिए दहेज की ऐसी मांग के संबंध में क्रूरता न बरती जाए ।"

30. उच्चतम न्यायालय द्वारा विधि की उपरोक्त प्रतिपादना को ध्यान में रखते हुए अपीलार्थियों के काउंसेल की दलील के गुणागुणों पर अवलोकन किया गया है और एतद्द्वारा, इसे हटा दिया गया ।

31. अपीलार्थी के काउंसेल द्वारा दी गई एक दूसरी दलील पर अब हम विचार करते हैं कि मृतका की मृत्यु के कुछ पूर्व कोई मांग नहीं की

गई थी और इसलिए, दंड संहिता की धारा 304 के अधीन आरोप विफल हो जाएगा, इस दलील में कोई भी सार नहीं है । 'उसकी मृत्यु के कुछ पूर्व' सापेक्ष अभिव्यक्ति है और इससे किसी कठोर सूत्र के रूप में कोई परिणाम नहीं निकाला जा सकता । इसका अलग-अलग मामले के विशिष्ट तथ्यों की पृष्ठभूमि में न्यायनिर्णय किया जाना चाहिए जो प्रत्येक विचारण में दिए गए साक्ष्य पर निर्भर होगा ।

32. जब वर्तमान अपील के तथ्यों का संकलन करते हैं, तब अपीलार्थियों के काउंसेल द्वारा दी गई उक्त दलील अतर्कसंगत भी प्रतीत होती है । मृतका के विवाह तथा उसकी मृत्यु के बीच की अवधि दो वर्ष से कम है । इस अवधि के बीच में दहेज की बार-बार मांग की गई थी । सभी तथ्यों के साक्षियों ने अकाट्य साक्ष्य दिया है और उनके साक्ष्यों से विश्वास प्रेरित होता है कि अभियुक्त ने दहेज में मोटरसाइकिल की निरंतर मांग की थी । उक्त मांग को उन्होंने कभी भी पूरा नहीं किया । इसके बावजूद इन साक्षियों से विस्तृत प्रतिपरीक्षा की गई । प्रतिरक्षा पक्ष अपने अभिसाक्ष्य को प्रस्तुत करने में विफल हुआ है । सभी साक्षियों ने एक-दूसरे की सम्पुष्टि की है और इत्तिलाकर्ता और अन्य साक्षियों के लिए ऐसा कोई कारण नहीं था कि उन्होंने अभियुक्त के विरुद्ध कोई मिथ्या कहानी गढ़ी हो, इस मामले में संदेह की कोई गुंजाइश नहीं है कि उक्त मांग कभी भी समाप्त नहीं हुई थी तथा निरंतर मांग की गई थी और अपीलार्थी किसी भी समय पर ऐसी मांग करने से पीछे नहीं हटे । इत्तिलाकर्ता का यह स्पष्ट मामला है कि जब कभी भी मृतका के पैतृक नातेदारों से कोई भी व्यक्ति मिलने पहुंचा तो अपीलार्थी ने मांग उठाई और उन्होंने बार-बार मोटरसाइकिल की मांग दोहराई थी । अपीलार्थियों ने यह दलील दी थी कि संतान के जन्म होने के पश्चात् उक्त मांग समाप्त हो गई थी । इसके प्रतिकूल अभिलेख पर सामग्री प्रकट है क्योंकि इस संबंध में किसी तथ्य के साक्षी की प्रतिपरीक्षा नहीं की गई थी और न इस आशय का कोई साक्ष्य लिया गया था । अभियोजन का संगत रूप से पक्षकथन यह है कि मोटरसाइकिल के दहेज की मांग तब तक निरंतर करते गए जब तक कि गीता की मृत्यु नहीं हो गई । यदि अभियुक्त संतान के उत्पन्न होने के पश्चात् उक्त मांग का फायदा लेना चाहते तो उनके द्वारा इस विषय पर खासतौर पर साक्षियों की प्रतिपरीक्षा की जानी चाहिए थी जब साक्षी कठघरे में खड़े हुए थे । ऐसा साआशय और सचेत होकर मात्र इस कारण से नहीं किया गया था कि अभियुक्त इस तथ्य के बारे में भी सचेत थे कि ऐसी मांग कभी भी नहीं

छोड़ी गई थी । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन उनके कथनों में उन्होंने ऐसे किसी अभिवाक् का उल्लेख नहीं किया है । इस दलील से यह प्रतीत होता है कि यह केवल दूसरी दलील को कमजोर करने के लिए दी गई है । वास्तव में, उस दलील के संबंध में इसका कोई आधार नहीं है । परिणामस्वरूप, अपीलार्थी की दलील नकारात्मक है । इस पहलू पर निम्नलिखित विनिश्चयों से समर्थन मिल सकता है ।

33. **अशोक कुमार** (उपरोक्त) वाले मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा यह मत व्यक्त किया है जो इस प्रकार है :–

> "14. हम संहिता की धारा 304-ख के उपबंधों का पहले ही उल्लेख कर चुके हैं तथा 'उसकी मृत्यु से कुछ पूर्व' के बारे में धारा में अति महत्वपूर्ण अभिव्यक्ति की गई है । हमारा यह मत है कि 'उसकी मृत्यु से कुछ पूर्व' अभिव्यक्ति को निर्बंधित या यथावत् अर्थ में नहीं लिया जा सकता है । इन्हें उनकी स्पष्ट भाषा तथा सामान्य बोल-चाल में उनके अर्थ के संदर्भ को समझा जाना चाहिए । ये मानव व्यवहार से संबंधित उपबंध हैं तथा इसलिए उनका संकीर्ण अर्थान्वयन नहीं किया जा सकता जिससे कि अधिनियम के उपबंधों का पूर्ण प्रयोजन विफल हो जाता हो । निःसंदेह ये दंडात्मक उपबंध हैं । इन्हें रचनात्मक रूप में लिया जाना चाहिए । परंतु पूर्ण रचनात्मक के नियम में भी यह अपेक्षित है कि उपबंधों को अधिनियम के अन्य सुसंगत उपबंधों तथा स्कीम से संयोजित कर पढ़ा जाना चाहिए । इसके अतिरिक्त इसका पूर्ण निर्वचन किया जाना चाहिए जिससे कि एक ओर बेतुके परिणामों से बचा जाए और दूसरी ओर विधि को अधिनियमित किए जाने के उद्देश्य का कारण प्रकट हो ।
>
> 15. हमारा विचारित मत यह है कि युक्तियुक्त समय की धारणा ऐसे मामलों के मूल्यांकन और परीक्षा किए जाने के लिए उसके मानदंड लागू होने चाहिएं । तरसेम सिंह **बनाम** पंजाब राज्य [ए. आई. आर. 2009 एस. सी. 1454 = 2009 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 928] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि विधान का 'उसकी मृत्यु से कुछ पूर्व' शब्द को नियोजित करके समय के व्यास को उपबंधित करने का उद्देश्य रहा है और इस विचार पर जोर दिया गया है कि उसकी मृत्यु इन सभी संभाव्यताओं के अंतर्गत होनी चाहिए जो ऐसी क्रूरता या तंग किए जाने के

परिणामस्वरूप हुई हो । दूसरे शब्दों में, यह युक्तियुक्त होना चाहिए न कि प्रत्यक्ष और मृतका के साथ दहेज के संबंध में बरती गई क्रूरता या उसे तंग किया जाना और उसकी मृत्यु के बीच निकटता का समय हो । यशोदा **बनाम** मध्य प्रदेश राज्य [(2004) 3 एस. सी. सी. 98 = ए. आई. आर. 2005 एस. सी. 1411] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा उसी तरह का मत अभिव्यक्त किया गया है जहां इस न्यायालय ने यह कहा है कि अवधि की अवधारणा किसी वर्णित मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर होगी । तथापि, सामान्यतः अभिव्यक्ति में यह विवक्षित होगा कि बरती गई क्रूरता तथा प्रश्नगत मृत्यु के बीच युक्तियुक्त समय का अंतराल होना चाहिए । यदि ऐसा है तो विधानमंडल ने अपनी बुद्धिमत्ता से विनिर्दिष्ट कोई अवधि दी होगी जो इस धारा के उपबंधों पर लागू होगी । तथापि, पीड़िता से दहेज की मांग के साथ बरती गई क्रूरता के कार्य तथा उसकी मृत्यु के बीच निकटस्थ कड़ी विद्यमान होनी चाहिए । किसी विनिर्दिष्ट अवधि के अभाव में युक्तियुक्त अवधि की धारणा लागू होगी । इस प्रकार, क्रूरता, तंग किया जाना और दहेज की मांग इतनी पुरानी नहीं होनी चाहिए जिसके पश्चात् पति-पत्नी और उसके कुटुंब के सदस्य खुशी के साथ रह रहे हों और इससे उक्त संरक्षण का दुरुपयोग होगा । ऐसी मांग या तंग किया जाना इन उपबंधों के क्षेत्र के अंतर्गत पूर्णतया या समान रूप से तब तक नहीं हो सकता जब तक कि निश्चित साक्ष्य से इसके विपरीत दर्शित न हुई हो । निःसंदेह इन मामलों का वर्णित मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर परीक्षा की जाएगी ।"

34. **उदय चक्रवर्ती और अन्य** बनाम **पश्चिमी बंगाल राज्य**[1] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया है जो इस प्रकार है :–

" 'उसकी मृत्यु से कुछ पूर्व' की अभिव्यक्ति का सम्यक् रूप से ऐसा अर्थान्वयन किया जाना चाहिए जैसाकि विधानमंडल ने इस बारे में विनिर्दिष्ट कोई समय नहीं दिया है जो मृत्यु से पूर्व की अवधि होगी जिस पर दंड संहिता की धारा 304-ख के उपबंध लागू होंगे । युक्तियुक्त समय की धारणा तब प्रयोज्य होगी और ये बातें प्रारंभिक

[1] ए. आई. आर. 2010 एस. सी. 3506.

रूप से वर्णित मामले के तथ्यों पर वर्णित होंगी जो पक्षकारों के आचरण और क्रूरता का प्रभाव और मृतका के अप्राकृतिक मृत्यु के कारण दहेज की मृत्यु के संबंध में उससे बरती गई क्रूरता और तंग किए जाने का प्रभाव होगा । हमारा विचारित मत यह है कि विवाह दो वर्ष की अवधि से अधिक टिक नहीं पाया है अतः सम्पूर्ण अवधि ऐसे मुद्दे का निर्धारण करने के लिए सुसंगत कारक होगी ।"

35. उपरोक्त चर्चाओं से मेरा यह निष्कर्ष है कि अपीलार्थियों द्वारा दहेज की मांग की गई थी और इस मांग को पूरा न करने पर मृतका के विवाह के सात वर्ष के भीतर उसकी मृत्यु गला घोंट कर की गई थी और इसलिए, अभियोजन पक्ष द्वारा उनके विरुद्ध लगाए गए आरोप संदेह के परे सिद्ध किए हैं ।

36. उपरोक्त चर्चा का सार यह है कि इन दोनों अपीलों में जो सभी अपीलार्थियों द्वारा फाइल किए गए हैं, में गुणागुण की कमी है और इसलिए, इन्हें पूरी तरह से खारिज किया जाता है । अपीलार्थी जमानत पर हैं । उनके वैयक्तिक और प्रतिभूति बंधपत्र रद्द किए जाते हैं और उन्हें यह निदेश दिया जाता है कि वे विफल हुए बिना विचारण न्यायालय के समक्ष तत्काल अभ्यर्पण करें जिस पर विचारण न्यायालय को यह निदेश दिया जाता है कि उन्हें गिरफ्तार करवाएं तथा उन्हें उनको दिए गए शेष दंडादेश को भोगने के लिए कारागार में डाला जाए ।

37. इस निर्णय की प्रति सूचना हेतु विचारण न्यायालय को अभिप्रमाणित प्रति के रूप में भेजी जाए ।

अपील खारिज की गई ।

आर्य

इम्तियाज अहमद भाट

बनाम

एफ. आई. एल. इंडस्ट्रीज लिमिटेड

तारीख 2 जून, 2012

न्यायमूर्ति हसनैन मसूदी

परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 (1881 का 26) – धारा 138 – चैक का अनादर – न्यायालय की क्षेत्रीय अधिकारिता – उपरवाल बैंक ही संदाय से इनकार करता या चैक का अनादर करता है तथा संग्रहकर्ता बैंक की प्रास्थिति चैक के पाने वाले के अभिकर्ता या मित्र से अधिक नहीं है, अतः धारा 138 के अधीन परिवाद ग्रहण करने और विचारण करने की अधिकारिता उसी न्यायालय को है, जिसकी अधिकारिता के भीतर उपरवाल बैंक स्थित है ।

परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 – धारा 138 का परंतुक (ख) और (ग) – चैक का अनादर और सूचना की प्राप्ति – लेखीवाल द्वारा चैक के अनादर की सूचना जिस स्थान पर प्राप्त होती है, अनादर से संबंधित तात्विक घटना उस स्थान पर हुई मानी जाएगी न कि उस स्थान पर जहां से चैक के पाने वाले द्वारा सूचना प्रेषित की जाती है और सूचना की प्राप्ति का स्थान न्यायालय की क्षेत्रीय अधिकारिता का अवधारण करेगा ।

मामले के तथ्यों के अनुसार याची ने तारीख 23 दिसम्बर, 2010 को प्रत्यर्थी के पक्ष में एक चैक काटा, जो जम्मू-कश्मीर बैंक लि. की इमाम साहिब शोपियन शाखा के नाम लिखा गया था । प्रत्यर्थी ने चैक को इसके उपरवाल बैंक अर्थात् जम्मू-कश्मीर बैंक की इमाम साहिब शोपियन शाखा से संग्रह के लिए यूनाइटेड कमर्शियल बैंक, सोपोर शाखा को सौंपा । यूनाइटेड कमर्शियल बैंक, जो वर्तमान मामले में संग्रहकर्ता बैंक है, ने तारीख 10 जनवरी, 2011 को प्रत्यर्थी को सूचित किया कि चैक बाउंस हो गया है और तारीख 4 जनवरी, 2011 को उपरवाल बैंक ने "अपर्याप्त निधि" और "लेखीवाल द्वारा संदाय रोक दिया गया है" के आधार पर संदाय करने से इनकार कर दिया । प्रत्यर्थी ने चैक असंदत्त प्राप्त होने के पश्चात् तारीख 31 जनवरी, 2011 को याची को सोपोर से एक मांग सूचना जारी की

जिसमें सूचना की प्राप्ति से 15 दिन के भीतर चैक की रकम के संदाय की मांग की गई । तथापि, याची पूर्वोक्त अवधि के भीतर संदाय करने में असफल रहा और प्रत्यर्थी को अपने अटार्नी धारक की मार्फत परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 की धारा 138 के अधीन मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, उप न्यायाधीश, सोपोर के न्यायालय में एक शिकायत करनी पड़ी । शिकायत ग्रहण की गई और साक्षियों के कथन अभिलिखित किए गए तथा याची के विरुद्ध आदेशिका जारी की गई । याची ने तारीख 30 मई, 2011 की शिकायत को खारिज करने की ईप्सा करते हुए एक आवेदन फाइल किया । उस न्यायालय के समक्ष याची का पक्षकथन यह था कि न्यायालय को शिकायत पर संज्ञान लेने की अधिकारिता नहीं है क्योंकि परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 की धारा 138 के अधीन अपराध का कोई भी संघटक मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, सोपोर के न्यायालय की क्षेत्रीय सीमाओं के भीतर घटित नहीं हुआ था । याची द्वारा फाइल किया गया आवेदन विद्वान् मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा स्वीकार नहीं किया गया और तारीख 21 नवम्बर, 2011 को खारिज कर दिया गया । याची ने व्यथित होकर विचारण न्यायालय के तारीख 21 नवम्बर, 2011 के आदेश को अभिखंडित करने की ईप्सा करते हुए उच्च न्यायालय में याचिका फाइल की । उच्च न्यायालय द्वारा याचिका मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – चैक पाने वाले या सम्यक् अनुक्रम में धारक को चैक भुनाने के लिए इसे देश में किसी भी स्थान पर स्थित अपने संग्रहकर्ता बैंक में परिदत्त करने की पूर्ण स्वतंत्रता है । यदि अधिनियम की धारा 138 के अधीन शिकायत पर संज्ञान लेने के लिए सक्षम न्यायालय की अधिकारिता का अवधारण उस स्थान, जहां संग्रहकर्ता बैंक स्थित है, के आधार पर करने के लिए अनुज्ञात किया जाता है तो पाने वाले या सम्यक् अनुक्रम में धारक को उस स्थान पर अधिकारिता रखने वाले न्यायालय में शिकायत फाइल करने का विकल्प होगा, जहां संग्रहकर्ता बैंक स्थित है । दूसरे शब्दों में, पाने वाले या सम्यक् अनुक्रम में धारक के पास देश में स्थित किसी भी न्यायालय में अधिनियम की धारा 138 के अधीन शिकायत फाइल करने और चैक काटने वाले को अपनी पसन्द के न्यायालय में घसीटने का पूर्ण विकल्प, ऐसे व्यक्ति को होने वाली असुविधा या कठिनाई से अनभिज्ञ रहते हुए, मिल जाएगा । उदाहरण के लिए, पाने वाला या सम्यक् अनुक्रम में धारक श्रीनगर स्थित बैंक के नाम काटे गए चैक को कन्याकुमारी या कोहिमा स्थित अपने संग्रहकर्ता बैंक को परिदत्त करे और यदि चैक बाउंस

हो जाता है, तो श्रीनगर के रहने वाले लेखीवाल को कन्याकुमारी या कोहिमा स्थित न्यायालय में घसीट सकता है । इतना ही नहीं, उक्त मामले में चैक पाने वाले या सम्यक् अनुक्रम में धारक को, जो एक कंपनी है और देश में उसके कार्यालयों का नेटवर्क है, अधिनियम की धारा 138 के अधीन शिकायत को चैक के लेखीवाल को परेशान करने के लिए एक हथियार के रूप में तब्दील करने की खुली छूट मिल जाती है । अब न्यायालय प्रश्न सं. 2 पर विचार करेगा । परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 की धारा 138 के अधीन अपराध केवल और केवल तब पूर्ण होता है जब चैक का लेखीवाल सूचना की तामीली के पश्चात् 15 दिनों के भीतर चैक की रकम का संदाय करने में असफल रहता है । लेखीवाल को केवल इस कारण अभियोजित नहीं किया जा सकता है कि चैक बाउंस हो गया है या "निधियों की अपर्याप्तता" के कारण संदाय से इनकार किया गया है या उसने संदाय रोक दिया है या उसे चैक काटते समय यह जानकारी थी कि उसके खाते में पर्याप्त निधि नहीं है । कारण यह है कि इन सभी घटनाओं के बाद भी लेखीवाल मांग सूचना पर कार्यवाही कर सकता है और सूचना प्राप्त होने के 15 दिनों के भीतर चैक की रकम का संदाय कर सकता है । उक्त पृष्ठभूमि में, चैक के लेखीवाल द्वारा सूचना की प्राप्ति महत्वपूर्ण है और परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 की धारा 138 के अधीन अपराध कारित होने के लिए महत्वपूर्ण घटक है । (पैरा 14, 15 और 16)

उक्त पृष्ठभूमि में, अधिनियम की धारा 138 के परन्तुक (ख) और (ग) में दी गई अभिव्यक्ति "लिखित में सूचना देने" और "उक्त सूचना की प्राप्ति" का निर्वचन उस स्थान के प्रति निर्देश के रूप में किया जाना चाहिए जहां चैक के लेखीवाल द्वारा सूचना प्राप्त की जाती है और वह ऐसी प्राप्ति की तारीख से 15 दिनों के भीतर संदाय करने में असफल रहता है । यह निर्वचन वहां महत्वपूर्ण होगा जहां सूचना प्रेषित करने का स्थान और सूचना प्राप्त होने का स्थान दो भिन्न-भिन्न अधिकारिता वाले क्षेत्रों में है और दो भिन्न-भिन्न नगर या शहर हैं । ऐसी स्थिति में, तात्विक घटना उस स्थान पर घटित होती है, जहां लेखीवाल द्वारा मांग सूचना प्राप्त की जाती है । वर्तमान मामले में, सूचना सोपोर से याची के इमाम साहिब, शोपियन के पते पर प्रेषित की गई थी । इसलिए याची द्वारा सूचना इमाम साहिब, शोपियन में प्राप्त की गई थी/प्राप्त होने की उपधारणा की जाती है । सूचना प्राप्त होने का स्थान ही वह स्थान है जो न्यायालय की अधिकारिता का निर्धारक है, न कि वह स्थान जहां से सूचना भेजी गई थी या प्रेषित की गई थी । (पैरा 22 और 23)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2012]	ए. आई. आर. 2012 (एनओसी) 10 मुम्बई : **जम्बू कुमार जैन और एक अन्य** बनाम **टाटा केपिटल लिमिटेड और अन्य** ;	10
[2011]	(2011) 1 एस. एल. जे. 193 : **मैसर्स रोहित मोटर्स और एक अन्य** बनाम **मैसर्स पंजाब ट्रेक्टर्स लिमिटेड** ;	7
[2010]	(2010) 2 जे. के. जे. 894 : **मैसर्स रोहित मोटर्स और एक अन्य** बनाम **मैसर्स पंजाब ट्रेक्टर्स लिमिटेड** ;	10
[2009]	ए. आई. आर. 2009 एस. सी. 1166 : **मैसर्स हरमन इलैक्ट्रोनिक (प्रा.) लिमिटेड और अन्य** बनाम **मैसर्स नेशनल पेनासोनिक लिमिटेड** ;	7,10
[2009]	ए. आई. आर. 2009 एस. सी. 1355 : **श्रीमती शमशाद बेगम** बनाम **बी. मोहम्मद** ;	8
[1999]	ए. आई. आर. 1999 एस. सी. 3762 : **के. भास्करन्** बनाम **शंकरन् वैद्ययन बालन और एक अन्य** ;	10
[1978]	ए. आई. आर. 1978 एस. सी. 597 : **मेनका गांधी** बनाम **भारत संघ** ।	15

प्रकीर्ण (दांडिक) अधिकारिता : 2011 की दांडिक प्रकीर्ण याचिका सं. 431.

जम्मू-कश्मीर दंड प्रक्रिया संहिता, 1989 संवत् (1933 ईस्वी) की धारा 561-क के अधीन याचिका ।

याची की ओर से श्री एस. एम. अयूब

प्रत्यर्थी की ओर से श्री जैड. ए. शाह

न्यायमूर्ति हसनैन मसूदी – इस याचिका का भविष्य निम्नलिखित दो प्रश्नों के उत्तर पर निर्भर है :–

"(1) क्या परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'अधिनियम' कहा गया है) की धारा 138 के अधीन शिकायत में न्यायालय, जिसकी क्षेत्रीय अधिकारिता के भीतर संग्रहकर्ता बैंक अवस्थित है, को शिकायत ग्रहण करने और विचार करने की अधिकारिता है ।

(2) क्या अधिनियम की धारा 138 के निबंधनों में मांग सूचना जारी/प्रेषित करने का स्थान परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के अधीन शिकायत को ग्रहण करने और विचार करने की न्यायालय की अधिकारिता का अवधारण करता है ।

(3) क्या वर्तमान मामले में का शिकायतकर्ता शिकायत फाइल करने के लिए सक्षम है ।"

2. इससे पूर्व कि उपरोक्त प्रश्नों का उत्तर पता लगाने का प्रयास किया जाए, तथ्यात्मक पृष्ठभूमि पर दृष्टिपात करना उचित होगा ।

3. वर्तमान याचिका में याची के स्वीकृततः प्रत्यर्थी कम्पनी, जो कम्पनी अधिनियम, 1956 के अधीन रजिस्ट्रीकृत है और इसका मुख्यालय शेख बाग, श्रीनगर तथा शाखा कार्यालय सोपोर, जम्मू-कश्मीर में है, के साथ कारबारी सम्बन्ध हैं ।

4. याची ने तारीख 23 दिसम्बर, 2010 को प्रत्यर्थी के पक्ष में 29,58,746/- रुपए का एक चैक काटा, जो जम्मू-कश्मीर बैंक लि. की इमाम साहिब शोपियन शाखा के नाम लिखा गया था । प्रत्यर्थी ने चैक को इसके उपरवाल बैंक अर्थात् जम्मू-कश्मीर बैंक की इमाम साहिब शाखा से संग्रह के लिए यूनाइटेड कमर्शियल बैंक, सोपोर शाखा को सौंपा । यूनाइटेड कमर्शियल बैंक, जो वर्तमान मामले में संग्रहकर्ता बैंक है, ने तारीख 10 जनवरी, 2011 को प्रत्यर्थी को सूचित किया कि चैक बाउंस हो गया है और तारीख 4 जनवरी, 2011 को उपरवाल बैंक ने "अपर्याप्त निधि" और "लेखीवाल द्वारा संदाय रोक दिया गया है" के आधार पर संदाय करने से इनकार कर दिया ।

5. प्रत्यर्थी ने चैक असंदत्त प्राप्त होने के पश्चात् तारीख 31 जनवरी, 2011 को याची को सोपोर से एक मांग सूचना जारी की जिसमें सूचना

की प्राप्ति से 15 दिन के भीतर चैक की रकम के संदाय की मांग की गई । तथापि, याची पूर्वोक्त अवधि के भीतर संदाय करने में असफल रहा और प्रत्यर्थी को अपने अटार्नी धारक की मार्फत परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 की धारा 138 के अधीन मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, उप न्यायाधीश, सोपोर के न्यायालय में एक शिकायत करनी पड़ी । शिकायत ग्रहण की गई और साक्षियों के कथन अभिलिखित किए गए तथा याची के विरुद्ध आदेशिका जारी की गई । याची ने तारीख 30 मई, 2011 को शिकायत को खारिज करने की ईप्सा करते हुए एक आवेदन फाइल किया ।

6. उस न्यायालय के समक्ष याची का पक्षकथन यह था कि न्यायालय को शिकायत पर संज्ञान लेने की अधिकारिता नहीं है क्योंकि परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 की धारा 138 के अधीन अपराध का कोई भी संघटक मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, सोपोर के न्यायालय की क्षेत्रीय सीमाओं के भीतर घटित नहीं हुआ था ।

7. याची ने **हरमन इलैक्ट्रोनिक्स (प्रा.) लिमिटेड** बनाम **नेशनल पेनासोनिक इंडिया (प्रा.) लिमिटेड**[1] और **मैसर्स रोहित मोटर्स और एक अन्य** बनाम **मैसर्स पंजाब ट्रेक्टर्स लिमिटेड**[2] वाले मामलों में अधिकथित की गई विधि को निर्दिष्ट करते हुए इस बात पर जोर दिया कि न तो सूचना जारी करने वाला स्थान और न ही वह स्थान जहां संग्रहकर्ता बैंक स्थित है, परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 की धारा 138 के अधीन शिकायत को ग्रहण करने और विचार करने के लिए न्यायालय की अधिकारिता का निर्धारक है । यह भी दलील दी गई कि प्रत्यर्थी-कम्पनी के नाम में शिकायत फाइल करने वाले व्यक्ति को शिकायत फाइल करने का प्राधिकार नहीं है क्योंकि शिकायत के साथ संलग्न प्राधिकार-पत्र में श्री मोहम्मद अकबर मरजी को परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 की धारा 138 के अधीन विधिक मामलों का संचालन और अनुवर्ती कार्यवाही करने के लिए एक अभिकर्ता के रूप में नामनिर्दिष्ट किया गया है, न कि शिकायत फाइल करने के लिए ।

8. याची द्वारा फाइल किया गया आवेदन विद्वान् मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा स्वीकार नहीं किया गया और तारीख 21 नवम्बर, 2011 को खारिज कर दिया गया । विद्वान् विचारण न्यायालय की यह राय थी कि

---

[1] ए. आई. आर. 2009 एस. सी. 1166.

[2] (2011) 1 एस. एल. जे. 193.

मामले में केवल आदेशिका जारी गई है और अभी संज्ञान लिया जाना है तथा सोपोर स्थित न्यायालय को शिकायत ग्रहण करने और विचार करने की अधिकारिता है । विद्वान् मजिस्ट्रेट ने इस प्रकार अभिनिर्धारित करते हुए **श्रीमती शमशाद बेगम** बनाम **बी. मोहम्मद**[1] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा अधिकथित की गई विधि का अवलंब लिया ।

9. इस याचिका में इसमें उल्लिखित आधारों पर विचारण न्यायालय के तारीख 21 नवम्बर, 2011 के उस आदेश को प्रश्नगत किया गया है, जिसके द्वारा याची के आवेदन को खारिज कर दिया गया था और यह अभिनिर्धारित किया गया था कि सोपोर के न्यायालय को शिकायत ग्रहण करने और विचार करने की अधिकारिता है । याची ने पूर्वोक्त आदेश को यह दावा करते हुए अभिखंडित करने की ईप्सा की है कि यह आदेश विधि की प्रक्रिया के दुरुपयोग की कोटि में आता है और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 561-क के अधीन हस्तक्षेप करने की आवश्यकता है ।

10. मैंने याचिका के साथ-साथ विचारण न्यायालय से प्राप्त अभिलेख का भी परिशीलन किया और पक्षकारों के काउंसेलों को विस्तारपूर्वक सुना । मैंने पक्षकारों द्वारा अपने-अपने आधार को पुष्ट करने के लिए अवलंब लिए गए इन मामलों में की निर्णयज विधियों का परिशीलन किया – (i) **के. भास्करन्** बनाम **शंकरन् वैद्ययन बालन और एक अन्य**[2] (ii) **मैसर्स हरमन इलैक्ट्रोनिक (प्रा.) लिमिटेड और अन्य** बनाम **मैसर्स नेशनल पेनासोनिक लिमिटेड**[3] (iii) **मैसर्स रोहित मोटर्स और एक अन्य** बनाम **मैसर्स पंजाब ट्रेक्टर्स लिमिटेड**[4] (iv) **जम्बू कुमार जैन और एक अन्य** बनाम **टाटा केपिटल लिमिटेड और अन्य**[5] ।

11. इस बात पर जोर देने की आवश्यकता नहीं है कि परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के अधीन अपराध एक "एकल कृत्य" का अपराध नहीं है । अधिनियम की धारा 138 के अधीन अपराध केवल तब पूर्ण होता है जब निम्नलिखित परस्पर जुड़ी हुई घटनाओं की श्रृंखला घटित होती है :–

---

[1] ए. आई. आर. 2009 एस. सी. 1355.

[2] ए. आई. आर. 1999 एस. सी. 3762.

[3] ए. आई. आर. 2009 एस. सी. 1166.

[4] (2010) 2 जे. के. जे. 894.

[5] ए. आई. आर. 2012 (एनओसी) 10 मुम्बई.

1. लेखीवाल द्वारा चैक काटा जाता है ।

2. चैक बैंक में प्रस्तुत किया जाता है ।

3. चैक को उपरवाल बैंक द्वारा संदाय के बिना लौटाया जाता है ।

4. लेखीवाल को मांग की सूचना दी/जारी की जाती है ।

5. लेखीवाल सूचना की प्राप्ति के 15 दिन के भीतर संदाय करने में असफल रहता है ।

12. उपरोक्त सूचीबद्ध घटनाएं आवश्यक रूप से एक स्थान पर घटित न हों । चैक **क** स्थान पर काटा जा सकता है । इसे संदाय के लिए उपरवाल बैंक में **ख** स्थान पर प्रस्तुत किया जा सकता है और **ग** स्थान पर लौटाया जा सकता है । सूचना **घ** स्थान पर दी जा सकती है और उपरवाल **घ** स्थान पर संदाय करने में असफल रह सकता है । चैक पाने वाला या सम्यक् अनुक्रम में धारक ऐसे किसी न्यायालय में शिकायत फाइल कर सकता है जिसकी अधिकारिता के भीतर **क** से **घ** घटनाएं घटती हैं । कारण यह है कि तात्विक घटनाओं में से एक या अधिक जो एक साथ मिलकर परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 की धारा 138 के अधीन अपराध का गठन करती हैं, ऐसे किसी भी स्थान/स्थानों पर घटित हुई हो/हों ।

13. इन परिस्थितियों में, चैक पाने वाले या सम्यक् अनुक्रम में धारक के पास ऐसे किसी भी स्थान पर स्थित न्यायालय में परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 की धारा 138 के अधीन शिकायत फाइल करने का विकल्प रहता है, जिसकी क्षेत्रीय सीमाओं के भीतर इनमें से कोई भी कार्य किया गया था/घटित हुआ था । तथापि, हमें तात्विक घटनाओं और उन कार्रवाइयों के बीच विभेद करना होगा, जो चैक पाने वाला या इसका सम्यक् अनुक्रम में धारक किसी भी तात्विक घटना के संबंध में कर सकता है । वह स्थान, जहां कोई ऐसी कार्रवाई की जाती है जो एक या अधिक तात्विक घटना के लिए केवल सहायक बनती है या उसे सुकर बनाती है, शिकायत को ग्रहण करने और विचार करने के लिए सक्षम न्यायालय की अधिकारिता का निर्धारक नहीं है । उदाहरण के लिए, चैक को पाने वाला या सम्यक् अनुक्रम में धारक अपने वकील से उस स्थान पर मिल सकता है जो उस स्थान से भिन्न है जहां ऊपर वर्णित तात्विक घटनाएं घटित हुई हैं ताकि सूचना का प्रारूप बनाया जा सके, ऐसी स्थिति में वह स्थान जहां वकील का अपना कार्यालय है या जहां सूचना का प्रारूप बनाया जाता है,

अधिनियम की धारा 138 के अधीन शिकायत को प्राप्त करने या विचारण करने के लिए न्यायालय की अधिकारिता के बारे मे विनिश्चयकारी कारक नहीं होगा । इसी प्रकार, पाने वाले या सम्यक् अनुक्रम में धारक के पास उपरवाल बैंक में चैक को भुनाने/संदाय लेने के लिए प्रस्तुत करने का समय न हो और वह चैक को संदाय के लिए प्रस्तुत करने के लिए अपने मित्र या अभिकर्ता से कि उस नगर में जाने के लिए अपेक्षा कर सकता है जहां उपरवाल बैंक स्थित है । ऐसे मित्र या अभिकर्ता का निवास स्थान, जहां उसे चैक सौंपा जाता है, शिकायत को ग्रहण करने या विचार करने के लिए न्यायालय की अधिकारिता का विनिश्चय या अवधारण करने वाला स्थान नहीं होगा । यह मत व्यक्त करने के पश्चात् अब हम इस बात की परीक्षा करेंगे कि क्या चैक पाने वाले या सम्यक् अनुक्रम में धारक द्वारा संग्रहकर्ता बैंक को किए गए चैक के परिदान को एक तात्विक घटना के रूप में माना जाना चाहिए ताकि यह निष्कर्ष निकाला जा सके कि संग्रहकर्ता बैंक का स्थान अधिनियम की धारा 138 के अधीन शिकायत पर संज्ञान लेने के लिए न्यायालय की अधिकारिता का अवधारण करेगा ।

14. चैक पाने वाले या सम्यक् अनुक्रम में धारक को चैक भुनाने के लिए इसे देश में किसी भी स्थान पर स्थित अपने संग्रहकर्ता बैंक में परिदत्त करने की पूर्ण स्वतंत्रता है । यदि अधिनियम की धारा 138 के अधीन शिकायत पर संज्ञान लेने के लिए सक्षम न्यायालय की अधिकारिता का अवधारण उस स्थान, जहां संग्रहकर्ता बैंक स्थित है, के आधार पर करने के लिए अनुज्ञात किया जाता है तो पाने वाले या सम्यक् अनुक्रम में धारक को उस स्थान पर अधिकारिता रखने वाले न्यायालय में शिकायत फाइल करने का विकल्प होगा, जहां संग्रहकर्ता बैंक स्थित है । दूसरे शब्दों में, पाने वाले या सम्यक् अनुक्रम में धारक के पास देश में स्थित किसी भी न्यायालय में अधिनियम की धारा 138 के अधीन शिकायत फाइल करने और चैक काटने वाले को अपनी पसन्द के न्यायालय में घसीटने का पूर्ण विकल्प, ऐसे व्यक्ति को होने वाली असुविधा या कठिनाई से अनभिज्ञ रहते हुए, मिल जाएगा ।

15. उदाहरण के लिए, पाने वाला या सम्यक् अनुक्रम में धारक श्रीनगर स्थित बैंक के नाम काटे गए चैक को कन्याकुमारी या कोहिमा स्थित अपने संग्रहकर्ता बैंक को परिदत्त करे और यदि चैक बाउंस हो जाता है, तो श्रीनगर के रहने वाले लेखीवाल को कन्याकुमारी या कोहिमा स्थित न्यायालय में घसीट सकता है । **भास्करन्** (उपरोक्त) वाले मामले में

उल्लिखित अनुसार बैंक में "चैक प्रस्तुत करना" अभिव्यक्ति का ऐसा निर्वचन चैक के लेखीवाल के लिए गंभीर साबित होगा और उसे अत्यधिक कठिनाई का सामना करना पड़ेगा और जो अनुच्छेद 21 की आज्ञा के प्रतिकूल होगा । यह दोहराना होगा कि **मेनका गांधी** बनाम **भारत संघ**[1] वाले मामले में अधिकथित किए गए अनुसार संविधान के अनुच्छेद 21 द्वारा अनुध्यात प्रक्रिया युक्तियुक्त, ऋजु और न्यायसंगत होनी चाहिए ।

16. इतना ही नहीं, उक्त मामले में चैक पाने वाले या सम्यक् अनुक्रम में धारक को, जो एक कंपनी है और देश में उसके कार्यालयों का नेटवर्क है, अधिनियम की धारा 138 के अधीन शिकायत को चैक के लेखीवाल को परेशान करने के लिए एक हथियार के रूप में तब्दील करने की खुली छूट मिल जाती है ।

17. प्रत्यर्थियों के काउंसेल ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री जैड. ए. शाह द्वारा यह दलील दी गई है कि यदि संग्रहकर्ता बैंक को चैक परिदान करना एक तात्विक घटना अभिनिर्धारित नहीं किया जाता है ताकि उस न्यायालय को अधिकारिता दी जा सके जिसकी क्षेत्रीय सीमाओं के भीतर संग्रहकर्ता बैंक स्थित है, और यदि संग्रहकर्ता बैंक के अवस्थान को ऐसी शिकायत पर संज्ञान लेने के लिए न्यायालय की अधिकारिता का निर्धारक होना अभिनिर्धारित किया जाता है तो चैक पाने वाले को अधिनियम की धारा 138 के अधीन शिकायत फाइल करने के लिए लेखीवाल के बैंक के स्थान पर जाने के लिए मजबूर होना पड़ेगा और इस प्रकार उसे उसी असुविधा का सामना करना पड़ेगा जो कि चैक के लेखीवाल को होनी है ।

18. यह दलील सुनने में दिलचस्प हो सकती है, किंतु खोखली और गुणता रहित है । यह मूल्यांकन किया जाना चाहिए कि चैक पाने वाला जब उसे शोध्य रकम के बदले में किसी मान लीजिए 'क' स्थान पर स्थित बैंक के नाम लिखे गए चैक को स्वीकार कर रहा है तो यह माना जाता है कि उसने 'क' स्थान पर संदाय प्राप्त करने की सम्मति दी है । जब एक बार चैक बाउंस हो जाता है, तो यह उपधारणा की जाती है कि उसने 'क' स्थान पर स्थित न्यायालय की अधिकारिता के लिए सम्मति दी है । दूसरे शब्दों में, पाने वाले की ओर से उस न्यायालय की अधिकारिता के लिए सम्मति देने का घटक रहता है, जिसकी क्षेत्रीय सीमाओं के भीतर वह बैंक स्थित है जिस पर चैक काटा गया है । चैक का लेखीवाल उस समय, जब

---

[1] ए. आई. आर. 1978 एस. सी. 597.

चैक काटता है और पाने वाले द्वारा स्वीकार किया जाता है, उस स्थान के बारे में भिज्ञ नहीं होता है जिस स्थान पर पाने वाले या सम्यक् अनुक्रम में धारक द्वारा संग्रहकर्ता बैंक को चैक सौंपा जा सकता है और यह नहीं माना जा सकता है कि उसने ऐसे परिदान और उस न्यायालय की पारिणामिक अधिकारिता के लिए सम्मति दी है जहां संग्रहकर्ता बैंक स्थित है ।

19. मेरा यह मत है कि संग्रहकर्ता बैंक की प्रास्थिति एक अभिकर्ता के सिवाय कुछ नहीं है और वह संग्रहकर्ता बैंक नहीं है जो संदाय से इनकार करता है या जहां चैक का अनादर होता है और इसलिए संग्रहकर्ता बैंक के अवस्थान के आधार पर अधिकारिता को विनिश्चित नहीं किया जा सकता है । जब एक बार चैक पाने वाला या इसका सम्यक् अनुक्रम में धारक अपने संग्रहकर्ता बैंक को चैक सौंप देता है, तो संग्रहकर्ता बैंक चैक के पाने वाले या चैक के सम्यक् अनुक्रम में धारक के एक मित्र या अभिकर्ता की तरह एक साधन का काम करता है जो चैक को केवल उपरवाल बैंक के पास प्रेषित करता है । वह उपरवाल बैंक ही है जो संदाय से इनकार करता है या जहां चैक अनादृत होता है और इसलिए उस न्यायालय को अधिनियम की धारा 138 के अधीन शिकायत ग्रहण करने और विचार करने की अधिकारिता है जिसकी अधिकारिता के भीतर उपरवाल बैंक स्थित है ।

20. इस प्रकार मत व्यक्त करते हुए, सोपोर स्थित न्यायालय को शिकायत प्राप्त करने और ग्रहण करने की अधिकारिता नहीं थी ।

21. विचारण न्यायालय द्वारा की गई यह मताभिव्यक्ति कि अभी संज्ञान लिया जाना है और केवल आदेशिका जारी की गई है, स्वतः विरोधाभासी और गलत है तथा मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के न्यायालय की अध्यक्षता करने वाले एक न्यायिक अधिकारी से ऐसी प्रत्याशा नहीं की जा सकती है । विद्वान् मजिस्ट्रेट ने याची के विरुद्ध आदेशिका (पुलिस अधीक्षक, जिला पुलवामा को सम्बोधित 500/- रुपए की रकम का जमानतीय वारंट) जारी की है और यह बात स्वीकार नहीं की जा सकती है कि उसने मामले में संज्ञान नहीं लिया है । चाहे जो भी स्थिति हो, इस मताभिव्यक्ति से मामले के स्वरूप में किसी भी रीति में कोई परिवर्तन नहीं होता है । इस प्रकार प्रश्न सं. 1 का उत्तर नकारात्मक होना चाहिए ।

22. अब हम प्रश्न सं. 2 पर आते हैं । परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 की धारा 138 के अधीन अपराध केवल और केवल तब पूर्ण होता है जब चैक का लेखीवाल सूचना की तामीली के पश्चात् 15 दिनों के भीतर

चैक की रकम का संदाय करने में असफल रहता है । लेखीवाल को केवल इस कारण अभियोजित नहीं किया जा सकता है कि चैक बाउंस हो गया है या "निधियों की अपर्याप्तता" के कारण संदाय से इनकार किया गया है या उसने संदाय रोक दिया है या उसे चैक काटते समय यह जानकारी थी कि उसके खाते में पर्याप्त निधि नहीं है । कारण यह है कि इन सभी घटनाओं के बाद भी लेखीवाल मांग सूचना पर कार्यवाही कर सकता है और सूचना प्राप्त होने के 15 दिनों के भीतर चैक की रकम का संदाय कर सकता है । उक्त पृष्ठभूमि में, चैक के लेखीवाल द्वारा सूचना की प्राप्ति महत्वपूर्ण है और परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 की धारा 138 के अधीन अपराध कारित होने के लिए महत्वपूर्ण घटक है ।

23. उक्त पृष्ठभूमि में, अधिनियम की धारा 138 के परन्तुक (ख) और (ग) में दी गई अभिव्यक्ति "लिखित में सूचना देने" और "उक्त सूचना की प्राप्ति" का निर्वचन उस स्थान के प्रति निर्देश के रूप में किया जाना चाहिए जहां चैक के लेखीवाल द्वारा सूचना प्राप्त की जाती है और वह ऐसी प्राप्ति की तारीख से 15 दिनों के भीतर संदाय करने में असफल रहता है । यह निर्वचन वहां महत्वपूर्ण होगा जहां सूचना प्रेषित करने का स्थान और सूचना प्राप्त होने का स्थान दो भिन्न-भिन्न अधिकारिता वाले क्षेत्रों में है और दो भिन्न-भिन्न नगर या शहर हैं । ऐसी स्थिति में, तात्विक घटना उस स्थान पर घटित होती है, जहां लेखीवाल द्वारा मांग सूचना प्राप्त की जाती है । वर्तमान मामले में, सूचना सोपोर से याची के इमाम साहिब, शोपियन के पते पर प्रेषित की गई थी । इसलिए याची द्वारा सूचना इमाम साहिब, शोपियन में प्राप्त की गई थी/प्राप्त होने की उपधारणा की जाती है । सूचना प्राप्त होने का स्थान ही वह स्थान है जो न्यायालय की अधिकारिता का निर्धारक है, न कि वह स्थान जहां से सूचना भेजी गई थी या प्रेषित की गई थी । द्वितीय प्रश्न का उत्तर भी नकारात्मक दिया जाना चाहिए ।

24. प्रश्न सं. 1 और 2 के उत्तर को ध्यान में रखते हुए प्रश्न सं. 3, जो कि तथ्यात्मक प्रकृति का है, पर विचार करना आवश्यक नहीं है और केवल विचारण के प्रारंभ होने तथा पक्षकारों द्वारा अपने-अपने आधारों के समर्थन में साक्ष्य पेश करने के पश्चात् ही विचार किया जाना चाहिए । किसी भी स्थिति में, प्रश्न सं. 3 का उत्तर प्रश्न सं. 1 और 2 के उत्तर को देखते हुए शिकायत की संधार्यता और मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, सोपोर की शिकायत ग्रहण करने और विचार करने की अधिकारिता पर कोई प्रभाव नहीं डालेगा ।

25. चर्चा किए गए कारणों से, यह याचिका मंजूर की जाती है और मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, सोपोर के समक्ष लंबित एफ. आई. एल. लिमिटेड बनाम इम्तियाज अहमद भाट नामक शीर्षक वाली शिकायत और उससे उत्पन्न कार्यवाहियां अभिखंडित की जाती हैं ।

26. अभिलेख निचले न्यायालय को भेजा जाए ।

याचिका मंजूर की गई ।

जस.

(2012) 2 दा. नि. प. 229 **मध्य प्रदेश**

गुड्डा उर्फ सुल्तान सिंह और एक अन्य

बनाम

मध्य प्रदेश राज्य

तारीख 26 मार्च, 2012

न्यायमूर्ति बृज किशोर दूबे और न्यायमूर्ति एस. के. गंगेले

साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1) – धारा 32(1) [सपठित दंड संहिता, 1860 – धारा 300] – मृत्युकालिक कथन – जहां न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि मृत्युकालिक कथन करने वाले की मानसिक और शारीरिक स्थिति ऐसा कथन करने के लिए ठीक थी और उसने स्वेच्छया किसी दबाव के बिना कथन किया वहां साक्ष्य का सारवान् भाग होने के कारण मृत्युकालिक कथन के आधार पर दोषसिद्धि का आदेश पारित किया जा सकता है ।

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 300 – हत्या – जहां पीड़ित की मृत्यु दाह क्षतियों से हुई हो और वे क्षतियां अभियुक्त द्वारा पूतिजीवरक्तता से हुई क्षतियों के कारण पहुंचाई गई हों वहां अभियुक्त के कार्य का प्रत्यक्ष और सन्निकट परिणाम न होते हुए भी अभियुक्त पीड़ित की मृत्यु कारित करने का दायी है ।

विचारण न्यायाधीश ने अभिलेख पर प्रकट सामग्री के आधार पर अभियुक्त मान सिंह के विरुद्ध धारा 449, 302 तथा अभियुक्त गुड्डा के विरुद्ध धारा 449 तथा 302 के साथ पठित धारा 34 के अधीन दंडनीय

आरोप विरचित किए । विचारण न्यायाधीश ने अभिलेख पर रखे गए साक्ष्यों के आधार पर यह अभिनिर्धारित किया कि अभियुक्त/अपीलार्थियों के विरुद्ध आरोप साबित हुए हैं जिसके परिणामस्वरूप उन्हें दोषसिद्ध किया गया और इसमें ऊपर उल्लिखित दंडादेश पारित किया गया । इस तरह, अपीलार्थियों ने विचारण न्यायालय द्वारा पारित किए गए दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के आदेश को आक्षेपित करते हुए यह अपील फाइल की है । 2009 का सेशन विचारण सं. 110 (मध्य प्रदेश राज्य बनाम गुड्डा और एक अन्य) वाले मामले में विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश मुंगावली, जिला अशोक नगर द्वारा तारीख 28 अगस्त, 2009 को पारित किए गए दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के आदेश से व्यथित होकर अपीलार्थियों ने दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 374(2) के अधीन अपील फाइल की जिसमें दंड संहिता की धारा 449 के अधीन अपीलार्थियों को सिद्धदोष करते हुए प्रत्येक को 1,000/- रुपए जुर्माने के साथ 10 वर्ष का कठोर कारावास भोगने का दंडादेश दिया गया, जुर्माने के संदाय का व्यतिक्रम करने पर 1 वर्ष का कठोर कारावास भी दिया गया, इसके अतिरिक्त, दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपीलार्थी मान सिंह तथा दंड संहिता की धारा 302 के साथ पठित धारा 34 के अधीन गुड्डा को तथा उनमें से प्रत्येक को कठोर आजीवन कारावास भोगने का दंडादेश दिया गया, जुर्माने के संदाय का व्यतिक्रम करने पर इस शर्त के साथ 1 वर्ष का कारावास भी दिया गया कि कारागार दंडादेश साथ-साथ चलेंगे । अपीलार्थियों ने दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 374(2) के अधीन यह अपील फाइल की है । उच्च न्यायालय द्वारा अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – प्रदर्श पी-8 मृत्युकालिक कथन है जिसे तहसीलदार राधेश्याम श्रीवास्तव द्वारा अभिलिखित किया गया था । तहसीलदार राधेश्याम श्रीवास्तव ने स्पष्ट रूप से यह कथन किया है कि तारीख 24 अप्रैल, 2006 को उसने मृतका अनिता पत्नी रमेश अहीरवाल के मृत्युकालिक कथन अभिलिखित करने के लिए पुलिस थाना, मुंगावली से अनुरोध पत्र प्राप्त किया था, इसलिए, वह अस्पताल मुंगावली गया था और उसने यह पाया कि पीड़िता अनिता वहां पर भर्ती हुई थी । मृत्युकालिक कथन अभिलिखित करने की कार्यवाही से पूर्व उसने रोगी के हालात के बारे में पूछताछ की थी तब ड्यूटी डाक्टर ने यह प्रमाणित किया था कि पीड़िता अपने कथन देने में समर्थ है, इसके पश्चात् उसने मृत्युकालिक कथन अभिलिखित किया । तहसीलदार राधेश्याम श्रीवास्तव ने मृतका का मृत्युकालिक कथन को साबित करते हुए यह कथन किया है कि पीड़िता ने

इस साक्ष्य को यह बताया कि अभियुक्त मानसिंह और गुड्डा ने चप्पा से उसके शरीर पर मिट्टी का तेल छिड़का था और उसके बाद उस पर आग लगा दी जिसके परिणामस्वरूप वह जल गई । उसने अभिसाक्षी (मृतका) के हालात के बारे में ड्यूटी डाक्टर से पुनः प्रमाणपत्र प्राप्त किया जिन्होंने यह अभिप्रमाणित किया कि वह अपने कथन देने में अच्छी हालत में है । तहसीलदार राधेश्याम श्रीवास्तव पूर्ण स्वतंत्र साक्षी है । यह प्रश्न शेष रह जाता है कि यह साक्षी क्यों झूठ बोलेगा और उसका कथन पर क्यों अविश्वास किया जाना चाहिए । उसके कथन पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है । डा. दिनेश त्रिपाठी ने भी यह अभिसाक्ष्य दिया है कि तारीख 24 अप्रैल, 2006 को तहसीलदार, मुंगावली ने अस्पताल में मृतका अनिता बाई का मृत्युकालिक कथन अभिलिखित किया था । मृत्युकालिक कथन को अभिलिखित करने के पूर्व और पश्चात् उसने यह अभिप्रमाणित किया कि रोगी होश-हवास में थी तथा मृत्युकालिक कथन देने के लिए समर्थ थी । वर्तमान मामले में मृतका अनिता बाई के मृत्युकालिक कथनों पर मुख्यतः आधारित बातों पर दोषसिद्धि की गई है । विधि का यह सुस्थापित सिद्धांत है कि मृत्युकालिक कथन साक्ष्य का सारभूत टुकड़ा है और दोषसिद्धि का आदेश मृत्युकालिक कथन के आधार पर सुरक्षित रूप से अभिलिखित किया जा सकता है । मृत्युकालिक कथन का अवलंब लेकर न्यायालय को इस बात पर सचेत होना चाहिए कि मृत्युकालिक कथन स्वैच्छिक था तथा इसके अतिरिक्त इसे सही रूप से अभिलिखित किया गया था और लिखने वाला पूर्ण रूप से स्वस्थ मानसिक दशा में था और शारीरिक रूप से ऐसा कथन लेने में सक्षम था । (पैरा 11 और 16)

अभिलेख पर प्रकट चिकित्सा साक्ष्य से यह सिद्ध हुआ है कि मृतका अनिता बाई द्वारा भोगी गई जली हुई क्षतियों के प्रत्यक्ष परिणामस्वरूप पूतिजीवरक्तता की शिकार हुई थी । अभिलेख पर ऐसी कोई सामग्री नहीं लाई गई है कि वर्तमान वाले मामले में पूतिजीवरक्तता जली हुई क्षतियों के कारण नहीं हुई थी । अभिलेख पर प्रकट सम्पूर्ण सुसंगत साक्ष्य की परीक्षा करने के पश्चात् हमारा यह समाधान हुआ है कि पीड़िता को पहुंची दाह से क्षतियों के परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु हुई थी । पूतिजीवरक्तता जो मृतका को पहुंची दाह से क्षतियों के संक्रमण के कारण हुई बाद में बढ़ गई थी । इस प्रकार जली हुई क्षतियां पीड़िता की मृत्यु का कारण बनी थीं और जो अपीलार्थियों द्वारा कारित की गई थीं । जब अभियुक्त-व्यक्तियों के कार्यों से कारित की गई मूल क्षति के बारे में जो बचाव किया गया है, वह पूर्णतया असंगत है । कोई भी व्यक्ति संभवतः यह दलील दे सकता है कि

अभियुक्तों के कार्यों के परिणामस्वरूप प्रत्यक्ष या सन्निकट रूप से मृत्यु नहीं हुई थी । अतः न्यायालय को यह अभिनिर्धारित करने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि यह अपीलार्थियों का कार्य था जिसके परिणामस्वरूप मृतका की मृत्यु हुई थी । इसलिए, दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध स्पष्ट रूप से बनता है । इस संदर्भ में न्यायालय को अमर सिंह, मुन्ना सिंह, सूर्यवंशी **बनाम** महाराष्ट्र राज्य वाले मामले में उच्चतम न्यायालय के विनिश्चय का अवलंब लेना लाभदायक होगा जिसमें अभियुक्त ने लैम्प से मिट्टी का तेल निकाला जिसे मृतका के शरीर पर छिड़क दिया । तेल छिड़कने के पश्चात् उसके शरीर पर आग लगा दी जिसके परिणामस्वरूप मृतका के शरीर पर गहरे जले हुए घाव जो 43-45 प्रतिशत थे, से ग्रसित हुई थी और उसकी 22 जून, 1990 को अर्थात् घटना के लगभग 15 दिनों पश्चात् मृत्यु हुई थी और उसकी मृत्यु का कारण अत्यधिक तीव्र जली हुई क्षतियों के कारण आघात होने के साथ पूतिजीवरक्तता के परिणामस्वरूप हुई थी । उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि यह तथ्य शेष रह जाता है कि उसके शरीर पर मिट्टी का तेल छिड़का गया था और आग लगा दी गई थी । इस प्रकार, हम अपीलार्थियों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल के अभिवाक् को स्वीकार नहीं कर सकते कि अभियुक्त की ओर से ऐसा कोई आशय नहीं था कि वह उसकी मृत्यु कारित करता । उन्हें यह पता होना चाहिए कि ऐसे कार्य से प्रकृति के साधारण अनुक्रम में मृत्यु कारित होना संभव थी । (पैरा 22 और 23)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2007]	(2007) 15 एस. सी. सी. 455 : **अमर सिंह, मुन्ना सिंह, सूर्यवंशी** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ;	23
[1994]	ए. आई. आर. 1994 एस. सी. 1582 = 1994 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 1252 : **पृथी** बनाम **हरियाणा राज्य** ;	24
[1994]	ए. आई. आर. 1994 एस. सी. 32 = 1994 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 3903 : **किशन चन्द और एक अन्य** बनाम **पंजाब राज्य** ;	24

[1993]	ए. आई. आर. 1993 एस. सी. 973 : **हरीश कुमार** बनाम **राज्य (दिल्ली प्रशासन)** ;	24
[1992]	ए. आई. आर. 1992 एस. सी. 950 = 1992 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 771 : **देव राज** बनाम **पंजाब राज्य** ;	24
[1974]	ए. आई. आर. 1974 एस. सी. 2363 : **बी. वेंकेटाशवरलु** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य** ;	20
[1968]	1968 क्रिमिनल ला जर्नल 1025 : **मध्य प्रदेश राज्य** बनाम **राम प्रसाद** ।	20

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2009 की दांडिक अपील सं. 695.

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 374 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री ए. के. जैन

प्रत्यर्थी/राज्य की ओर से श्री विवेक खेडकर, लोक अभियोजक

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति बृज किशोर दूबे ने दिया ।

न्या. दूबे – 2009 का सेशन विचारण सं. 110 (मध्य प्रदेश राज्य बनाम गुड्डा और एक अन्य) वाले मामले में विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश मुंगावली, जिला अशोक नगर द्वारा तारीख 28 अगस्त, 2009 को पारित किए गए दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के आदेश से व्यथित होकर अपीलार्थियों ने दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 374(2) के अधीन अपील फाइल की जिसमें दंड संहिता की धारा 449 के अधीन अपीलार्थियों को सिद्धदोष करते हुए प्रत्येक को 1,000/- रुपए जुर्माने के साथ 10 वर्ष का कठोर कारावास भोगने का दंडादेश दिया गया, जुर्माने के संदाय का व्यतिक्रम करने पर 1 वर्ष का कठोर कारावास भी दिया गया, इसके अतिरिक्त, दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपीलार्थी मान सिंह तथा दंड संहिता की धारा 302 के साथ पठित धारा 34 के अधीन गुड्डा उनमें से प्रत्येक को कठोर आजीवन कारावास भोगने का दंडादेश दिया गया, तथा जुर्माने के संदाय का व्यतिक्रम करने पर इस शर्त के साथ 1 वर्ष का कारावास भी दिया गया कि कारागार दंडादेश साथ-साथ चलेंगे । अपीलार्थियों ने दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 374(2) के अधीन यह अपील फाइल की है ।

2. अभियोजन पक्षकथन संक्षेप में इस प्रकार है :–

"(i) कि तारीख 23 और 24 जून, 2006 की मध्य रात्रि में शिकायतकर्ता अनिता बाई (जो मृतका है) अपने बच्चों के साथ प्रांगण में सो रही थी जबकि उसका पति उसके कमरे के अंदर सो रहा था । तारीख 24 जून, 2006 को लगभग 3.00 बजे प्रातः दोनों अभियुक्त गुड्डा और मान सिंह उसके मकान पर पहुंचे और उसके पति के बारे में पूछताछ की । उसने उत्तर दिया कि वह ग्राम लेहारी गया हुआ है और वह वापस नहीं आया है । इस पर, मान सिंह ने दूसरे अभियुक्त गुड्डा से यह कहा कि उसके ऊपर आग लगा दें तब उसने उसको गाली दी । इस प्रक्रम पर गुड्डा ने उसे पकड़ लिया और मान सिंह ने चप्पा (छोटा सा कनस्तर) से उसकी हत्या करने के आशय से उस पर मिट्टी का तेल उड़ेल दिया । मान सिंह ने माचिस से आग लगा दी जिसके परिणामस्वरूप वह जल गई । तब वह मदद के लिए चिल्लाई । उसकी सिसकिओं की आवाज सुनकर उसका पति रमेश (अभि. सा. 1), देवर सेवा राम (अभि. सा. 4), भतीजा (उसके भाई का पुत्र), शेर सिंह (अभि. सा. 3) घटनास्थल पर पहुंचे और उन्होंने आग बुझाई तथा आग बुझाने के दौरान उसके पति के हाथों पर जली हुई क्षतियां कारित हुईं । अभिकथित घटना की तारीख से 3 दिन पूर्व उसके और मान सिंह के बीच कुछ गर्मा-गर्मी बातें हुई थीं । इस मुद्दे पर दोनों अभियुक्त-व्यक्तियों ने उसकी हत्या करने के आशय से उसे जलाया ;

(ii) कि अनिता बाई को उसके पति रमेश द्वारा जली हुई दशा में पुलिस थाना मंगावली लाया गया था जहां उसने घटना की रिपोर्ट दर्ज की ;

(iii) कि पूर्वोक्त रिपोर्ट के आधार पर प्रवीन अस्थाना, (अभि. सा. 12) थाना अधिकारी द्वारा दंड संहिता की धारा 307/34 के अधीन अपराध सं. 108/06 (प्रदर्श पी-16) के अंतर्गत प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत की गई थी । पीड़िता अनिता बाई को चिकित्सा परीक्षा के लिए भेजा गया था तथा सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र, मुंगावली पर उसका उपचार किया गया और उसी क्रम में तहसीलदार मुंगावली से उसका मृत्युकालिक कथन अभिलिखित करने के लिए अनुरोध किया गया । राधेश्याम श्रीवास्तव (अभि. सा. 6), कार्यपालक मजिस्ट्रेट/तहसीलदार अस्पताल पहुंचा और डाक्टर से उसके शारीरिक और मानसिक दशा का आवश्यक प्रमाणपत्र प्राप्त करने के पश्चात्

उसके मृत्युकालिक कथन प्रदर्श पी/8 अभिलिखित किया ;

(iv) कि डा. दिनेश त्रिपाठी (अभि. सा. 7) चिकित्सा अधिकारी सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र, मुंगावली ने अनिता बाई की परीक्षा की तथा चिकित्सा रिपोर्ट प्रदर्श पी/9 द्वारा यह निष्कर्ष निकाला कि उसका शरीर सिर्फ पैरों से लेकर दोनों घुटनों को छोड़कर पूरा शरीर जला हुआ था, उसकी गंभीर दशा को देखते हुए उसे आगे उपचार हेतु जिला अस्पताल, गूना भेजा गया था जहां से उसे भोपाल भेजा गया था किंतु रास्ते पर उसकी जली हुई क्षति के कारण मृत्यु हो गई । मृतका की मृत्यु के पश्चात् मामले को दंड संहिता की धारा 307/34 को धारा 302/34 में परिवर्तित कर दिया गया ;

(v) कि वी. एस. गौतम, सहायक उप-निरीक्षक (अभि. सा. 11) ने घटनास्थल का नक्शा (प्रदर्श पी-2) तैयार किया और घटना के स्थान से आवश्यक वस्तुओं को अभिगृहीत किया तथा अभिगृहीत वस्तुएं न्यायालयिक प्रयोगशाला को भेजे गए थे । अन्वेषक अधिकारी ने शव की मृत्यु परीक्षा की थी और इसे शवपरीक्षण के लिए भेज दिया गया । डा. वी. के. शर्मा (अभि. सा. 8) ने सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र, मुंगावली पर शवपरीक्षण किया और यह राय व्यक्त की कि मृत्यु का कारण अत्यधिक शरीर के जलने के परिणामस्वरूप आघात से हुई थी ; और

(vi) कि अन्वेषक अधिकारी ने साक्षियों के कथनों को अभिलिखित किया जो अपराध के तथ्यों से भली-भांति परिचित थे और अभियुक्त/अपीलार्थियों को गिरफ्तार किया । अन्वेषण पूरा होने के पश्चात् सुपुर्दगी न्यायालय के समक्ष अपीलार्थियों के विरुद्ध आरोप पत्र फाइल किया गया था और जिसके बदले में सेशन न्यायालय को मामला सुपुर्द किया गया था जहां विचारण न्यायालय द्वारा विचारण किए जाने के लिए मामले को प्राप्त किया गया था ।"

3. विचारण न्यायाधीश ने अभिलेख पर प्रकट सामग्री के आधार पर अभियुक्त मान सिंह के विरुद्ध धारा 449, 302 तथा अभियुक्त गुड्डा के विरुद्ध धारा 449 तथा 302 के साथ पठित धारा 34 के अधीन दंडनीय आरोप विरचित किए । अपीलार्थी-अभियुक्तों ने आरोप से इनकार किया और विचारण किए जाने का दावा किया । अपीलार्थियों ने अपनी प्रतिरक्षा में यह बात कही कि उन्हें मिथ्या रूप से फंसाया गया है । मृतका के ग्राम रुहाना के यादव नामक व्यक्ति से अवैध संबंध थे और अभियुक्तों द्वारा

मृतका के पति को इस बात की सूचना दी गई थी । इस पर मृतका और उसके पति के बीच झगड़ा हुआ था और इसलिए, मृतका ने स्वयं अपने ऊपर मिट्टी का तेल छिड़ककर आग लगा ली और यही प्रतिरक्षा दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 313 के अधीन अभियुक्तों के अभिलिखित कथन में भी कही गई है ।

4. अभियोजन ने आरोपों को सिद्ध करने के लिए कुल मिलाकर तेरह साक्षियों की परीक्षा की और अभिलेख पर दस्तावेज प्रदर्श पी-1 से पी-17 पेश किए । अभियुक्तों ने अपनी प्रतिरक्षा में किसी साक्षी की परीक्षा नहीं करवाई ।

5. विचारण न्यायाधीश ने अभिलेख पर रखे गए साक्ष्यों के आधार पर यह अभिनिर्धारित किया कि अभियुक्त-अपीलार्थियों के विरुद्ध आरोप साबित हुए हैं जिसके परिणामस्वरूप उन्हें दोषसिद्ध किया गया और इसमें ऊपर उल्लिखित दंडादेश पारित किया गया ।

6. इस तरह, अपीलार्थियों ने विचारण न्यायालय द्वारा पारित किए गए दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के आदेश को आक्षेपित करते हुए यह अपील फाइल की है ।

7. दोषसिद्धि के आक्षेपित निर्णय की वैधानिकता को अपीलार्थियों द्वारा अभिलेख पर प्रकट साक्ष्य का गलत मूल्यांकन किए जाने के आधार पर चुनौती दी गई । अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल श्री ए. के. जैन ने यह दलील दी कि दंड संहिता की धारा 499 और 302 के अधीन अपराध के संघटकों को सिद्ध करने के लिए कोई तर्कसंगत साक्ष्य नहीं है । तथाकथित प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों ने अभियोजन पक्षकथन का समर्थन नहीं किया है । कार्यपालक मजिस्ट्रेट द्वारा अभिलिखित मृत्युकालिक कथन पर बड़ी त्रुटि है । राधेश्याम (अभि. सा. 6) ने यह तर्क दिया है कि मृतका उचित रूप से बोलने की स्थिति में नहीं थी और इसलिए, उसके मृत्युकालिक कथन (प्रदर्श पी-8) का अवलंब लेने में अत्यधिक संदेह पैदा होता है । विचारण न्यायालय ने अपीलार्थियों को दोषसिद्ध करके गलती की है, इसलिए, यह अपील मंजूर की जाती है और अपीलार्थियों को आरोपों से दोषमुक्त किया जाता है ।

8. विद्वान् काउंसेल द्वारा अनुकल्प दलील दी गई कि अपीलार्थियों का कोई आशय या पूर्व षड्यंत्र मृतका की हत्या करने का नहीं था तथा अभिकथित घटना तारीख 24 अप्रैल, 2006 को कुछ विवाद के कारण

अचानक घटी और मृतका की 17 दिनों के पश्चात् अर्थात् 12 मई, 2006 को पूतिजीवरक्तता के कारण मृत्यु हुई थी । इसलिए, निश्चायक रूप से यह नहीं कहा जा सकता है कि अभिकथित जली हुई क्षतियां उसकी मृत्यु कारित किए जाने के लिए पर्याप्त थीं और इसलिए अधिक से अधिक मामला दंड संहिता की धारा 326/34 या धारा 304 भाग 2 के अंतर्गत आएगा । उसने उनके द्वारा पहले ही भोगी गई दंडादेश की अवधि से कारागार दंडादेश को घटाने के लिए प्रार्थना की । उन्होंने निम्नलिखित विनिश्चयों का अवलंब लिया :–

"(1) बी. एन. कावतकार और एक अन्य **बनाम** कर्नाटक राज्य (1994) सप्ली. (1) एस. सी. सी. 304 ;

(2) हरीश कुमार **बनाम** राज्य (दिल्ली प्रशासन) ए. आई. आर. 1993 एस. सी. 973 ;

(3) किशन चन्द और एक अन्य **बनाम** पंजाब राज्य ए. आई. आर. 1994 एस. सी. 32 = 1993 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 3903 ;

(4) पृथी **बनाम** हरियाणा राज्य ए. आई. आर. 1994 एस. सी. 1582 = 1994 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 1252 ;

(5) देव राज **बनाम** पंजाब राज्य ए. आई. आर. 1992 एस. सी. 950 = 1992 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 771 ;

(6) अनन्त राम **बनाम** महाराष्ट्र राज्य ए. आई. आर. 2008 एस. सी. 409 = 2007 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 7156 ;

(7) छबीराम और अन्य **बनाम** मध्य प्रदेश राज्य (दांडिक अपील सं. 648/03 जिसका तारीख 18 मार्च, 2009 को विनिश्चय किया गया था) ;

(8) ओमवती बाई और अन्य **बनाम** मध्य प्रदेश राज्य दांडिक अपील सं. 833/05 तारीख 19 जनवरी, 2009 को इसका विनिश्चय किया गया था ; और

(9) प्रेम सिंह और एक अन्य **बनाम** मध्य प्रदेश राज्य 2007 (1) एम. पी. एच. टी. 86 खंड न्यायपीठ ।"

9. इसके प्रतिकूल, विद्वान् लोक अभियोजक श्री विवेक खेतकर ने

आक्षेपित निर्णय तथा विचारण न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्षों का समर्थन किया और यह दलील दी कि प्रश्नगत दोषसिद्धि सुस्थापित गुणागुण के आधार पर की गई है ।

10. परस्पर दलीलों का उचित परिप्रेक्ष्य में गुणागुण के आधार पर उनका मूल्यांकन किया गया । यह आवश्यक होगा कि अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य का उल्लेख करें ।

11. वर्तमान मामले में मृतका अनिता बाई के मृत्युकालिक कथनों पर मुख्यतः आधारित बातों पर दोषसिद्धि की गई है । विधि का यह सुस्थापित सिद्धांत है कि मृत्युकालिक कथन साक्ष्य का सारभूत टुकड़ा है और दोषसिद्धि का आदेश मृत्युकालिक कथन के आधार पर सुरक्षित रूप से अभिलिखित किया जा सकता है । मृत्युकालिक कथन का अवलंब लेकर न्यायालय को इस बात पर सचेत होना चाहिए कि मृत्युकालिक कथन स्वैच्छिक था तथा इसके अतिरिक्त इसे सही रूप से अभिलिखित किया गया था और लिखने वाला पूर्ण रूप से स्वस्थ्य मानसिक दशा में था और शारीरिक रूप से ऐसा कथन लेने में सक्षम था ।

12. मृतका ने स्वयं तारीख 24 अप्रैल, 2006 को 7.35 बजे पूर्वाह्न पुलिस थाना, मुंगावली पर प्रथम इत्तिला रिपोर्ट प्रदर्श पी-16 दर्ज की । शहर निरीक्षक प्रवीन अस्थाना (अभि. सा. 12) थाना भारसाधक अधिकारी जिन्होंने प्रथम इत्तिला रिपोर्ट अभिलिखित की थी, मृतका की रिपोर्ट प्रदर्श पी-16 साबित की । मृतका की मृत्यु के पश्चात् यह दस्तावेज उसका मृत्युकालिक कथन हो गया होगा जैसाकि साक्ष्य अधिनियम की धारा 32(1) में परिकल्पित है । शहर निरीक्षक प्रवीन अस्थाना (अभि. सा. 12) द्वारा यह कथन किया गया है कि तारीख 24 अप्रैल, 2006 को मृतका अनिता बाई ने पुलिस थाना मुंगावली पर रिपोर्ट दर्ज की । इस पर उसके द्वारा प्रथम इत्तिला रिपोर्ट (प्रदर्श पी-16) अभिलिखित की गई थी और उसने स्वयं अपना हस्ताक्षर उस पर किया था । इस साक्षी ने आगे यह अभिसाक्ष्य दिया कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट अभिलिखित करने के पश्चात् उसे अनिता बाई के समक्ष पढ़ा गया और तत्पश्चात् उसने इस पर अपने अंगूठे का निशान लगाया था ।

13. प्रथम इत्तिला रिपोर्ट (प्रदर्श पी-16) का परिशीलन करने पर इस प्रकार है :–

"(स्थानीय बोली का लोप किया गया.................संपादक)"

14. मृतका की एम. एल. सी. रिपोर्ट प्रदर्श पी-9 है जिसे डा. दिनेश त्रिपाठी (अभि. सा. 7) द्वारा साबित किया गया था । एम. एल. सी. डाक्टर दिनेश त्रिपाठी का परिसाक्ष्य तथा एम. एल. सी. रिपोर्ट प्रदर्श पी/9 का स्पष्ट रूप से परिशीलन करने पर हमने मृतका के शरीर पर निम्नलिखित क्षतियां पाई थीं : "दोनों टखनों के निचले भाग को छोड़कर पूरा शरीर उसका जला हुआ था । शरीर के अलग-अलग भागों पर छाले मौजूद थे तथा शरीर के अलग-अलग भागों से त्वचा बाहर निकली हुई थी । जलने तथा मिट्टी के तेल की दुर्गंध उसके शव से आ रही थी । पीड़िता के 80 प्रतिशत जले हुए घाव थे और ऐसी जली हुई क्षतियां उसके जीवन के लिए खतरनाक थीं । जली हुई क्षतियां 24 घंटे के अंदर हुई थीं ।" डा. दिनेश त्रिपाठी (अभि. सा. 7) के अनुसार अनिता बाई की गंभीर स्थिति देखने में आई, उसे अस्पताल में भर्ती किया गया था और तत्पश्चात् तारीख 26 अप्रैल, 2006 को उसे आगे उपचार के लिए जिला अस्पताल गूना पर भेजा गया था ।

15. अनिता बाई की गंभीर हालात को देखते हुए उसे भोपाल भी भेजा गया था किंतु रास्ते पर जली हुई क्षतियों के कारण उसकी मृत्यु हो गई । मृतका की मृत्यु के पश्चात् शव का शवपरीक्षण डा. वी. के. शर्मा (अभि. सा. 8) द्वारा तारीख 12 मई, 2006 को 1.10 बजे अपराह्न किया गया था । उसकी शवपरीक्षण रिपोर्ट प्रदर्श पी-11 है । डा. वी. के. शर्मा (अभि. सा. 8) के अनुसार मृतका के शरीर पर निम्नलिखित क्षतियां पाई गई थीं :-

"घाव भरने की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं के साथ शव के शरीर के ऊपर लगभग 77 प्रतिशत जली हुई क्षतियां थीं ।

पूर्ववर्ती पूरे चेहरे, पूरी गर्दन, छाती, उदर के ⅔ ऊपर, दाहिनी पूर्ववर्ती जांघ तथा बाएं एन्टेरियोमेडियल जांघ, अंगुलियों को छोड़कर दोनों प्रबाहु में मौजूद जले हुए घाव ।

पूर्ववर्ती गर्दन, पीछे, दोनों प्रबाहु और दाहिनी जांघ के ऊपर पूर्ववर्ती भाग पर और दाईं मध्य जांघ और टखना । भरे हुए घाव की परिधि और सेंट्रल पार्ट चिक क्रेष्ट पर पस और इसके नीचे कणिकायन ऊत्तक ।

डा. वी. के. शर्मा (अभि. सा. 8) के अनुसार मृतका की पूतिजीवरक्तता के कारण मृत्यु हुई थी जो मृत्यु-पूर्व जली हुई क्षतियों के कारण हुई थी । इसलिए, प्रथम इत्तिला रिपोर्ट (प्रदर्श पी-16) की

चिकित्सा साक्ष्य से संपुष्टि हुई है ।"

16. प्रदर्श पी-8 मृत्युकालिक कथन है जिसे तहसीलदार राधेश्याम श्रीवास्तव (अभि. सा. 6) द्वारा अभिलिखित किया गया था । तहसीलदार राधेश्याम श्रीवास्तव ने स्पष्ट रूप से यह कथन किया है कि तारीख 24 अप्रैल, 2006 को उसने मृतका अनिता पत्नी रमेश अहीरवाल के मृत्युकालिक कथन अभिलिखित करने के लिए पुलिस थाना, मुंगावली से अनुरोध पत्र प्राप्त किया था, इसलिए, वह अस्पताल मुंगावली गया था और उसने यह पाया कि पीड़िता अनिता वहां पर भर्ती हुई थी । मृत्युकालिक कथन अभिलिखित करने की कार्यवाही से पूर्व उसने रोगी के हालात के बारे में पूछताछ की थी तब ड्यूटी डाक्टर ने यह प्रमाणित किया था कि पीड़िता अपने कथन देने में समर्थ है, इसके पश्चात् उसने मृत्युकालिक कथन अभिलिखित किया । तहसीलदार राधेश्याम श्रीवास्तव (अभि. सा. 6) ने मृतका का मृत्युकालिक कथन प्रदर्श पी-8 को साबित करते हुए यह कथन किया है कि पीड़िता ने इस साक्ष्य को यह बताया कि अभियुक्त मानसिंह और गुड्डा ने चप्पा से उसके शरीर पर मिट्टी का तेल छिड़का था और उसके बाद उस पर आग लगा दी जिसके परिणामस्वरूप वह जल गई । उसने अभिसाक्षी (मृतका) के हालात के बारे में ड्यूटी डाक्टर से पुनः प्रमाणपत्र प्राप्त किया जिन्होंने यह अभिप्रमाणित किया कि वह अपने कथन देने में अच्छी हालत में है । तहसीलदार राधेश्याम श्रीवास्तव (अभि. सा. 6) पूर्ण स्वतंत्र साक्षी है । यह प्रश्न शेष रह जाता है कि यह साक्षी क्यों झूठ बोलेगा और उसके कथन पर क्यों अविश्वास किया जाना चाहिए । उसके कथन पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है । डा. दिनेश त्रिपाठी (अभि. सा. 7) ने भी यह अभिसाक्ष्य दिया है कि तारीख 24 अप्रैल, 2006 को तहसीलदार, मुंगावली ने अस्पताल में मृतका अनिता बाई का मृत्युकालिक कथन (प्रदर्श पी-8) अभिलिखित किया था । मृत्युकालिक कथन को अभिलिखित करने के पूर्व और पश्चात् उसने यह अभिप्रमाणित किया कि रोगी होश-हवास में थी तथा मृत्युकालिक कथन देने के लिए समर्थ थी ।

17. मृत्युकालिक कथन (प्रदर्श पी-8) का निम्नलिखित प्रभाव है :– (स्थानीय बोली का लोप किया गया...................संपादक)

18. रमेश (अभि. सा. 1) जो मृतका का पति है, के अनुसार घटना के सुसंगत समय पर उसकी पत्नी अनिता बाई अपने बच्चों कृष्णापाल और शनी कुमार के साथ प्रांगण में सो रही थी जबकि वह स्वयं मकान के अंदर

सो रहा था । रात्रि में लगभग 2.30 बजे वह अपनी पत्नी की सिसकियों को सुनकर उठा और उसने देखा कि उसकी पत्नी प्रांगण में जल रही थी । वह दौड़कर वहां गया और उसने उसके शरीर पर पानी डालकर आग बुझाई । आग को बुझाते समय उसके अपने हाथ में एक क्षति हुई थी । उसका भाई सेवा राम (अभि. सा. 4), भतीजा शेर सिंह (अभि. सा. 3) और माता बृज्या बाई भी घटनास्थल पर पहुंचे । उसकी पत्नी अनिता बाई ने उसे यह बताया कि मान सिंह और गुड्डा उसे आग लगाने के पश्चात् भाग गए । इसके पश्चात् वह अन्य व्यक्तियों के साथ अपनी पत्नी को जली हुई हालत में पुलिस थाना, मुंगावली ले गया जहां उसकी पत्नी ने रिपोर्ट दर्ज की जहां से उसकी पत्नी को चिकित्सा परीक्षा तथा इलाज के लिए अस्पताल मुंगावली भेजा गया था । कुछ समय के पश्चात् उसे जिला अस्पताल, गूना में भेजा गया था । 16-17 दिनों के उपचार के पश्चात् उसकी पत्नी को आगे उपचार के लिए भोपाल भेजा गया था किंतु भोपाल को जाने वाले रास्ते पर उसकी मृत्यु हो गई । तब वह पुलिस थाना, मुंगावली गया और इस बारे में पुलिस को सूचना दी । प्रतिपरीक्षा में यह सुझाव देने पर ऐसा कुछ भी नहीं निकल सका कि यह साक्षी पूर्णतया मिथ्या आधार पर अपीलार्थी को दोषसिद्ध कराने के लिए हितबद्ध था ।

19. अतः, हमारे अनुसार मृत्युकालिक कथनों तथा अभिलेख पर अन्य साक्षियों पर विचार करते हुए विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करने में कोई गलती नहीं की कि मृतका की अपीलार्थियों द्वारा कारित की गई जली हुई क्षतियों के कारण मृत्यु हुई थी और हम विचारण न्यायालय द्वारा निकाले गए कारणों से अपने को अलग नहीं करना चाहते हैं ।

20. हम अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई अनुकल्प दलील का भी उल्लेख करेंगे । मामले के इस पहलू पर सावधानीपूर्वक विचार करने के पश्चात् हम इस दलील को स्वीकार करने में असमर्थ हैं । प्रथमतः कि अपीलार्थी किसी दूरस्थ हेतु को जानकारी में रखते हुए रात्रि में लगभग 3.00 बजे पूर्वाह्न में मृतका के मकान में घुसे थे कि उनकी मृतका से ईर्ष्या थी । दूसरा, मृतका के शरीर पर मिट्टी का तेल छिड़कने का कार्य और उसके शरीर पर आग लगाना, हमारी राय में अपीलार्थियों का अपरिहार्य विवक्षित आशय मृतका की मृत्यु कारित करना था । **बी. वेंकेटशवरलु** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित

[1] ए. आई. आर. 1974 एस. सी. 2363.

किया गया था कि जब अभियुक्तों में से एक ने उसके शरीर पर मिट्टी का तेल छिड़का जिसके पश्चात् अपीलार्थी ने माचिस जलाकर उसके कपड़ों पर आग लगाई, तब उनका उसकी मृत्यु कारित करने का आशय था । उनके आशय के बारे में कोई संदेह प्रकट नहीं होता है । **मध्य प्रदेश राज्य** बनाम **राम प्रसाद**[1] वाले मामले में अभियुक्त ने अपनी पत्नी पर मिट्टी का तेल छिड़का था और उसके बाद उसने उसके कपड़ों पर आग लगा दी । उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि यह सुस्पष्ट हो गया है कि अभियुक्त को इस बात की जानकारी थी कि वह अपनी पत्नी की मृत्यु कारित किए जाने का जोखिम उठा रहा है और ऐसी शारीरिक क्षति जिससे संभवतया उसकी मृत्यु कारित की गई थी । उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि यह कार्य दंड संहिता की धारा 300 के चतुर्थ खंड के अंतर्गत आ सकता है । अतः, यह अभिनिर्धारित किया गया था कि उसका अपराध हत्या की कोटि में आने वाला आपराधिक मानव वध था ।

21. तीसरा, एम. एल. सी. रिपोर्ट (प्रदर्श पी-9) के अनुसार तथा डा. दिनेश त्रिपाठी (अभि. सा. 7) के परिसाक्ष्य के अनुसार कि मृतका को 80 प्रतिशत जली हुई क्षतियां पहुंची थीं और ऐसी जली हुई क्षतियां उसके जीवन के लिए खतरनाक थीं । इससे यह अभिप्रेत है कि उसका जीवित रहना असंभव था और अंततः शवपरीक्षा सर्जन डा. वी. के. शर्मा (अभि. सा. 8) ने यह अभिसाक्ष्य दिया कि मृतका की मृत्यु का कारण पूतिजीवरक्तता थी जो मृत्यु-पूर्व जली हुई क्षतियों के कारण हुई थीं ।

22. अभिलेख पर प्रकट चिकित्सा साक्ष्य से यह सिद्ध हुआ है कि मृतका अनिता बाई द्वारा भोगी गई जली हुई क्षतियों के प्रत्यक्ष परिणामस्वरूप पूतिजीवरक्तता की शिकार हुई थी । अभिलेख पर ऐसी कोई सामग्री नहीं लाई गई है कि वर्तमान वाले मामले में पूतिजीवरक्तता जली हुई क्षतियों के कारण नहीं हुई थी ।

23. अभिलेख पर प्रकट सम्पूर्ण सुसंगत साक्ष्य की परीक्षा करने के पश्चात् हमारा यह समाधान हुआ है कि पीड़िता को पहुंची दाह क्षतियों के परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु हुई थी । पूतिजीवरक्तता जो मृतका को पहुंची दाह क्षतियों के संक्रमण के कारण हुई बाद में बढ़ गई थी । इस प्रकार जली हुई क्षतियां पीड़िता की मृत्यु का कारण बनी थीं और जो अपीलार्थियों द्वारा कारित की गई थीं । जब अभियुक्त-व्यक्तियों के कार्यों से कारित की

---

[1] 1968 क्रिमिनल ला जर्नल 1025.

गई मूल क्षति के बारे में जो बचाव किया गया है, वह पूर्णतया असंगत है । कोई भी व्यक्ति संभवतः यह दलील दे सकता है कि अभियुक्तों के कार्यों के परिणामस्वरूप प्रत्यक्ष या सन्निकट रूप से मृत्यु नहीं हुई थी । अतः हमें यह अभिनिर्धारित करने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि यह अपीलार्थियों का कार्य था जिसके परिणामस्वरूप मृतका की मृत्यु हुई थी । इसलिए, दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध स्पष्ट रूप से बनता है । इस संदर्भ में हम **अमर सिंह, मुन्ना सिंह, सूर्यवंशी** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[1] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय के विनिश्चय का अवलंब लेना लाभदायक होगा जिसमें अभियुक्त ने लैम्प से मिट्टी का तेल निकाला जिसे मृतका के शरीर पर छिड़क दिया । तेल छिड़कने के पश्चात् उसके शरीर पर आग लगा दी जिसके परिणामस्वरूप मृतका के शरीर पर गहरे जले हुए घाव जो 43-45 प्रतिशत थे, से ग्रसित हुई थी और उसकी 22 जून, 1990 को अर्थात् घटना के लगभग 15 दिनों पश्चात् मृत्यु हुई थी और उसकी मृत्यु का कारण अत्यधिक तीव्र जली हुई क्षतियों के कारण आघात होने के साथ पूतिजीवरक्तता के परिणामस्वरूप हुई थी । उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि यह तथ्य शेष रह जाता है कि उसके शरीर पर मिट्टी का तेल छिड़का गया था और आग लगा दी गई थी । इस प्रकार, हम अपीलार्थियों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल के अभिवाक् को स्वीकार नहीं कर सकते कि अभियुक्त की ओर से ऐसा कोई आशय नहीं था कि वह उसकी मृत्यु कारित करता । उन्हें यह पता होना चाहिए कि ऐसे कार्य से प्रकृति के साधारण अनुक्रम में मृत्यु कारित होना संभव थी ।

24. बी. एन. कावतकार तथा एक अन्य वाले उपरोक्त मामले में क्षतियां प्राणघातक आयुध से पहुंचाई गई थीं । चिकित्सा अधिकारी जिन्होंने मृतका के शव की शवपरीक्षा की, यह राय व्यक्त की है कि मृत्यु क्षतियां और पर्युदयां शोथ के कारण पूतिजीवरक्तता के परिणामस्वरूप हुई थी । मृतका की मृत्यु अस्पताल में घटना के पांच दिन पश्चात् हुई थी । मामले के तथ्यों और परिस्थितियों की पूर्ण रूप से संवीक्षा करने पर चिकित्सा अधिकारी की दोनों पर राय व्यक्त की है जिसपर उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि अपराध दंड संहिता की धारा 326 के साथ पठित धारा 34 के अधीन दंडनीय होगा । **हरीश कुमार** बनाम **राज्य (दिल्ली प्रशासन)**[2] वाले मामले

---

[1] (2007) 15 एस. सी. सी. 455.

[2] ए. आई. आर. 1993 एस. सी. 973.

में अभियुक्त ने धारदार आयुध से क्षति कारित की थी जिससे मृत्यु हुई । मृतक की क्षति कारित होने के दो दिन पश्चात् मृत्यु हुई । इन परिस्थितियों में उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि यद्यपि क्षति से मृतक की मृत्यु हुई थी, तो भी निश्चायक रूप से यह नहीं कहा जा सकता है कि ऐसी क्षति उसकी मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त थी, इसलिए अभियुक्त को धारा 304 भाग 2 के अधीन सिद्धदोष किया जाता है न कि दंड संहिता की धारा 302 के अधीन । **किशन चन्द और एक अन्य** बनाम **पंजाब राज्य**[1] वाले मामले में अभियुक्त ने मृतक पर एक प्रहार किया था । ऐसी क्षति मृत्यु कारित किए जाने का कारण नहीं बन सकती । मृतक घटना घटित होने के कारण घटना के दो सप्ताह पश्चात् उसकी मृत्यु हुई । उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि अभियुक्त हत्या की कोटि में न आने वाला आपराधिक मानव वध का दोषी था । **पृथी** बनाम **हरियाणा राज्य**[2] वाले मामले में अभियुक्त और मृतका के बीच झगड़ा हुआ था और अभियुक्त ने मृतक की अंडग्रंथियों पर लात मारी थी । मृतक को दो दिन तक कोई चिकित्सा उपचार नहीं दिया गया था । चिकित्सा राय यह थी कि मृत्यु विषाक्तता के कारण कोथ (टोक्सेमिया) की वजह से हुई थी जो अंडग्रंथि पर क्षति के परिणामस्वरूप हो सकती है । उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि अंडग्रंथियों पर क्षति मृत्यु का प्रत्यक्ष कारण नहीं थी, इसलिए दंड संहिता की धारा 323 के अधीन अपराध बनता था । **देव राज** बनाम **पंजाब राज्य**[3] वाले मामले में अभियुक्त ने मृतक पर बंदूक की गोली से क्षतियां कारित की थीं और आहत की घटना के करीब-करीब डेढ़ माह पश्चात् मृत्यु हो गई । उस बीच में उसकी शल्य चिकित्सा की गई तथा सर्जरी करने पर उसके शरीर पर कई छिन्न घाव बन गए थे । दूसरा रक्तस्राव जिससे उसकी मृत्यु हुई, यह मृत्यु उस दिन घटित हुई जब मृतक की दाहिनी भुजा विच्छेदित की गई । उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि अभियुक्त दंड संहिता की धारा 326 के अधीन गंभीर क्षति पहुंचाने के लिए सिद्धदोष किया गया न कि दंड संहिता की धारा 302 के अधीन । **मोहब्बत** (उपरोक्त) वाले मामले में विचारण न्यायालय ने इस आधार पर दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अभियुक्त-अपीलार्थी को दोषसिद्ध किया कि उसने मृतका के शरीर पर मिट्टी का तेल छिड़ककर माचिस से उस पर आग

---

[1] ए. आई. आर. 1994 एस. सी. 32 = 1994 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 3903.

[2] ए. आई. आर. 1994 एस. सी. 1582 = 1994 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 1252.

[3] ए. आई. आर. 1992 एस. सी. 950 = 1992 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 771.

लगा दी तथा उसे जला दिया । न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि मृत्यु ढाई माह पश्चात् हुई थी । प्रारंभ में, डाक्टर ने केवल 32 प्रतिशत जली हुई क्षतियों का उल्लेख किया और बाद में अस्पताल पर 38 प्रतिशत जली हुई क्षतियों का उल्लेख किया था । इन परिस्थितियों के अंतर्गत यह अभिनिर्धारित किया गया कि यह अभिनिर्धारित करना अत्यधिक कठिन होगा कि अपीलार्थी द्वारा घटना में कारित की गई जली हुई क्षतियों के कारण मृतका की मृत्यु हुई थी । अभियुक्त को दंड संहिता की धारा 302 के बजाय धारा 326 के अधीन दोषसिद्ध ठहराया गया । **प्रेम सिंह और एक अन्य** (उपरोक्त) वाले मामले में अभियुक्त-व्यक्तियों और मृतक के बीच भूमि संबंधी विवाद था । अभियुक्त ने मृतक को पीटा था, उसके पश्चात् उससे समझौता किए जाने के लिए उस पर दबाव बनवाया किंतु उसने इनकार कर दिया । बाद में जब वह सो रही थी तो एक अभियुक्त ने उसके मुंह में कपड़ा ठूंस दिया और दूसरे अभियुक्त ने उस पर मिट्टी का तेल छिड़क कर उस पर आग लगा दी । उसे 49 प्रतिशत जली हुई क्षतियां हुईं और घटना के ग्यारह दिनों के पश्चात् उसकी पूतिजीवरक्तता/संक्रमण के कारण मृत्यु हो गई । उसे उसके पति द्वारा अपने जोखिम पर अनुज्ञा लेकर अस्पताल से छुट्टी करवा ली थी । न्यायालय ने अभियुक्त को दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दोषसिद्ध अपास्त करने के पश्चात् दंड संहिता की धारा 304 भाग 2 के अधीन दोषसिद्ध किया क्योंकि मृत्यु का कारण मृतका को पहुंची हुई क्षतियों का प्रत्यक्ष परिणाम नहीं था । वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए पूर्वोक्त विनिश्चय अपीलार्थियों की कोई सहायता नहीं करता ।

25. हमने विचारण न्यायालय द्वारा अपीलार्थियों को दोषसिद्ध किए जाने के समनुदेशित कारणों पर भी विचार किया है और हम इसमें कोई अवैधता और कमी नहीं पाते हैं । दोषसिद्धि अभिलेख पर प्रकट साक्ष्य के सही मूल्यांकन पर आधारित है । इसलिए हम विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित कारणों, निष्कर्षों और दोषसिद्धि का अनुमोदन करते हुए उसके निर्णय पर अपनी मोहर लगाते हैं ।

26. इसमें ऊपर उल्लिखित कारणों को देखते हुए हम इस अपील में कोई सार नहीं पाते हैं । अपील खारिज की जाती है ।

अपील खारिज की गई ।

आर्य

दीपक सुधाकर वकालेकर

बनाम

महाराष्ट्र राज्य और अन्य

तारीख 4 मई, 2011

न्यायमूर्ति नरेश एच. पाटिल, न्यायमूर्ति ए. वी. निरगुडे और न्यायमूर्ति टी. एन. नलवाडे

कारागार अधिनियम, 1894 (1894 का 9) – धारा 59 [सपठित कारागार (मुम्बई फर्लो और पैरोल) नियम, 1959 – नियम 6, परंतुक 10] – कैदी का छोड़ा जाना – खुले कारागार में निरुद्ध कैदी को अनुमोदनकर्ता प्राधिकारी या प्राधिकारियों द्वारा कैदी के नातेदारों द्वारा बंधपत्र के निष्पादन की अपेक्षा छूट प्रदान करते हुए फर्लो या पैरोल पर निर्मुक्त किया जा सकता है ।

2010 की आपराधिक रिट याचिका संख्या 848 और 959 की कार्यवाही के दौरान दी गई दलीलों के अनुक्रम में औरंगाबाद स्थित मुंबई के उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने रजिस्ट्रार कार्यालय को इस प्रश्न के विनिर्धारण हेतु वृहत्तर न्यायपीठ गठित किए जाने के प्रयोजनार्थ माननीय मुख्य न्यायमूर्ति के समक्ष कागजात प्रस्तुत करने का निदेश दिया कि क्या 1959 के कारागार (मुंबई फर्लो और पैरोल) नियम के नियम 6 के परंतुक के अनुसार खुले कारागार में निरुद्ध दोषसिद्ध के प्राधिकारियों द्वारा बंधपत्र के निष्पादन की अपेक्षा को अभिमुक्ति प्रदान करते हुए पैरोल/फर्लो पर निर्मुक्त किया जा सकता है । निदेश का उत्तर देते हुए,

अभिनिर्धारित – 1959 के नियम का नियम 6 अनुध्यात करता है कि कैदी का नातेदार उस रकम के बाबत जो मंजूरी प्रदान करने वाले प्राधिकारी, जो फर्लो के दौरान याची की आवभगत करने का इच्छुक है प्रपत्र-क में प्रतिभू बंधपत्र प्रस्तुत करेगा । 1959 के नियम का नियम 10 उल्लेख करता है कि मंजूरी प्रदान करने वाला प्राधिकारी कैदी को व्यक्तिगत बंधपत्र निष्पादित किए जाने या इन नियमों के साथ संलग्न प्रपत्र-ग में नकद प्रतिभूति प्रस्तुत किए जाने और प्रपत्र-क में बंधपत्र निष्पादित किए जाने की शर्त पर, यदि ऐसा किया जाना अपेक्षित हो, फर्लो प्रदान करेगा । न्यायालय यह मत व्यक्त करते हुए गुजरात उच्च न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ द्वारा व्यक्त किए गए मत के साथ सहमत है कि नियम 6 की अपेक्षा भी नियम

10 में प्रतिष्ठापित है । जबकि नियम 6 प्रपत्र-क में प्रतिभू बंधपत्र निष्पादित किए जाने के प्रयोजनार्थ तत्परता को निर्दिष्ट करता है, नियम 10 प्रपत्र-क में प्रतिभू बंधपत्र को वास्तविक रूप से प्रस्तुत किए जाने पर विचार करता है । 1959 के नियम के नियम 10 को किसी कैदी को पैरोल पर निर्मुक्त किए जाने के मामलों में यथाअपेक्षित परिवर्तन सहित लागू किया गया था । यह अर्थान्वयन और निर्वचन युक्तिसंगत रूप से किया जा सकता है कि "यदि अपेक्षित हो" तो मंजूरी प्रदान करने वाला प्राधिकारी नियम के साथ संलग्न प्रपत्र-क में बंधपत्र निष्पादित किए जाने के द्वारा प्रतिभू प्रस्तुत किए जाने के लिए कैदी पर जोर डालेगा । अन्य शब्दों में मंजूरी प्रदान करने वाला प्राधिकारी को प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए कैदी को नियम के साथ संलग्न प्रपत्र-क में प्रतिभू बंधपत्र प्रस्तुत किए जाने की अपेक्षा से छूट प्रदान करते हुए पैरोल पर निर्मुक्त करने का विवेकाधिकार प्राप्त है । इस समस्या का एक अन्य पहलू भी है । न्यायालय ने अनेक मामलों में अनुभव किया है और न्यायालयों में उपस्थित होने वाले अपर लोक अभियोजकों को अनुदेश देने वाले अधिकारी भी अभिकथित करते हैं कि नातेदारों द्वारा प्रतिभू बंधपत्र का निष्पादन सामान्यतया 2000/- रुपए की राशि में होता है और यदि कैदी जेल प्राधिकारियों के समक्ष समय से उपस्थित नहीं होता है या समय से आत्मसमर्पण नहीं करता है या छुट्टी की अवधि में विस्तार के बिना अधिक अवधि तक छुट्टी पर बना रहता है तो प्रथम कार्यवाही जो प्राधिकारी करते हैं, प्रतिभू बंधपत्र के अधीन रकम का समपहरण किया जाना और पुलिस को सूचित किया जाना होता है कि कैदी को गिरफ्तार किया जाएगा और उसको जेल प्राधिकारियों के समक्ष लाया जाएगा । न्यायालय ने अनेक मामलों में देखा है कि जेल प्राधिकारियों द्वारा प्रतिभू बंधपत्र में निर्धारित राशि का समपहरण कैदियों, जिन्होंने फर्लो या पैरोल पर उनकी निर्मुक्ति के पश्चात् जेल प्राधिकारियों के समक्ष आत्मसमर्पण नहीं किया है, के विरुद्ध निवारक के रूप में सफल नहीं हो पा रहा है । चर्चा के प्रकाश में न्यायालय यह अभिनिर्धारित करता है कि 1959 के नियम के नियम 6 के परंतुक के अनुसार किसी खुले कारागार में निरुद्ध दोषसिद्ध को मंजूरी प्रदान करने वाले प्राधिकारी द्वारा उसके नातेदारों द्वारा बंधपत्र के निष्पादन की अपेक्षा से छूट प्रदान करते हुए फर्लो पर निर्मुक्त किया जा सकता है । न्यायालय यह अभिनिर्धारित करता है कि खुले कारागार में निरुद्ध किसी दोषसिद्ध को प्राधिकारियों द्वारा दोषसिद्ध के नातेदारों द्वारा बंधपत्र के निष्पादन की अपेक्षा से छूट प्रदान करके पैरोल पर निर्मुक्त किया जा सकता है । (पैरा 20, 21 और 22)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2006]	जे. टी. 2006 (4) एस. सी. 575 = ए. आई. आर. 2006 एस. सी. 2471: **महाराष्ट्र राज्य** बनाम **सुरेश पी. दरवाकर ;**	5
[2006]	जे. टी. 2006 (4) एस. सी. 576 : **महाराष्ट्र राज्य** बनाम **सुरेश पांडुरंग दरवाकर ;**	6
[2003]	2003 बाम्बे केसेज रिपोर्ट (क्रिमिनल) 477 : **भामराव नाथूजी भोयार** बनाम **अधीक्षक, अमरावरी केन्द्रीय कारागार ;**	10
[1984]	1984 क्रिमिनल ला जर्नल 936 : **नातिया जीरिया** बनाम **गुजरात राज्य ;**	9
[1979]	ए. आई. आर. 1979 एस. सी. 1360 : **हुसैन आरा खातून** बनाम **गृह सचिव, बिहार राज्य, पटना ।**	15

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2010 की आपराधिक रिट याचिका सं. 848.

2010 की आपराधिक रिट याचिका सं. 848 और 959 की कार्यवाही के दौरान औरंगाबाद स्थित (मुंबई उच्च न्यायालय की) खंड न्यायपीठ द्वारा प्रस्तुत निदेश ।

याची की ओर से — श्री आर. डी. सनप और श्रीमती शारदा पी. चोट

प्रत्यर्थियों की ओर से — श्री के. जी. पाटिल, श्रीमती आर. के. लड्डा, अपर लोक अभियोजक

न्यायमित्र — जोयदीप चटर्जी

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति नरेश एच. पाटिल ने दिया ।

न्या. पाटिल – 2010 की आपराधिक रिट याचिका संख्या 848 और 959 की कार्यवाही के दौरान दी गई दलीलों के अनुक्रम में औरंगाबाद स्थित मुंबई के उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने रजिस्ट्रार कार्यालय को इस प्रश्न के विनिर्धारण हेतु वृहत्तर न्यायपीठ गठित किए जाने के प्रयोजनार्थ माननीय मुख्य न्यायमूर्ति के समक्ष कागजात प्रस्तुत करने का

निदेश दिया :–

> "क्या 1959 के कारागार (मुंबई फर्लो और पैरोल) नियम के नियम 6 के परंतुक के अनुसार खुले कारागार में निरुद्ध दोषसिद्ध के प्राधिकारियों द्वारा बंधपत्र के निष्पादन की अपेक्षा को अभिमुक्ति प्रदान करते हुए पैरोल/फर्लो पर निर्मुक्त किया जा सकता है ।"

2. याची ने 2010 की दांडिक रिट याचिका संख्या 848 की कार्यवाही के दौरान दलील दी कि वह जिला औरंगाबाद के पैथन स्थित खुले कारागार में निरुद्ध था । याची ने व्यक्तिगत बंधपत्र निष्पादित किए जाने की शर्त पर उसको निर्मुक्त किए जाने के लिए जेल प्राधिकारियों को निदेशित किए जाने की ईप्सा की थी ।

3. याची ने 2010 की दांडिक रिट याचिका संख्या 954 में उप महानिदेशक (कारागार) द्वारा जारी तारीख 22 जुलाई, 2010 के आदेशानुसार, जिसमें फर्लो पर याची की निर्मुक्ति की प्रथम शर्त यह थी कि उसको उसके नातेदार को 2000/- रुपए प्रस्तुत करने थे, के अनुसार फर्लो पर निर्मुक्त किए जाने के लिए पैथन के खुले कारागार को निदेशित किए जाने की ईप्सा की ।

4. इन दोनों याचिकाओं के उत्तर में प्रत्यर्थियों-प्राधिकारियों द्वारा पैथन के खुले जिला कारागार के अधीक्षक पद्माकर देवीदास भालेराव के मार्फत फाइल किए गए हैं ।

2010 की दांडिक रिट याचिका संख्या 848 की कार्यवाही में फाइल किए गए शपथपत्र के पैरा 8 में पैथन के खुले कारागार अधीक्षक ने कहा :–

> "8. मैं कथन करता हूं कि फर्लो अवकाश का आदेश पारित किया जाता है किंतु याची जिद्दी स्वभाव का है और वही स्वातंत्र्य प्राप्त करना चाहता है जो व्यक्तिगत मुचलका बंधपत्र पर निर्मुक्त किए जाने के प्रयोजनार्थ प्राप्त होता है । इस बात को ध्यान में रखते हुए याची की प्रार्थना कारागार नियम के आधार पर गुणागुण पर स्वीकार किए जाने योग्य नहीं है और नागपुर स्थित माननीय उच्च न्यायालय की न्यायपीठ और माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णयों को दृष्टि में रखते हुए व्यक्तिगत मुचलका बंधपत्र निष्पादित किए जाने के आधार पर फर्लो अवकाश के लिए याची की प्रार्थना गुणागुण के आधार पर स्वीकार नहीं की जा सकती चूंकि व्यक्तिगत

मुचलका बंधपत्र निष्पादित किए जाने के आधार पर फर्लो/पैरोल पर निर्मुक्त किए जाने के बाबत कोई उपबंध नहीं है ।"

शपथकर्ता ने 2010 की दांडिक रिट याचिका संख्या 954 की कार्रवाई में फाइल किए गए शपथपत्र के पैरा 4 में यह प्रकथन किया :–

"4. मैं कथन करता हूं कि याची ने याची की माता देवाई बाली पवार का नाम प्रतिमा के रूप में प्रस्तावित किया था जिसने प्रतिमा बनाने से इनकार कर दिया था इसलिए विद्वान् प्राधिकारी याची को समुचित प्रतिभू के अभाव में फर्लो अवकाश पर निर्मुक्त करने में असमर्थ हैं । याची ने व्यक्तिगत मुचलका बंधपत्र पर पुन: निर्मुक्त किए जाने की प्रार्थना की किंतु माननीय उच्च न्यायालय द्वारा अधिकथित विनिश्चयानुपात के अनुसार दोषसिद्धों को फर्लो अवकाश के प्रयोजनार्थ बंधपत्र पर निर्मुक्त नहीं किया जा सकता ।"

5. जेल प्राधिकारियों का पक्षकथन यह था कि खुले कारागार में परिरुद्ध किसी व्यक्ति को फर्लो पर निर्मुक्त करते समय उसको नागपुर स्थित मुंबई उच्च न्यायालय की खण्ड न्यायपीठ (गणपूर्ति न्यायमूर्ति ए. पी. लबांडे और न्यायमूर्ति पी. डी. कोडे) द्वारा 2010 की दांडिक रिट याचिका संख्या 13 में पारित तारीख 8 मार्च, 2010 के आदेश और **महाराष्ट्र राज्य** बनाम **सुरेश पी. दरवाकर**[1] वाले मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय के प्रकाश में नातेदारों का प्रतिभू बंधपत्र प्रस्तुत करना था ।

6. नागपुर स्थित खण्ड न्यायपीठ ने 2010 की दांडिक रिट याचिका संख्या 13 को निम्नलिखित आदेश पारित करते हुए निस्तारित कर दिया :–

"याची के विद्वान् काउंसेल श्री ढाबे और प्रत्यर्थियों के विद्वान् सहायक लोक अभियोजन श्री जायसवाल को सुना ।

याची जो भारतीय दण्ड संहिता की धारा 302 और 201 के अधीन अपराध कारित करने के लिए आजीवन कारावास भोग रहा है, की शिकायत यह है कि फर्लो के लिए उसके आवेदन पर प्राधिकारियों द्वारा विधि-अनुसार विचार नहीं किया गया है । प्रत्यर्थियों की ओर से मोर्शी खुले न्यायालय के अधीक्षक ने यह अभिकथित करते हुए शपथपत्र फाइल किया कि याची का तारीख 9 दिसंबर, 2009 के आदेश द्वारा व्यक्तिगत बंधपत्र

---

[1] जे. टी. 2006 (4) एस. सी. 575 = ए. आई. आर. 2006 एस. सी. 2471.

निष्पादित किए जाने के आधार पर फर्लो पर निर्मुक्त कर दिया गया था । उक्त आदेश की एक प्रति को शपथपत्र के साथ संलग्न भी किया गया है ।

हमको सूचित किया गया है कि याची को वास्तव में उक्त आदेश के मतावलंबन में फर्लो पर निर्मुक्त किया गया था और वह आत्मसमर्पण करके कारागार वापस आ गया है । इस प्रकार वर्तमान याचिका चलने योग्य नहीं है ।

यद्यपि वाद कारण नहीं रह गया है, हम मामले के एक अन्य पहलू, जो हमारी जानकारी में आया है, पर भी विचार करना चाहेंगे । याची को तारीख 9 दिसंबर, 2009 के आदेश द्वारा व्यक्तिगत बंधपत्र निष्पादित किए जाने के आधार पर फर्लो पर निर्मुक्त कर दिया गया है । हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि सक्षम प्राधिकारी द्वारा याची को व्यक्तिगत बंधपत्र पर फर्लो अवकाश प्रदान किया जाना कारागार (मुंबई फर्लो और पेरोल) नियम, 1959 के विपरीत है और महाराष्ट्र राज्य **बनाम** सुरेश पांडुरंग दरवाकर जे. टी. 2006 (4) एस. सी. 576 वाले मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय के भी विपरीत है । हमको अचरज है कि प्रत्यर्थी संख्या 1, जो फर्लो/पेरोल प्रदान करने के लिए सक्षम प्राधिकारी है, ने नियम और **सुरेश दरवाकर** (उपरोक्त) वाले मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय का स्पष्ट रूप से उल्लंघन करते हुए फर्लो प्रदान करने वाला आदेश पारित किया है । इस बात का उल्लेख किया जाना भी महत्वपूर्ण होगा कि यह निर्णय महाराष्ट्र राज्य और एक अन्य द्वारा फाइल की गई अपील में पारित किया गया था । अत: हम यह उचित प्रतीत करते हैं कि पुणे के कारागार महानिदेशक को महाराष्ट्र राज्य में समस्त सक्षम प्राधिकारियों को उक्त निर्णय को परिचालित करने के लिए निदेशित किया जाए जिससे कि किसी सक्षम प्राधिकारी द्वारा नियम या **सुरेश दरवाकर** (उपरोक्त) वाले मामले में पारित निर्णय के उल्लंघन में कोई आदेश पारित न किया जाए । उप महानिदेशक (कारागार) आज से चार सप्ताह की अवधि के भीतर निर्णय को परिचालित करेंगे । आज से आठ सप्ताह की अवधि के भीतर इस न्यायालय को अनुपालन के बारे में सूचित करेंगे ।

पूर्वोक्त निबंधनों के अधीन याचिका का निस्तारण किया जाता है.... ।"

7. **दरवाकर** (उपरोक्त) वाले मामले में मुंबई उच्च न्यायालय के

विद्वान् एकल न्यायाधीश ने जेल प्राधिकारियों के पास जमा 500/- रुपए के कैदी के बंधपत्र प्रस्तुत किए जाने पर फर्लो पर कैदी को निर्मुक्त किए जाने के लिए निदेशित किया था । महाराष्ट्र राज्य द्वारा उक्त आदेश को सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई थी । हम उक्त निर्णय के पैरा 5 में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा की गई मताभिव्यक्ति को निर्दिष्ट करते हैं जो इस प्रकार हैं :–

> "5. अन्य बातों के साथ नियम 6 उपबंधित करता है कि किसी कैदी को फर्लो प्रदान नहीं किया जाएगा जब तक कि उसका कोई नातेदार न हो जो उसको फर्लो पर आवभगत करने के लिए इच्छुक हो और नियम के साथ संलग्न प्रपत्र-क में दिए गए प्रतिभू बंधपत्र को उस रकम की बाबत जिसको मंजूरी प्रदान करने वाले प्राधिकारी द्वारा निर्धारित किया जाए, निष्पादित करने के लिए तैयार हो । इस नियम का परंतुक मंजूरी प्रदान करने वाले प्राधिकारी को, जैसाकि खुले कारागार में परिरुद्ध कैदियों के नातेदारों द्वारा इस प्रकार के बंधपत्र के निष्पादन की अपेक्षा से मुक्त करने के लिए, जैसा कि 1971 के महाराष्ट्र खुले कारागार नियम के नियम 2 के खण्ड (क) में परिभाषित किया गया है, प्राधिकृत करता है । इसलिए नियम 6 से उद्भूत होने वाली अपेक्षाएं हैं (क) आवेदक के नातेदार को उसको फर्लो पर करने के लिए इच्छुक होना चाहिए और (ख) उसको (नातेदार को) प्रतिभू बंधपत्र निष्पादित करने के लिए तैयार होना चाहिए । प्रस्तुत मामले में नातेदारों ने इस प्रकार के किसी प्रतिभू बंधपत्र को निष्पादित करने से इनकार कर दिया था । पुलिस द्वारा अमरावती के जिला मजिस्ट्रेट से प्राप्त सत्यापन रिपोर्टें उपदर्शित करती हैं कि प्रत्यर्थी की बहन ने प्रतिभू बनने से इनकार कर दिया था चूंकि प्रत्यर्थी ने तथाकथित रूप से अपनी सौतेली माता के साथ बलात्संग और उसको भारतीय दंड संहिता, 1860 की धाराओं 376 और 354 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए दोषसिद्ध किया गया है और सात साल का कारागार भोगने और जुर्माने का संदाय करने के लिए दंडादिष्ट किया गया है । प्रतिकूल पुलिस रिपोर्ट नियम 4(11) और 6 के अधीन अनुध्यात अपेक्षाओं को दृष्टि में रखते हुए सक्षम प्राधिकारी ने तारीख 18 जुलाई, 2005 के आदेश द्वारा फर्लो प्रदान करने के लिए प्रस्तुत किए गए आवेदन को अस्वीकार कर दिया था ।"

8. हम इस विवाद्यक के अन्तर्वलित विवाद्यक के उद्देश्यों के

प्रयोजनार्थ 1959 के कारागार (मुंबई फर्लो और पेरोल) नियम के नियम 6, 10, 24 और 28 के सुसंगत उपबंधों को प्रत्युत्पादित करेंगे ।

"6. फर्लो बिना प्रतिभू के प्रदान नहीं किया जाएगा – किसी कैदी को फर्लो प्रदान नहीं किया जाएगा जब तक कि उसका कोई नातेदार न हो जो उसको फर्लो पर आवभगत करने के लिए इच्छुक हो और नियम के साथ संलग्न प्रपत्र-क में दिए गए प्रतिभू बंधपत्र को उस रकम की बाबत जिसको मंजूरी प्रदान करने वाले प्राधिकारी द्वारा निर्धारित किया जाए, निष्पादित करने के लिए तैयार हो :

परंतु यह तब जबकि मंजूरी प्रदान करने वाला प्राधिकारी खुले कारागार में परिरुद्ध कैदियों के नातेदारों द्वारा इस प्रकार के किसी बंधपत्र के निष्पादन की अपेक्षा में शिथिलता प्रदान कर सकता है, जैसाकि महाराष्ट्र खुले कारागार नियम, 1971 के नियम के खण्ड (ख) में परिभाषित किया गया है ।"

"10. **निर्मुक्ति की शर्तें** – मंजूरी प्रदान करने वाला प्राधिकारी किसी कैदी को उसके द्वारा व्यक्तिगत बंधपत्र निष्पादित किए जाने की शर्त पर या इन नियमों के साथ संलग्न प्रपत्र-ग में नकद प्रतिभूति प्रदान करने और प्रतिभू द्वारा इन नियमों के साथ संलग्न प्रपत्र-क में बंधपत्र निष्पादित किए जाने पर, यदि ऐसा किया जाना अपेक्षित हो, फर्लो प्रदान करेगा ....।"

"24. **शर्तें जिनके अंतर्गत कैदी को पेरोल प्रदान किया जा सकेगा** – सक्षम प्राधिकारी किसी कैदी को, उसके द्वारा प्रतिभू बंधपत्र और प्रपत्र-क और ख में अलग-अलग व्यक्तिगत बंधपत्र निष्पादित किए जाने पर उल्लिखित सभी शर्त या किसी शर्त का पालन किए जाने पर और अन्य शर्त, यदि कोई हो, जिनको सक्षम प्राधिकारी द्वारा विनिर्दिष्ट की जाए, का भी पालन किए जाने पर पेरोल प्रदान कर सकेगा :

परंतु पुनः यह तब जबकि जब कोई कैदी किसी परीक्षा में उपस्थित होने के प्रयोजनार्थ पेरोल के लिए आवेदन करता है, तो वह पेरोल पर निर्मुक्ति प्रदान किए जाने के लिए अर्ह नहीं होगा जब तक कि कारागार महानिदेशक ने उसको उस परीक्षा में उपस्थित होने के लिए अनुज्ञा प्रदान करने वाला आदेश पारित न कर दिया हो :

परन्तु यह और कि जब कोई कैदी परीक्षा पर उपसंजात होने के प्रयोजन कि लिए पैरोल हेतु आवेदन करता है तो वह पैरोल पर छोड़े

जाने का तब तक पात्र नहीं होगा जब तक कारागार महानिरीक्षक ऐसी परीक्षा में उपसंजात होने के लिए उसे अनुज्ञा देते हुए आदेश नहीं पारित करता ।"

"28. **पेरोल के मामलों में कतिपय नियमों का उपयोजन** – नियम 8(5), 10, 11 और 12 के उपबंध पेरोल पर कैदियों की निर्मुक्ति के मामलों में यथाआवश्यक परिवर्तन सहित लागू होंगे ।"

9. विद्वान् काउंसेल श्री चटर्जी ने न्यायमित्र के रूप में न्यायालय की सहायता की । 2010 की दांडिक रिट याचिका संख्या 848 में याची की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल श्री आर. डी. सनप ने दलील दी कि 1959 के कारागार (मुंबई फर्लो और पेरोल) नियम (जिसको इसमें इसके पश्चात् "1959 के नियम" के रूप में निर्दिष्ट किया गया है) को खण्ड न्यायपीठ, जिसने 2010 की दांडिक रिट याचिका संख्या 13 में तारीख 8 मार्च, 2010 का आदेश पारित किया गया था, के ज्ञान में नहीं लाया गया था । काउंसेल ने निवेदन किया कि **दरवाकर** (उपरोक्त) वाले मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय का अधिमूल्यन खण्ड न्यायपीठ द्वारा उचित रीति में नहीं किया गया था चूंकि सर्वोच्च न्यायालय ने मत व्यक्त नहीं किया था कि 1959 के नियम के नियम 6 का परंतुक, जिसके द्वारा प्रतिभूति बंधपत्र के निष्पादन की अपेक्षा से छूट प्रदान करने की मंजूरी प्रदान किए जाने के प्राधिकार पर विवेकाधिकार प्रदान किया गया था, पर मंजूरी प्रदान करने वाले प्राधिकारी द्वारा कार्रवाई नहीं की गई थी । अत: यह निवेदन किया गया कि सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का गलत अर्थान्वयन और निर्वचन खण्ड न्यायपीठ द्वारा किया गया था ।

विद्वान् काउंसेल ने **नातिया जीरिया** बनाम **गुजरात राज्य**[1] वाले मामले में गुजरात उच्च न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ द्वारा दिए गए निर्णय का अवलंब लिया । उक्त मामले में नातिया जीरिया, जो कि एक कैदी था, ने (गुजरात उच्च न्यायालय के) मुख्य न्यायमूर्ति को यह शिकायत करते हुए एक आवेदन संबोधित किया था कि वह गुजरात राज्य के कारागार महानिदेशक द्वारा उसको फर्लो पर निर्मुक्त किए जाने के बाबत पारित आदेश का लाभ लेने में असमर्थ है चूंकि उसकी निर्मुक्ति को प्रतिभूति प्रस्तुत करने या 100 रुपए जमा करने, जैसाकि नियमों के अधीन अपेक्षित है, की शर्त के अधीन कर दिया गया है । कैदी ने लिखा कि वह अत्यंत

[1] 1984 क्रिमिनल ला जर्नल 936.

गरीब है और उसके परिवार की आर्थिक स्थिति भी ठीक नहीं है और इसलिए वह 100 रुपए की प्रतिभूति प्रस्तुत करने की स्थिति में नहीं है । अत:, उसने अनुरोध किया कि उसको व्यक्तिगत बंधपत्र के आधार पर फर्लो पर निर्मुक्त कर दिया जाए । पूर्ण न्यायपीठ ने 1959 के नियम के नियम 6 और 10 को निर्दिष्ट किया । पूर्ण न्यायपीठ की निम्नलिखित मताभिव्यक्ति इस मामले के प्रयोजनार्थ सुसंगत है :–

"6. क्या यह संभव है कि नियम का अर्थान्वयन किसी सक्षम प्राधिकारी को नकद प्रतिभूति या प्रतिभू बंधपत्र पर जोर दिए बिना फर्लो अवकाश प्रदान करने के लिए अनुज्ञा प्रदान करने के प्रयोजनार्थ समर्थ बनाए जाने के संदर्भ में किया जाए । यदि यह संभव न हो तो क्या नियम को इस प्रकार से पढ़ा जा सकता है कि इन बातों पर जोर देने से बचा जा सके ? यदि ऐसा किया जाना भी संभव न हो तो क्या नियम को समता के अधिकार को अतिक्रमणकारी के रूप में अभिखंडित किया जा सकता है ? इन अनुक्रमों में से अंतिम पर विचार किए जाने की आवश्यकता केवल तब है जब न्यायालय सभी मामलों में प्रतिभू बंधपत्र या नकद प्रतिभूति पर जोर देने की अपेक्षा करने वाले नियम को पढ़ने के लिए विवश हो और वह नियम उपदर्शित तरीके के पढ़े जाने योग्य नहीं है । न्यायालय का सदैव कार्य यह होता है कि किसी नियम का अर्थान्वयन युक्तिसंगत रूप से किया जाए और उसको असंवैधानिक (नियम) के रूप में अभिनिर्धारित किए जाने के द्वारा अस्वीकृति किए जाने के बजाय ऐसा करने (युक्तिसंगत रूप से अर्थान्वयन किए जाने) के प्रयोजनार्थ पढ़े जाने का प्रयास किया जाए ।

7. यह देश ऐसे मामलों में जहां समाज के कमजोर वर्ग इस बाबत अन्तर्वलित होते हैं, जिससे कि समान अवसर की प्रत्याभूति को वास्तविकता बनाया जा सके, विचारशील दृष्टिकोण की आवश्यकता के प्रति लंबे समय से सचेत रहा है । प्राधिकारियों द्वारा विवेकाधिकार के प्रयोग के लिए कार्यक्षेत्र प्रदान करने वाले कानूनों और नियम के उपबंधों की शक्तियों के प्रयोग के लिए बदलाव के रूप में, जो उनकी कार्य पद्धति को संवैधानिक कर दे, सदैव समझा गया है । यदि किसी प्राधिकारी को नियम की अपेक्षाओं का अधित्यजन करने के लिए विवेकाधिकार प्रदान किया जाता है तो ऐसा अधित्यजन संवैधानिक संरक्षण की संकल्पना को प्रोन्नत करने के लिए किसी

अन्य बात के मुकाबले अधिक न्यायानुमत होगा । फर्लो नियम का नियम 6 किसी कैदी के नातेदार, जो कैदी की फर्लो पर आवभगत करने का इच्छुक हो, और मंजूरी प्रदान करने वाले प्राधिकारी द्वारा निर्धारित रकम की बाबत प्रपत्र में प्रतिभू बंधपत्र निष्पादित किए जाने के लिए तत्पर की उपलब्धता की परिकल्पना करता है । नियम 10 कैदी द्वारा व्यक्तिगत बंधपत्र के निष्पादन या प्रपत्र-ग में नकद प्रतिभूति देने और प्रपत्र-क में प्रतिभू बंधपत्र, जो नियम 6 में निर्दिष्ट बंधपत्र है, के निष्पादन के लिए भी अनुध्यात करता है । इसलिए, नियम 6 की अपेक्षा भी नियम 10 में प्रतिष्ठापित है । जबकि नियम 6 प्रपत्र-क में प्रतिभू बंधपत्र निष्पादित किए जाने के प्रयोजनार्थ तत्परता को निर्दिष्ट करता है, नियम 10 प्रपत्र-क में प्रतिभू बंधपत्र वास्तविक रूप से प्रस्तुत किए जाने पर विचार करता है । इसलिए, वे दो बातें, जिनका पालन निर्मुक्ति किए जाने के लिए समर्थ बनाने वाला आदेश पारित किए जाने के प्रयोजनार्थ नियम 10 के अन्तर्गत किया जाना है, (क) प्रपत्र में निजी बंधपत्र या नकद प्रतिभूति और (ख) प्रपत्र-क में प्रतिभूति बंधपत्र है । इन दोनों में से भी प्रथम अपेक्षा यह है कि कैदी को व्यक्तिगत बंधपत्र निष्पादित करने के समर्थ होना चाहिए । निश्चित रूप से, यदि किसी कैदी के संबंध में, जो नकद प्रतिभूति प्रस्तुत करने में असमर्थ है और मंजूरी प्रदान करने वाला प्राधिकारी नकद प्रतिभूति प्रस्तुत करने पर जोर देता है तो यह उसके द्वारा की जाने वाली त्रुटिपूर्ण, अनुचित और पक्षपातपूर्ण कार्यवाही होगी । समान रूप से यह भी पक्षपातपूर्ण होगा । यदि ऐसी परिस्थितियों के बावजूद, जो कैदी की निर्धन स्थिति के बारे में विस्तारपूर्वक बताती है, मंजूरी प्रदान करने वाला प्राधिकारी उनको साबित करने पर जोर देता है । कारागार में बंद व्यक्ति बिल्कुल असुविधा ग्रस्त है और विशेष रूप से तब जब उसका कोई ऐसा मित्र या सक्षम नातेदार, जो उसकी सहायता कर सके, न हो । इसका कोई कारण नहीं है कि जब वह अपनी गरीबी के बारे में अभिवाक् करता है और उसके गरीबी के पक्षकथन पर अविश्वास करने की बाबत कोई सामग्री अभिलेख पर उपलब्ध न हो तो मंजूरी प्रदान करने वाला प्राधिकारी उसके अभिवाक् को सामान्य अनुक्रम में स्वीकार क्यों न करे । अन्य शब्दों में जहां मंजूरी प्रदान करने वाले प्राधिकारी को निश्चायक रूप से यह उपधारणा करने का कोई कारण उत्पन्न नहीं हुआ या उसके समक्ष ऐसी कोई सामग्री उपलब्ध नहीं है कि वह व्यक्ति (कैदी) नकद

प्रतिभूति प्रस्तुत कर सकता है, तो मंजूरी प्रदान करने वाला प्राधिकारी उसको उसके व्यक्तिगत बंधपत्र के आधार पर निर्मुक्त करने की बाध्यता के अधीन होगा । यही वह तरीका है जिसमें नियम 10 को उसकी प्रथम अपेक्षा की बाबत समझा जाना चाहिए । हमारे समक्ष उपस्थित मामले में नकद प्रतिभूति प्रस्तुत किए जाने पर जोर नहीं दिया गया है । कैदी को नकद प्रतिभूति या व्यक्तिगत बंधपत्र प्रदान करने की अनुज्ञा प्रदान कर दी गई थी । वह व्यक्तिगत बंधपत्र निष्पादित कर सकता था, किंतु वह द्वितीय अपेक्षा अर्थात् प्रपत्र-क में प्रतिभू बंधपत्र के निष्पादन के बाबत चिंतित उसके पास प्रतिभू के रूप में उपस्थित होने के लिए कोई भी नहीं है ।

8. यह उल्लेख किया जाता है कि नियम 10 उन शर्तों को पूर्ण करता है जिनके अधीन मंजूरी प्रदान करने वाले प्राधिकारी को शब्दों "यदि ऐसा किया जाना अपेक्षित हो", द्वारा फर्लो प्रदान करनी है । यह नितांत महत्वपूर्ण है और सुव्यक्त रूप से इसकी सुसंगतता को पूर्ववर्ती अवसरों पर नहीं लाया गया था । शब्दों "यदि ऐसा किया जाना अपेक्षित हो" इस बाबत विचार करने के लिए मंजूरी प्रदान करने वाले प्राधिकारी पर कर्तव्य और बाध्यता अधिरोपित करते हैं कि क्या मामले में प्रतिभू बंधपत्र के निष्पादन पर जोर देने से अधित्यजन अपेक्षित है ? इस प्रकार के अधित्यजन के लिए समुचित अधिकारिता वहां होगी जहां, जैसी कि इस मामले में कोई व्यक्ति अपनी दरिद्रता और समाज में उसके प्रभाव की अनुपस्थिति के कारण प्रतिभू बंधपत्र प्रस्तुत करने में असमर्थ है । जैसाकि न्यायमूर्ति कृष्णा अय्यर ने, यद्यपि भिन्न संदर्भ में, जमानत के संदर्भ में मोती राम **बनाम** मध्य प्रदेश राज्य वाले मामले में कहा 'धनवान को निर्धन मित्र नहीं बनाना चाहिए ।' अत: नियम 10 को ऐसे मामलों में, जैसेकि इस मामले के कैदी के मामले में, प्रतिभू बंधपत्र के निष्पादन की अपेक्षा का अधित्यजन किए जाने में मंजूरी प्रदान करने वाले प्राधिकारी को न्यायसंगत ठहराने के प्रयोजनार्थ पढ़ा और समझा जाना चाहिए ।"

10. **भीमराव नाथूजी भोयार** बनाम **अधीक्षक, अमरावती केन्द्रीय कारागार**[1] वाले मामले में मुंबई उच्च न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश ने **नातिया जीरिया** (उपरोक्त) वाले मामले में निर्दिष्ट किया । विद्वान् एकल

---

[1] 2003 बाम्बे केसेज रिपोर्ट (क्रिमिनल) 477.

न्यायाधीश ने उक्त मामले के तथ्यों को दृष्टि में रखते हुए प्राधिकारियों को उस मामले के याची को फर्लो प्रदान किए जाने और याची द्वारा प्रतिभू प्रस्तुत किए जाने पर जोर दिए बिना उसको उस रकम, जो उचित समझी जाए, का व्यक्तिगत बंधपत्र निष्पादित किए जाने की शर्त पर निर्मुक्त किए जाने के लिए निदेशित किया गया था ।

विद्वान् काउंसेल ने निवेदन किया कि 1959 के नियम के नियम 6 के विनिर्दिष्ट परंतुक के प्रकाश में मंजूरी प्रदान करने वाले प्राधिकारी को 1959 के नियम के साथ संलग्न प्रपत्र-क में प्रतिभू बंधपत्र प्रस्तुत किए जाने की अपेक्षा का अधित्यजन करते हुए कैदी को फर्लो पर निर्मुक्ति करने का विवेकाधिकार प्रदान किया गया है । जहां तक कैदी को पेरोल पर निर्मुक्त किए जाने का संबंध है, यह निवेदन किया गया कि यद्यपि उन कैदियों के संबंध में, जिनको फर्लो पर निर्मुक्त किया जाता है, 1959 के नियम के नियम 6 जैसा विनिर्दिष्ट उपबंध नहीं है, किंतु 1959 के नियम के उपबंधों पर विचार करते हुए, मुख्य रूप से नियम 10 और 28 पर यह अभिनिर्धारित किया जा सकता है कि मंजूरी प्रदान करने वाले प्राधिकारी को प्रतिभू बंधपत्र प्रस्तुत किए जाने की शर्त से छुटकारा देने का, यहां तक कि उन कैदियों के संबंध में नहीं जिनको पेरोल पर निर्मुक्त किया जाना है, विवेकाधिकार प्राप्त नहीं है ।

11. विद्वान् काउंसेल श्रीमती शारदा चोट ने विद्वान् काउंसेल श्री सनप की दलीलों का अवलंब लिया ।

12. विद्वान् न्यायमित्र चटर्जी ने निवेदन किया कि **नातिया जीरिया** (उपरोक्त) वाले मामले में गुजरात उच्च न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ द्वारा दिए गए निर्णय के प्रकाश में 1959 के नियम के नियम 6 को नियम 10 में पढ़ा जा सकता है और 1959 के नियम 10 और नियम 28 के उपबंधों के प्रकाश में यह अभिनिर्धारित किया जा सकता है कि कैदी भी, जिनको निर्मुक्त किया जाना है, को मंजूरी प्रदान करने वाले प्राधिकारी द्वारा विनिर्दिष्ट परिस्थितियों में प्रतिभू बंधपत्र प्रस्तुत किए जाने की अपेक्षा से मुक्त करते हुए निर्मुक्त किया जा सकता है । जहां तक फर्लो का संबंध है, काउंसेल ने श्री सनप के निवेदनों का समर्थन किया । काउंसेल के मतानुसार नियम 6 के परंतुक को नागपुर स्थित खंड न्यायपीठ की जानकारी में नहीं लाया गया था और **दरवाकर** (उपरोक्त) वाले मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय पर विचार करते हुए नागपुर स्थित खंड न्यायपीठ द्वारा पारित आदेश अनवधानता के कारण पारित किया गया था ।

13. विद्वान् अपर लोक अभियोजक श्रीमती आर. के. लड्डा ने निवेदन किया कि नियम के उपबंधों और ऊपर उद्धृत निर्णय पर विचार करने के पश्चात् यह अर्थान्वयन और निर्वचन युक्तियुक्त रूप से किया जा सकता है कि प्रतिभू बंधपत्र प्रस्तुत किए जाने की अपेक्षा से छूट प्रदान किए जाने के विवेकाधिकार का प्रयोग उन कैदियों के मामलों में किया जा सकता है जिनको फर्लो और पेरोल पर निर्मुक्त किया जाना है । सहायक अभियोजन अधिकारी ने निवेदन किया कि ऐसे मामलों में जहां कैदी को पेरोल पर निर्मुक्त किया जाता है, 1959 के नियम के नियम 24 में अनुध्यात शर्तों का अनुसरण किया जाना है किंतु उचित मामलों में प्राधिकारी को प्रतिभू बंधपत्र प्रस्तुत किए जाने की अपेक्षा से मुक्ति प्रदान करने के विवेकाधिकार का प्रयोग करने का अधिकार प्राप्त है ।

14. हमने पक्षों के विद्वान् काउंसेल द्वारा किए गए निवेदनों पर विचार किया है, कारागार विधि के सुसंगत उपबंधों और ऊपर उद्धृत निर्णयों का परिशीलन किया है ।

15. हम **हुसैन आरा खातून** बनाम **गृह सचिव, बिहार राज्य, पटना**[1] वाले मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय के पैरा 3 का लाभदायक निदेश लेते हैं :–

> "3. जिस कारणवश कि हमारी विधिक और न्यायिक प्रणाली गरीबों को विचारण पूर्व निरोध के अधीन लंबे वर्षों तक रखते हुए न्याय प्रदान करने से इंकार करती है, हमारी असंतोषप्रद जमानत प्रणाली है । यह (प्रणाली) औचित्य आधारित दृष्टिकोण से ग्रस्त है जो इस त्रुटिपूर्ण उपधारणा के आधार पर कार्य करती प्रतीत होती है कि आर्थिक हानि का जोखिम न्याय से पलायन करने के विरुद्ध एकमात्र निवारक होता है । दंड प्रक्रिया संहिता में पुनःअधिनियमितिकरण के पश्चात् भी वही पुराकालीन दृष्टिकोण समाविष्ट है जैसा कि पूर्ववर्ती संहिता, जो पिछली शताब्दी के अंतकाल में अधिनियमित किया गया था, में समाविष्ट था और जहां अभियुक्त को उसके व्यक्तिगत बंधपत्र के आधार पर निर्मुक्त किया जाना है, इस बात पर जोर दिया जाता है कि बंधपत्र में मौद्रिक बाध्यता समाविष्ट होनी चाहिए जिसके अन्तर्गत अभियुक्त से यह अपेक्षा की जानी चाहिए कि यदि वह विचारण के समय उपस्थित होने में विफल रहता है तो एक निश्चित

---

[1] ए. आई. आर. 1979 एस. सी. 1360.

राशि का संदाय करेगा । इसके अतिरिक्त, चूंकि गरीबों के लिए यह पर्याप्त निवारक नहीं था, न्यायालयों को यांत्रिक रूप से और सामान्यतया इस बात पर जोर देना चाहिए कि अभियुक्त को प्रतिभू, जो उसके लिए जमानत के रूप में उपस्थित होना चाहते हैं, पेश करने चाहिएं और इन प्रतिभुओं को उनकी शोध क्षमता को जमानत की रकम का संदाय करने के लिए समर्थ होने के प्रयोजनार्थ इस बात को पुन: साबित करना चाहिए यदि अभियुक्त आरोप का उत्तर देने के लिए उपस्थित होने में विफल रहता है । जमानत की यह प्रणाली गरीबों के विरुद्ध अत्यधिक कठोरपूर्वक क्रियान्वित होती है और केवल वही व्यक्ति जो गरीब नहीं है, जमानत पर निर्मुक्त होने के द्वारा इसका लाभ लेने के लिए समर्थ होते हैं । गरीब प्रतिभुओं के बिना भी जमानत बंधपत्र प्रस्तुत करने में कठिनाई का अनुभव करते हैं क्योंकि वे बहुधा न्यायालयों द्वारा निर्धारित जमानत की रकम को व्यावहारिक रूप से अत्यधिक पाते हैं कि बहुसंख्यक मामलों में गरीब जमानत की रकम के लिए उनकी शोधन क्षमता (हैसियत) के बारे में पुलिस या मजिस्ट्रेट को संतुष्ट कर पाने में विफल रहता है और उन मामलों में जहां जमानत प्रतिभुओं द्वारा होती है जैसाकि प्राय: अनेक मामलों में होता है, गरीबों के लिए प्रतिभुओं के रूप में उपस्थित होने के लिए पर्याप्त रूप से सम्पन्न व्यक्तियों को खोज पाना लगभग असंभव कार्य हो जाता है । इसका परिणाम यह होता है कि या तो स्थानीय पुलिस और राजस्व अधिकारियों द्वारा उनको ठगा जाता या दलालों और पेशेवर प्रतिभुओं द्वारा और कभी-कभी तो उनको अपनी निर्मुक्ति सुनिश्चित करने के लिए ऋण भी लेना पड़ता है या निर्मुक्ति प्राप्त कर पाने में असमर्थ रहने पर उनको तब तक जेल में ही रहना पड़ता है जब तक कि न्यायालय उनके मामलों पर विचारण आरंभ नहीं कर देता । इसके गंभीर परिणाम होते हैं जैसे कि (1) यद्यपि उसको निर्दोष पाया जाता है फिर भी उनको जेल के जीवन के मनोवैज्ञानिक और शारीरिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है । (2) वे अपनी प्रतिरक्षा की तैयारी के प्रयोजनार्थ योगदान करने से प्रवारित हो जाते हैं और (3) यदि उनके पास कोई आजीविका होती है तो चली जाती है और वे स्वयं और अपने परिवार के सदस्यों का भरण-पोषण कर पाने के अवसर से वंचित हो जाते हैं जिसके परिणामस्वरूप उनके निरोध का भार लगभग पूरी तरह से उनके परिवार के सदस्यों पर आ जाता है । यही वह स्थिति है कि गरीब हमारी विधिक और न्यायिक

प्रणाली को उनके विरुद्ध सताने वाली और अत्यधिक भ्रमपूर्ण पाते हैं और वे हतोत्साहित और निराशा की भावना से भर जाते हैं चूंकि वे इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि वे असहाय रूप से गैर-गरीब लोगों के साथ असमानता की स्थिति का सामना कर रहे हैं ....।''

16. नागपुर स्थित खण्ड न्यायपीठ द्वारा पारित आदेश से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि 1959 के नियम 6 का परंतुक खण्ड न्यायपीठ की जानकारी में नहीं लाया गया था । हमारी सुविचारित राय में खण्ड न्यायपीठ ने **दरवाकर** (उपरोक्त) वाले मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय का मूल्यांकन उचित रीति में नहीं किया है । सर्वोच्च न्यायालय ने यह मताभिव्यक्ति नहीं की थी कि यह अपेक्षित नहीं है कि किसी कैदी को फर्लो पर निर्मुक्ति किए जाते समय 1959 के नियम का नियम 6 के परंतुक पर विचार किया जाए ।

17. हमारी सुविचारित राय में सर्वोच्च न्यायालय ने **दरवाकर** (उपरोक्त) वाले मामले में यह अभिनिर्धारित नहीं किया है कि मंजूरी प्रदान करने वाले प्राधिकारी को खुले कारागार में निरुद्ध किसी कैदी को निर्मुक्त किए जाने के लिए बंधपत्र के निष्पादन की अपेक्षा से छूट देने का विवेकाधिकार प्राप्त नहीं है ।

18. जहां तक कैदियों, जिनको पेरोल पर निर्मुक्त किया जाना है, का संबंध है, 1959 के नियम का नियम 24 उन शर्तों को अनुध्यात करता है जिनके अधीन कैदी को पेरोल प्रदान किया जा सकता है । 1959 के नियम का नियम 28 अधिकथित करता है कि 1959 के नियम के नियम 8(5), 10, 11 और 12 पेरोल पर कैदियों की निर्मुक्ति के मामले में यथाआवश्यक परिवर्तन सहित लागू होंगे ।

19. ब्लैक के विधि शब्दकोश में यथाआवश्यक परिवर्तन सहित को निम्नलिखित प्रकार से परिभाषित किया गया है :–

> ''सभी आवश्यक परिवर्तनों, जिनको किया गया ; आवश्यक परिवर्तनों सहित ; प्रथम संविदा के संबंध में जो कहा गया, यथाआवश्यक परिवर्तनों सहित सभी पश्चात्‌वर्ती मामलों में लागू होगा ।''

पी. रामनाथ अय्यर द्वारा लिखित लैक्सिकन विधि, द्वितीय संस्करण, पुनर्मुद्रांकित 2007 में वाक्यांश ''यथाआवश्यक परिवर्तन सहित'' को इस प्रकार से परिभाषित किया गया है :–

"विवरण के बिंदुओं को ध्यान में रखते हुए यथाअपेक्षित परिवर्तन सहित । ऐसे परिवर्तन सहित जो आवश्यक हो ।"

वाक्यांश "यथाआवश्यक परिवर्तन सहित" को विधान के निर्माण में समान या समरूप परिस्थितियों या समान या समरूप विषयों वाले विधायी उपबंधों को लागू किए जाने या उनको विस्तारित किए जाने में प्रयोग किया जाता है ।

20. 1959 के नियम का नियम 6 अनुध्यात करता है कि कैदी का नातेदार उस रकम के बाबत जो मंजूरी प्रदान करने वाले प्राधिकारी, जो फर्लो के दौरान याची की आवभगत करने का इच्छुक है प्रपत्र-क में प्रतिभू बंधपत्र प्रस्तुत करेगा । 1959 के नियम का नियम 10 उल्लेख करता है कि मंजूरी प्रदान करने वाला प्राधिकारी कैदी को व्यक्तिगत बंधपत्र निष्पादित किए जाने या इन नियमों के साथ संलग्न प्रपत्र-ग में नकद प्रतिभूति प्रस्तुत किए जाने और प्रपत्र-क में बंधपत्र निष्पादित किए जाने की शर्त पर, यदि ऐसा किया जाना अपेक्षित हो, फर्लो प्रदान करेगा । हम यह मत व्यक्त करते हुए गुजरात उच्च न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ द्वारा व्यक्त किए गए मत के साथ सहमत हैं कि नियम 6 की अपेक्षा भी नियम 10 में प्रतिष्ठापित है । जबकि नियम 6 प्रपत्र-क में प्रतिभू बंधपत्र निष्पादित किए जाने के प्रयोजनार्थ तत्परता को निर्दिष्ट करता है, नियम 10 प्रपत्र-क में प्रतिभू बंधपत्र को वास्तविक रूप से प्रस्तुत किए जाने पर विचार करता है । 1959 के नियम के नियम 10 को किसी कैदी को पेरोल पर निर्मुक्त किए जाने के मामलों में यथाआवश्यक परिवर्तन सहित लागू किया गया था । यह अर्थान्वयन और निर्वचन युक्तिसंगत रूप से किया जा सकता है कि "यदि अपेक्षित हो" तो मंजूरी प्रदान करने वाला प्राधिकारी नियम के साथ संलग्न प्रपत्र-क में बंधपत्र निष्पादित किए जाने के द्वारा प्रतिभू प्रस्तुत किए जाने के लिए कैदी पर जोर डालेगा । अन्य शब्दों में मंजूरी प्रदान करने वाला प्राधिकारी को प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए कैदी को नियम के साथ संलग्न प्रपत्र-क में प्रतिभू बंधपत्र प्रस्तुत किए जाने की अपेक्षा से छूट प्रदान करते हुए पेरोल पर निर्मुक्त करने का विवेकाधिकार प्राप्त है ।

21. इस समस्या का एक अन्य पहलू भी है । हमने अनेक मामलों में अनुभव किया है और न्यायालयों में उपस्थित होने वाले अपर लोक अभियोजकों को अनुदेश देने वाले अधिकारी भी अभिकथित करते हैं कि नातेदारों द्वारा प्रतिभू बंधपत्र का निष्पादन सामान्यतया 2000/- रुपए की

राशि में होता है और यदि कैदी जेल प्राधिकारियों के समक्ष समय से उपस्थित नहीं होता है या समय से आत्मसमर्पण नहीं करता है या छुट्टी की अवधि में विस्तार के बिना अधिक अवधि तक छुट्टी पर बना रहता है तो प्रथम कार्यवाही जो प्राधिकारी करते हैं, प्रतिभू बंधपत्र के अधीन रकम का समपहरण किया जाना और पुलिस को सूचित किया जाना होता है कि कैदी को गिरफ्तार किया जाएगा और उसको जेल प्राधिकारियों के समक्ष लाया जाएगा । हमने अनेक मामलों में देखा है कि जेल प्राधिकारियों द्वारा प्रतिभू बंधपत्र में निर्धारित राशि का समपहरण कैदियों, जिन्होंने फर्लो या पेरोल पर उनकी निर्मुक्ति के पश्चात् जेल प्राधिकारियों के समक्ष आत्मसमर्पण नहीं किया है, के विरुद्ध निवारक के रूप में सफल नहीं हो पा रहा है ।

22. हमने अपर लोक अभियोजक से औरंगाबाद स्थित हरसुल केन्द्रीय कारागार और पैथन स्थित खुला जिला कारागार के कैदियों के संबंध में विवरण प्रस्तुत किया है जो वास्तव में चौंका देने वाली है । फर्लो पर निर्मुक्ति के मामले में 30 कैदियों ने निर्मुक्ति के पश्चात् वापसी की रिपोर्ट प्रस्तुत नहीं की है और उनमें से 12 पैथन स्थित खुले कारागार में निरुद्ध थे । कैदियों, जो पेरोल पर थे, में से 26 कैदियों जिनको हरसुल स्थित केन्द्रीय कारागार में रखा गया था, ने आत्मसमर्पण नहीं किया था और यह सूचित किया गया है कि कुछ कैदियों, जिनको खुले कारागार में निरुद्ध किया गया था और फर्लो पर निर्मुक्त किया गया था, को व्यक्तिगत बंधपत्र पर निर्मुक्त किया गया था जबकि याची, हरसुल स्थित केन्द्रीय कारागार में निरुद्ध किया गया था, में से अधिकांश को प्रतिभू बंधपत्र प्रस्तुत किए जाने के आधार पर निर्मुक्त कर दिया गया था । हमने इन आंकड़ों को मात्र मंजूरी प्रदान करने वाले प्राधिकारी द्वारा पारित निर्मुक्ति आदेश के निष्पादन में नियम के व्यावहारिक आशय को प्रकाश में लाने के लिए एकत्रित किया है ।

23. ऊपर की गई चर्चा के प्रकाश में हम अभिनिर्धारित करते हैं कि 1959 नियम के नियम 6 के परंतुक के अनुसार किसी खुले कारागार में निरुद्ध दोषसिद्ध को मंजूरी प्रदान करने वाले प्राधिकारी द्वारा उसके नातेदारों द्वारा बंधपत्र के निष्पादन की अपेक्षा से छूट प्रदान करते हुए फर्लो पर निर्मुक्त किया जा सकता है ।

हम अभिनिर्धारित करते हैं कि खुले कारागार में निरुद्ध किसी दोषसिद्ध को प्राधिकारियों द्वारा दोषसिद्ध के नातेदारों द्वारा बंधपत्र के निष्पादन की अपेक्षा से छूट प्रदान करके पेरोल पर निर्मुक्त किया जा सकता है ।

24. तद्नुसार, निदेश का उत्तर दिया जाता है । रजिस्ट्री को निदेश दिया जाता है कि इन याचिकाओं को विधि अनुसार निर्णीत किए जाने के प्रयोजनार्थ सक्षम न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया जाए ।

निदेश का उत्तर दिया गया ।

शु.

(2012) 2 दा. नि. प. 264 **मुंबई**

आदर्श कोआपरेटिव हाउसिंग सोसाइटी लिमिटेड

बनाम

भारत संघ और अन्य

तारीख 27 जुलाई, 2011

न्यायमूर्ति (सुश्री) रंजना देसाई और न्यायमूर्ति रंजीत मोरे

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 102 – संपत्ति का अभिग्रहण – बेनामी संव्यवहार – बैंक खातों का अभिग्रहण – जहां किन्हीं बैंक खातों के संव्यवहार से बेनामी संव्यवहार और अवैध रीति से विभिन्न प्राधिकारियों से उनके पदीय हैसियत के दुरुपयोग से अनापत्ति प्राप्त करके भूमि आबंटन कराने के अपराध किए जाने का संदेह होता है, वहां सोसाइटी के बैंक खातों का अभिग्रहण अनुज्ञेय और विधिसम्मत है ।

संक्षेप में मामले के तथ्य इस प्रकार हैं कि याची संस्था 1960 के महाराष्ट्र सहकारी सोसाइटी अधिनियम के अन्तर्गत रजिस्ट्रीकृत संस्था है । इस संस्था में 102 सदस्य हैं । याची संस्था और उसके सदस्यों को महाराष्ट्र सरकार द्वारा अधिभोग आधार पर 6428.5 वर्ग मीटर भूमि आबंटित की गई थी । इस बाबत रक्षा मंत्रालय द्वारा एक शिकायत केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो के समक्ष रजिस्ट्रीकृत कराई गई थी जिसके द्वारा केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो से याची-सोसाइटी से संबंधित अभिकथित अनियमितताओं की जांच करने का अनुरोध किया गया था । शिकायत प्राप्त होने पर केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो ने आरंभिक जांच की । केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो ने तारीख 29 जनवरी, 2011 को याची संस्था से सम्बद्ध अनेक व्यक्तियों के विरुद्ध 1860 की भारतीय दंड संहिता की धाराओं 20ख, 420, 468 और

471 सपठित 1988 के भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13(1)(ख) के अधीन प्रथम इत्तिला रिपोर्ट यह अभिकथित करते हुए रजिस्ट्रीकृत की कि अभियुक्तों ने अपनी शासकीय हैसियत का दुरुपयोग किया और याची-संस्था के पक्ष में गैर कानूनी तरीके से भूमि आबंटित किए जाने के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए अभिलेखों में छलसाधन और मिथ्याकरण किया । आगे यह अभिकथित किया गया है कि अभियुक्तों ने अपनी शासकीय हैसियत का दुरुपयोग किया और स्वयं और अपने निकट नातेदारों के लिए याची संस्था में फ्लैटों के बाबत बाजार मूल्य के मुकाबले अत्यधिक कम मूल्य पर साम्पत्तिक अधिकार अभिप्राप्त किए । अन्वेषण आरंभ किया गया । याची-संस्था के अपराध की जांच की गई और अनेक दस्तावेजों, लेखों इत्यादि का अभिग्रहण किया गया । इसी प्रकार से अभियुक्तों के निवास स्थानों की भी तलाशी ली गई । केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो ने उन सभी दस्तावेजों का अभिग्रहण किया जो याची संस्था द्वारा उसके बैंक खातों के क्रियान्वयन के लिए अपेक्षित थे जैसेकि बैंकों के पासबुक, चैक बुक, बैंक खातों के कथन इत्यादि । केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो ने तारीख 31 जनवरी, 2010 को भारतीय स्टेट बैंक की वोडहाउस मार्ग शाखा और कफ परेड शाखा को यह निदेशित करते हुए लिखा कि वे केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो से आगे अनुदेश प्राप्त किए बिना उक्त बैंक खातों का क्रियान्वयन रोक दें और आगे केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो से अनुदेश प्राप्त किए बिना उनके क्रियान्वयन की अनुज्ञा प्रदान न करें । केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो ने उक्त खातों को स्थिरीकृत करने के पूर्व याची संस्था पर किसी नोटिस की तामीली नहीं की । याची संस्था को केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो द्वारा जारी उक्त निदेश के बारे में भारतीय स्टेट बैंक द्वारा उनको संबोधित तारीख 1 फरवरी, 2011 के पत्र द्वारा पता चला । याची संस्था ने केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो की इस कार्यवाही से व्यथित होकर इस न्यायालय की शरण ली है । न्यायालय द्वारा याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 16 उपदर्शित करती है कि यदि न्यायालय विचारण की समाप्ति पर जुर्माना अधिरोपित करना चाहता है, तो उसको रकम या सम्पत्ति के मूल्य पर विचार करना चाहिए जिसको अभियुक्त ने अपराध कारित करने के द्वारा अभिप्राप्त कर लिया था । न्यायालयों द्वारा विचारण की समाप्ति में लगाया गया समय अन्य कारक है जिसको संहिता की धारा 102 के उपबंधों और उसमें उपबंधित उद्देश्य का निर्वचन करते हुए ध्यान में रखा जाना चाहिए चूंकि यदि अभियुक्त के बैंक खाते के अभिग्रहण का कोई आदेश नहीं हो सकता तो

उस बैंक खाते में जमा सम्पूर्ण राशि जो अंततः विचारण में अवैध परितोषण का परिणाम होने के कारण स्थिरीकृत है, को अभियुक्त द्वारा आहरित किया जा सकता था और ऐसी स्थिति में न्यायालय उस धन, जिसका उस अपराध, जिसको अभियुक्त द्वारा लोक सेवक की हैसियत में कारित किया गया था, को वापस प्राप्त कर पाने में शक्तिहीन हो जाएगी । उच्चतम न्यायालय ने मताभिव्यक्ति की कि भ्रष्टाचार उन्मूलन अधिनियम में धारा 13 की उपधारा (2) के अधीन जुर्माना के अधिरोपण के मामले में विधानमण्डलों ने यह उपबंधित किया है कि न्यायालय जुर्माना की रकम निर्धारित करने के मामले में उस रकम या उस सम्पत्ति के मूल्य पर विचार करेगा जिसको अभियुक्त ने अपराध कारित करने के द्वारा अभिप्राप्त किया है । उच्चतम न्यायालय ने मत व्यक्त किया कि इसीलिए संहिता की धारा 102 के अधीन अभिग्रहण की शक्ति के संबंध में उसके द्वारा दिया गया निर्वचन भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 16 में उपबंधित विधानमण्डल के आशय के अनुसार था । (पैरा 22)

न्यायालय के विचार में उच्चतम न्यायालय की मताभिव्यक्ति के प्रकाश में मामले का परीक्षण किए जाने पर याची-सोसाइटी के बैंक खातों का अभिग्रहण करने की अन्वेषण अभिग्रहण की कार्रवाई न्यायसंगत है । उक्त खाते में जमा रकम को बिखर जाने या समाप्त किए जाने की अनुज्ञा प्रदान नहीं की जा सकती चूंकि यदि विचारण न्यायालय जुर्माना का दंडादेश अधिरोपित करने का निर्णय करता है तो उक्त रकम का विचारण की समाप्ति पर अत्यधिक महत्व होगा । याची-सोसाइटी के काउंसेल द्वारा दी गई दलील का उत्तर यह है कि बैंक खातों में रकम का प्रतिधारण आवश्यक नहीं होता । इस दलील में विनोस कुमार वेल्लुवर वाले मामले में इस न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ द्वारा दिए गए निर्णय को निर्दिष्ट करना भी आवश्यक है । इस मामले में पूर्ण न्यायपीठ ने उस सम्पत्ति को परिरक्षित किए जाने की आवश्यकता पर विशेष बल दिया जिसके अपराध कारित किए जाने में प्रयोग किए जाने का संदेह है और जिसके बिखर जाने, समाप्त किए जाने या नष्ट हो जाने की आशंका है । यह निर्णय याची-सोसाइटी के काउंसेल द्वारा दी गई इस दलील का उत्तर भी है कि याची-सोसाइटी को उसके खातों का अभिग्रहण किए जाने के पूर्व कोई सूचना नहीं दी गई थी । पूर्ण न्यायपीठ ने स्पष्ट किया है कि इस प्रकार की किसी सूचना की आवश्यकता नहीं है । न्यायालय पूर्ण न्यायपीठ की सुसंगत मताभिव्यक्ति को उद्धृत करता है । (पैरा 23)

श्री थोरेट की इस दलील में भी कोई तत्व नहीं है कि चूंकि याची-

सोसाइटी अभियुक्त नहीं है, उसके बैंक खातों का अभिग्रहण नहीं किया जा सकता । इसमें कोई संदेह नहीं है कि संहिता की धारा 102 का आयाम अत्यधिक व्यापक है । यह धारा पुलिस अधिकारियों को न केवल अभियुक्तों, बल्कि उनके नातेदारों या किसी अन्य व्यक्ति को उक्त सम्पत्ति से सम्बद्ध होने की संभाव्यता हो, की सम्पत्तियों का अभिग्रहण किए जाने के लिए सशक्त करती है । इस धारा की मात्र यह अपेक्षा है कि वह सम्पत्ति ऐसी परिस्थितियों के अधीन पाई जानी चाहिए जो अपराध करने वाली हों । उच्चतम न्यायालय ने तपस नियोगी वाले मामले में मत व्यक्त किया है कि अभियुक्त या उसके किसी नातेदार का बैंक खाता संहिता की धारा 102 के अर्थांतर्गत 'संपत्ति' है । यह निर्णयज विधि विधिक परितोषण/लाभ और बेनामी संव्यवहार अंतर्वलित करने वाले मामले में अधिक प्रभावशाली ढंग से लागू होगी । यह तथ्य अत्यधिक सुसंगत है कि अभियुक्त याची-सोसाइटी के सदस्य हैं । यद्यपि याची-सोसाइटी को अभियुक्त के रूप में उद्धृत नहीं किया गया है, फिर भी न्यायालय इन परिस्थितियों में याची-सोसाइटी के बैंक खातों का अभिग्रहण किए जाने में कुछ भी त्रुटिपूर्ण नहीं पाता । न्यायालय संहिता की धारा 102 अधिनियमित किए जाने और उसकी स्पष्ट भाषा को प्रभावी किए जाने के पीछे विधानमण्डल के आशय पर विचारोपरांत उसके निर्बंधित अर्थ निकाल पाने में असमर्थ है । यदि इस धारा के अधीन कार्यवाही की जाती है तो यह स्पष्ट हो जाता है कि सम्पत्ति के अन्वेषण के दौरान संरक्षित किए जाने की आवश्यकता है । इसके व्यापक आयाम को इस आधार पर कि कानूनी देयों का या अधिवक्ताओं के शुल्क का संदाय किया जाना है, निर्बंधित नहीं किया जा सकता । यहां पर यह अभिकथित किया जाना आवश्यक है कि चूंकि अनेक आधारों में से एक आधार जिस पर याची-सोसाइटी ने खातों को अस्थिरीकृत किए जाने की प्रार्थना की है, कानूनी देयों के संदाय का है, न्यायालय ने केन्द्रीय जांच ब्यूरो से यह अभिकथित करने की अपेक्षा की है कि क्या कानूनी देयों की रकमों का संदाय स्थिरीकृत खातों से किया जा सकता है । विद्वान् अपर महासालिसिटर श्री खम्बाटा ने निवेदन किया कि केन्द्रीय जांच ब्यूरो के अधिकारों और दलीलों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना कानूनी देयों से निर्मुक्त किए जा सकते हैं परंतु यह तब जबकि (कानूनी देयों) के विवरण प्रस्तुत किए जाएं । फिर भी याची-सोसाइटी ने इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया । (पैरा 24)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2011]	2011 (2) बाम्बे सी. आर. (क्रिमिनल) 179 = 2011 (3) ए. आई. आर. बाम्बे आर. 203 : **विनोस कुमार रामचन्द्रन वल्लुवोर** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ;	11, 23
[2007]	2007 (2) बाम्बे सी. आर. 87 = 2007 (4) ए. आई. आर. बाम्बे आर. 501 : **शशीकांत डी. कार्निक** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ;	10, 23
[2005]	(2005) 1 सी. टी. सी. 657 : **श्री कांची कामकोटि पीठाधिपति जगद्गुरु श्री शंकराचार्य स्वामिगल श्रीमतम समस्थानक जिनका प्रतिनिधित्व उसके प्रबंधक द्वारा किया गया** बनाम **तमिलनाडु राज्य जिसका प्रतिनिधित्व सरकार के गृह विभाग के सचिव द्वारा किया गया और अन्य** ;	8, 27
[2003]	2003 क्रिमिनल ला जर्नल 2779 (मद्रास) : **बी. रंगनाथन** बनाम **राज्य और अन्य** ;	10
[2003]	2003 क्रिमिनल ला जर्नल 294 : **आर. चन्द्रशेखर** बनाम **पुलिस निरीक्षक, सलेम और एक अन्य** ;	10
[1999]	(1999) एस. सी. सी. 685 = 1989 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 3389 : **महाराष्ट्र राज्य** बनाम **तपस नियोगी** ;	11, 17, 20, 22, 24, 27
[1979]	ए. आई. आर. 1979 एस. सी. 1369 : **हुसैन आरा खातून और अन्य** बनाम **गृह सचिव, बिहार राज्य पटना** ;	7
[1978]	ए. आई. आर. 1978 एस. सी. 1548 : **माधव हयावेदन रावे होस्कट** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ;	7, 26
[1978]	ए. आई. आर. 1978 एस. सी. 597 : **मेनका गांधी** बनाम **भारत संघ** ;	7, 26

[1976] 1976 क्रिमिनल ला जर्नल 620 :
अनवार अहमद बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** ; 10, 27

[1972] ए. आई. आर. 1972 ए. पी. 318 :
के. मुनीवेलु बनाम **भारत सरकार** । 11,18

रिट (दांडिक) अधिकारिता : 2011 की दांडिक रिट याचिका सं. 570.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका ।

याची की ओर से सर्वश्री वी. ए. थोरेट (वरिष्ठ काउंसेल), एस. एल. मनेशिंडे और विधि पार्टनर्स, साकेत माने

प्रत्यर्थियों/राज्य की ओर से सर्वश्री डी. जे. खम्बाटा (अपर सालिसिटर जनरल), डी. एल. सल्वी, अफरोज शाहा सी. एस. दामने और पी. ए. पोल (लोक अभियोजक)

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति (सुश्री) रंजना देसाई ने दिया ।

न्या. (सुश्री) देसाई – याची एक रजिस्ट्रीकृत संस्था है जो 1970 के महाराष्ट्र सहकारी समिति अधिनियम के अंतर्गत रजिस्ट्रीकृत है । प्रत्यर्थी संख्या 1 भारत संघ है । प्रत्यर्थी संख्या 2 महाराष्ट्र राज्य है और प्रत्यर्थी संख्या 3 केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो है (जिसको संक्षेप में "सी. बी. आई." कह कर निर्दिष्ट किया गया है) जो वर्तमान में याची संस्था और उसके सदस्यों से सम्बद्ध कतिपय मामलों का अन्वेषण कर रहा है ।

2. संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन फाइल की गई इस याचिका में अन्य बातों के साथ यह प्रार्थना की है कि याची-सोसाइटी के खातों, जो भारतीय स्टेट बैंक की बोर्ड हाउस रोड़ शाखा और कफे परेड शाखा में है ।

3. याचिका में अभिकथित तथ्यों का सार इस प्रकार है :–

(क) याची-संस्था 1960 के महाराष्ट्र सहकारी सोसाइटी अधिनियम के अन्तर्गत रजिस्ट्रीकृत संस्था है । इस संस्था में 102 सदस्य हैं । याची-संस्था और उसके सदस्यों को महाराष्ट्र सरकार द्वारा अधिभोग आधार पर 6428.5 वर्ग मीटर भूमि आबंटित की गई थी । महाराष्ट्र सरकार द्वारा इस बाबत रक्षा मंत्रालय द्वारा एक शिकायत

केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो के समक्ष रजिस्ट्रीकृत कराई गई थी जिसके द्वारा केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो से याची-सोसाइटी से संबंधित अभिकथित अनियमितताओं की जांच करने का अनुरोध किया गया था । शिकायत प्राप्त होने पर केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो ने आरंभिक जांच की ।

(ख) केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो ने तारीख 29 जनवरी, 2011 को याची-संस्था से सम्बद्ध अनेक व्यक्तियों के विरुद्ध 1860 की भारतीय दंड संहिता की धाराओं 20-ख, 420, 468 और 471 सपठित 1988 के भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13(1)(ख) के अधीन प्रथम इत्तिला रिपोर्ट यह अभिकथित करते हुए रजिस्ट्रीकृत की कि अभियुक्तों ने अपनी शासकीय हैसियत का दुरुपयोग किया और याची-संस्था के पक्ष में गैर कानूनी तरीके से भूमि आबंटित किए जाने उनके उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए अभिलेखों में छलसाधन और मिथ्याकरण किया । आगे यह अभिकथित किया गया है कि अभियुक्तों ने अपनी शासकीय हैसियत का दुरुपयोग किया और स्वयं और अपने निकट नातेदारों के लिए याची-संस्था में फ्लैटों के बाबत बाजार मूल्य के मुकाबले अत्यधिक कम मूल्य पर साम्पत्तिक अधिकार अभिप्राप्त किए ।

(ग) अन्वेषण आरंभ किया गया । याची-संस्था के अपराध की जांच की गई और अनेक दस्तावेजों, लेखों इत्यादि का अभिग्रहण किया गया । इसी प्रकार से अभियुक्तों के निवास स्थानों की भी तलाशी ली गई । केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो ने उन सभी दस्तावेजों का अभिग्रहण किया जो याची संस्था द्वारा उसके बैंक खातों के क्रियान्वयन के लिए अपेक्षित थे जैसेकि बैंकों के पासबुक, चैक बुक, बैंक खातों के कथन इत्यादि । केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो ने तारीख 31 जनवरी, 2010 को भारतीय स्टेट बैंक की वोडहाउस मार्ग शाखा और कफ परेड शाखा को यह निदेशित करते हुए लिखा कि वे केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो से आगे अनुदेश प्राप्त किए बिना उक्त बैंक खातों का क्रियान्वयन रोक दे और आगे केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो से अनुदेश प्राप्त किए बिना उनके क्रियान्वयन की अनुज्ञा प्रदान न करे । केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो ने उक्त खातों को स्थिरीकृत करने के पूर्व याची-संस्था पर किसी नोटिस की तामीली नहीं की । याची-संस्था को केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो द्वारा जारी उक्त निदेश के बारे में भारतीय स्टेट बैंक द्वारा उनको संबोधित तारीख 1 फरवरी, 2011 के पत्र द्वारा पता चला ।

याची संस्था ने केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो की इस कार्यवाही से व्यथित होकर इस न्यायालय की शरण ली है ।

4. हमने याची संस्था की ओर से उपस्थित विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल श्री थोरेट और प्रत्यर्थी संख्या 1 और 3 की ओर से उपस्थित विद्वान् अपर महासालिसिटर श्री खम्बाटा को सुना । हमने केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो के पुलिस अपर अधीक्षक श्री रविन्द्र सिंह द्वारा फाइल किए गए तारीख 15 मार्च, 2011 के उत्तर शपथपत्र और लेफ्टीनेंट कमांडर (सेवानिवृत्त) श्री एस. ग्रेवाल के प्रत्युत्तर शपथपत्र और अतिरिक्त शपथपत्र का परिशीलन किया । हमने याची संस्था और केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो द्वारा फाइल किए गए लिखित निवेदनों का भी सतर्कतापूर्वक परिशीलन किया ।

5. विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल श्री थोरेट ने निवेदन किया कि याची सोसाइटी के खातों की विधिविरुद्ध और अनुचित तरीके से किए गए स्थिरीकरण को अपास्त कर दिया जाना चाहिए । काउंसेल ने निवेदन किया कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में यह अभिकथित किया गया है कि 13 व्यक्तियों, जो याची-सोसाइटी के सदस्य थे, ने सोसाइटी के पक्ष में अवैध रूप से भूमि आबंटित कराने के आशय से एक साथ मिलकर षड्यंत्र किया था । भारतीय स्टेट बैंक में याची-सोसाइटी के दो खातों में जो रकम पड़ी हुई है वह याची-सोसाइटी के सदस्यों से इसी उद्देश्य की प्राप्ति हेतु अन्य बातों के साथ-साथ याची-सोसाइटी के विरुद्ध आरंभ की गई मुकदमेबाजी के खर्चों को पूरा करने के लिए अंशदान के रूप में प्राप्त हुई रकम के रूप में तारीख 1 नवंबर, 2011 को जमा की गई थी । अत: स्पष्टत:, उक्त रकम और अभिकथित अपराधों के मध्य कोई संबंध नहीं है ।

6. काउंसेल ने आगे निवेदन किया कि याची-सोसाइटी 1960 के महाराष्ट्र सहकारी सोसाइटी अधिनियम के अन्तर्गत रजिस्ट्रीकृत सोसाइटी है । यह एक पृथक् और विधिक अस्तित्व है । कानूनी रूप से यह अपेक्षित है कि सोसाइटी के नाम में एक बैंक खाता खोला जाए जिससे कि इसके क्रियान्वयनों के माध्यम से इसके वित्तीय प्रतिबद्धताओं को पूरा किया जा सके । यह अपेक्षित है कि (क) इसके भवन और परिसर की सुरक्षा के प्रयोजनार्थ सुरक्षा अभिकरणों (ख) भवन और उसके सीमाओं के रखरखाव के बाबत संदाय किए जाएं । भवन में एक लिफ्ट भी है । यदि उसका रखरखाव नहीं किया गया तो उसमें जंग लग जाएगी । (ग) ठेकेदारों और अन्य सेवा प्रदाताओं, जिन्होंने भवन के निर्माण के बाबत अपनी सेवाएं प्रदान की हैं, प्रदाताओं के लंबित बीजकों, (घ) याची-सोसाइटी द्वारा विभिन्न

मुकदमों के संबंध में लगाए गए अधिवक्ताओं और काउंसेलों को किए गए संदाय (घ) याची-सोसाइटी के स्टाफ का वेतन और (ङ) कानूनी देयों का संदाय । याची-सोसाइटी के खातों के स्थिरीकृत कर दिए जाने के कारण उपरोक्त संदाय कर पाने में समर्थ नहीं हो सकी है ।

7. काउंसेल ने आगे निवेदन किया कि खातों के स्थिरीकरण के कारण याची-सोसाइटी के साथ अन्याय हुआ है । वह अपनी रुचि का वकील नियुक्त कर पाने के अधिकार से वंचित हो गई है । अत: संविधान द्वारा अनुच्छेदों 14, 19 और 21 के अधीन उनको प्रत्याभूत मूल अधिकारों का अतिक्रमण हुआ है । काउंसेल ने इस संबंध में **माधव हयावेदन रावे होस्कट** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[1], **मेनका गांधी** बनाम **भारत संघ**[2] और **हुसैन आरा खातून और अन्य** बनाम **गृह सचिव, बिहार राज्य पटना**[3] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णयों का अवलंब लिया । काउंसेल ने बताया कि याची-सोसाइटी ने बैंक से यह अनुरोध करते हुए पत्र लिखा है कि उसको नया खाता खोलने की अनुज्ञा प्रदान की जाए, तथापि, अनुज्ञा प्रदान किए जाने से इनकार कर दिया गया है ।

8. काउंसेल ने निवेदन किया कि केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो ने याची-सोसाइटी के विरुद्ध कोई सामग्री एकत्रित नहीं की है । उसके बैंक खातों में जमा निधियों और अभिकथित अपराध के मध्य अनियमित संबंध को स्थापित किए जाने के प्रयोजनार्थ एकमात्र साक्ष्य श्री सिंह के शपथपत्र के पैराग्राफ 12 और 13 में पाया जाता है जिनमें यह अभिकथित किया गया है कि इस रकम का प्रयोग उस साक्ष्य में छेड़छाड़ की जाएगी जिसको प्रस्तुत किया जाना अत्यधिक अस्वाभाविक है । काउंसेल ने पूज्य **श्री कांची कामकोटि पीठाधिपति जगद्‌गुरु श्री शंकराचार्य स्वामिगल श्रीमतम समस्थानक जिनका प्रतिनिधित्व उसके प्रबंधक द्वारा किया गया** बनाम **तमिलनाडु राज्य जिसका प्रतिनिधित्व सरकार के गृह विभाग के सचिव द्वारा किया गया और अन्य**[4] वाले मामले में विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा दिए गए निर्णय का अवलंब लेते हुए निवेदन किया कि इस आधार पर बैंक खाते को स्थिरीकृत नहीं किया जा सकता । अभिग्रहण 1973 की दंड प्रक्रिया संहिता (संक्षेप में "संहिता") की धारा 102 के अधीन उन आस्तियों

---

[1] ए. आई. आर. 1978 एस. सी. 1548.

[2] ए. आई. आर. 1978 एस. सी. 597.

[3] ए. आई. आर. 1979 एस. सी. 1369.

[4] (2005) 1 सी. टी. सी. 657.

के संबंध में किया जा सकता है जो अपराध का प्रत्यक्ष परिणाम है ।

9. काउंसेल ने निवेदन किया कि याची-सोसाइटी प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में अभियुक्त नहीं है । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में बैंक खातों का कोई उल्लेख नहीं है । खातों में धन के प्रतिधारण (रोके जाने) को किसी भी दृष्टिकोण से निधियों के स्रोत के बारे में यह विनिर्धारित किए जाने के प्रयोजनार्थ कि क्या कोई खाता बेनामी प्रकृति का है, अन्वेषण की अपेक्षा नहीं कहा जा सकता । यह अभिकथित किया गया है कि अभियुक्तों ने बेनामी संव्यवहारों से धन प्राप्त किया है, तथापि, इस प्रकार का कोई अभिकथन नहीं किया गया है कि इस रकम को याची-सोसाइटी के खातों, जिनका अभिग्रहण किया गया है, में जमा कर दिया गया है ।

10. काउंसेल ने निवेदन किया कि खातों को स्थिरीकृत किए जाने के पूर्व याची-सोसाइटी को कोई नोटिस नहीं दिया गया था । काउंसेल ने **शशीकांत डी. कार्निक** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय का अवलंब लेते हुए निवेदन किया कि ऊपरवर्णित स्थितियों को ध्यान में रखते हुए अभिग्रहण दूषित है । काउंसेल ने **अनवार अहमद** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[2], **बी. रंगनाथन** बनाम **राज्य और अन्य**[3] और **आर. चन्द्रशेखर** बनाम **पुलिस निरीक्षक, सलेम और एक अन्य**[4] वाले मामलों का अवलंब लेते हुए निवेदन किया कि इन परिस्थितियों में इस न्यायालय को अभिगृहीत खातों को तुरंत अस्थिरीकृत किए जाने हेतु केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो को निदेशित करना चाहिए ।

11. इसके विपरीत भारत संघ और केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो की ओर से उपस्थित विद्वान् अपर महासालिसिटर श्री खम्बाटा ने निवेदन किया कि खातों को अस्थिरीकृत किए जाने का कोई मामला नहीं बनता । उन्होंने निवेदन किया कि संहिता की धारा 102 की परिधि अत्यधिक व्यापक है । यह धारा किसी सम्पत्ति के अभिग्रहण के लिए अनुध्यात करती है । किसी अभियुक्त की सम्पत्ति या किसी गैर अभियुक्त की सम्पत्ति भी अभिगृहीत की जा सकती है परंतु यह तब जबकि उस सम्पत्ति के संबंध में ऐसी परिस्थितियां पाई जाएं जो अपराध कारित किए जाने के बाबत संदेह

---

[1] 2007 (2) बाम्बे सी. आर. 87 = 2007 (4) ए. आई. आर. बाम्बे आर. 501.
[2] 1976 क्रिमिनल ला जर्नल 620.
[3] 2003 क्रिमिनल ला जर्नल 2779 (मद्रास).
[4] 2003 क्रिमिनल ला जर्नल 294.

उत्पन्न करती हों । काउंसेल ने पी. रामनाथ अय्यर द्वारा लिखित एडवांस्ड ला लेक्सिकोन, खण्ड 4 (2005) में दी गई "संदेह" शब्द की परिभाषा की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करते हुए निवेदन किया कि संपत्ति की कुर्की किसी दुर्बल साक्ष्य या बिना किसी साक्ष्य के आधार पर की जा सकती है । काउंसेल ने इस संबंध में **के. मुनीवेलु** बनाम **भारत सरकार**[1] वाले मामले में आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय की खण्ड न्यायपीठ द्वारा दिए गए निर्णय का भी अवलंब लिया । काउंसेल ने निवेदन किया कि **महाराष्ट्र राज्य** बनाम **तपस नियोगी**[2] वाले मामले में दिया गया निर्णय इसी बिंदु से संबंधित है । काउंसेल ने **विनोस कुमार रामचन्द्रन वल्लुवोर** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[3] वाले मामले में इस न्यायालय की पूर्ण खण्ड न्यायपीठ द्वारा दिए गए निर्णय का भी अवलंब लिया जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि संहिता की धारा 102 सम्पत्ति की कुर्की के पूर्व किसी व्यक्ति को नोटिस जारी किए जाने की अपेक्षा नहीं करती । काउंसेल ने निवेदन किया कि अन्वेषण के अनुक्रम के दौरान प्रथमदृष्ट्या यह प्रतीत होता है कि विभिन्न लोक सेवकों/निजी व्यक्तियों ने याची-सोसाइटी से संबंधित 2010 की रिट याचिका संख्या 3359 में इस न्यायालय की खण्ड न्यायपीठ ने सम्बद्ध अधिकारी को प्रथम इत्तिला रिपोर्ट को संशोधित करने के लिए निदेशित किया था जिससे कि 1988 के बेनामी संव्यवहार (प्रतिषेध) अधिनियम (संक्षेप में "बेनामी अधिनियम") के उपबंधों का अवलंब लिया जा सके । काउंसेल ने निवेदन किया कि अन्वेषण महत्वपूर्ण प्रक्रम पर है । बेनामी अधिनियम के अधीन अपराधों के अन्वेषण के लिए यह प्रक्रिया अपनाई जाती है कि याची-सोसाइटी के खातों का अभिग्रहण किया जाता है । काउंसेल ने निवेदन किया कि अभियुक्तों को भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन कारित किए गए अपराधों के बाबत आरोपित किया जाता है । काउंसेल ने **तपस नियोगी** वाले मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा व्यक्त किए गए मत के प्रकाश में निवेदन किया कि विचारण न्यायालय विचारण की समाप्ति के पश्चात् भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13 सपठित धारा 16 के अधीन प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए जुर्माना अधिरोपित कर सकता है । विचारण न्यायालय उस रकम या सम्पत्ति के मूल्य पर

---

[1] ए. आई. आर. 1972 ए. पी. 318.

[2] (1999) एस. सी. सी. 685 = 1989 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 3389.

[3] 2011 (2) बाम्बे सी. आर. (क्रिमिनल) 179 = 2011 (3) ए. आई. आर. बाम्बे आर. 203.

विचार कर सकता है जिसको अभियुक्त ने अभिप्राप्त किया है या सम्पत्ति के धन संबंधी स्रोतों पर विचार कर सकता है जिसको अभियुक्त संतोषप्रद तरीके से आगणित करा पाने में असमर्थ है । अत: यह आवश्यक है कि इस बात को सुनिश्चित किया जाए कि याची-सोसाइटी के बैंक खातों में पड़ा हुआ धन सुरक्षित रहे । यदि अभिग्रहण को इस प्रक्रम पर समाप्त कर दिया जाता है तो इसका अन्वेषण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा ।

12. यदि हम सोसाइटी का खाता संचालित किए जाने की अनुज्ञा प्रदान करते हैं, तो अपराध के आगमों का प्रयोग साक्ष्य में छेड़छाड़ किए जाने के प्रयोजनार्थ किया जाएगा और अभियुक्त अवैध क्रियाकलापों में अन्तर्वलित होने के प्रयोजनार्थ (सोसाइटी के खाते में जमा) रकम का प्रयोग अपने मनचाहे तरीके से कर पाने के द्वारा लाभान्वित होंगे ।

13. याची-संस्था के सदस्यों और अन्य को भारतीय दंड संहिता की धाराओं 120-ख, 420, 468 और 471 और भ्रष्टाचार उन्मूलन अधिनियम की धारा 13(2) सपठित धारा 13(1)(घ) के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए आरोपित किया गया है । अन्य बातों के साथ यह अभिकथित किया गया है कि अभियुक्त ने रक्षा सेवा अधिकारियों और महाराष्ट्र सरकार के कृत्यकारियों के साथ मिलकर याची संस्था, जिसके वे (रक्षा सेवा अधिकारी और महाराष्ट्र सरकार के कृत्यकारी) सदस्य के पक्ष में अवैध रूप से भूमि का आबंटन करने के आशय से षड्यंत्र किया था । सम्बद्ध लोक सेवकों ने अपनी शासकीय हैसियत का दुरुपयोग किया था और याची संस्था के पक्ष में अवैध रूप से भूमि आबंटन कराने के उनके उद्देश्य को अभिप्राप्त करने के प्रयोजनार्थ अभिलेखों में छलसाधन करने और फर्जी दस्तावेज गढ़ने के लिए किया और नगरपालिका प्राधिकारियों और अन्य राज्य सरकार प्राधिकारियों से अवैध तरीके से अनेक अनापत्तियां प्राप्त करने के लिए और इसके बदले में अपनी शासकीय हैसियत का दुरुपयोग किया और अपने स्वयं के लिए और अपने निकट नातेदारों के लिए बाजार मूल्य के मुकाबले अत्यधिक कम मूल्य पर फ्लैटों के बाबत सांपत्तिक अधिकार अभिप्राप्त कर लिए ।

14. केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो के अपर पुलिस अधीक्षक श्री रवीन्द्र सिंह के शपथपत्र से ऐसा प्रतीत होता है कि केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो ने अन्वेषण के दौरान मुख्य अभियुक्त के कार्यालय/आवासीय परिसरों की तलाशी ली थी । याची-संस्था के कार्यालय की भी तलाशी तारीख 30 जनवरी, 2011 को ली गई थी । आरंभिक अन्वेषण के दौरान प्रथमदृष्ट्या यह प्रतीत हुआ

कि अनेक लोक सेवकों/निजी व्यक्तियों ने याची संस्था में बेनामी नामों में फ्लैट अर्जित कर लिए हैं । 2010 की रिट याचिका संख्या 3359 में तारीख 17 मार्च, 2011 को इस न्यायालय की एक खण्ड न्यायपीठ ने निदेशित किया था कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट को संशोधित किए जाने के लिए सम्यक् रूप से कार्रवाई की जाए जिससे कि बेनामी अधिनियम के उपबंधों का अवलंब लिया जाए जिससे कि याची संस्था के प्रत्येक सदस्य का अन्वेषण किया जाए । तदनुसार, केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो ने प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में बेनामी, अधिनियम के उपबंधों को सम्मिलित किए जाने के लिए मुंबई की विशेष शपथपत्र में अभिकथित किया है कि बेनामी संव्यवहारों, जिनको संदिग्ध अभियुक्तों द्वारा आशयपूर्वक किया गया है, का सत्यापन किए जाने को दृष्टि में रखते हुए भारतीय स्टेट बैंक में सम्पोषित याची-संस्था के बैंक खातों के कार्यान्वयन को विधि की सम्यक् प्रक्रिया का पालन किए जाने के पश्चात् विभिन्न संव्यवहारों का सत्यापन किए जाने के प्रयोजनार्थ अभिगृहीत कर लिया गया था । तथ्यों के वर्णन को पूर्ण करने के प्रयोजनार्थ विद्वान् अपर महासालिसिटर श्री खम्बाटा द्वारा हमको प्रदान की गई सूचना का उल्लेख करना चाहते हैं । केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो द्वारा याची-संस्था के खातों के अलावा निम्नलिखित अभियुक्तों अर्थात् (i) श्री आर. सी. ठाकुर (ii) ब्रिगेडियर (सेवानिवृत्त) मदन मोहन वांचू, (iii) श्री कन्हैया लाल गिडवानी (iv) श्री पी. वी. देशमुख (v) श्री रामानंद तिवारी (vi) श्री सुभाष लाल और (vii) श्री जयराज काटक के खातों को भी स्थिरीकृत कर दिया है ।

15. श्री सिंह के शपथपत्र के पैरा 10, 11 और 12 को उद्धृत किया जाना आवश्यक है जिनमें केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो के दृष्टिकोण को स्पष्टत: वर्णित किया गया है और उन कारणों को बताया गया है कि खातों का अभिग्रहण क्यों किया गया था :–

> "10. यह सत्य है कि इस मामले का याची आदर्श हाउसिंग कोआपरेटिव सोसाइटी इस मामले में अभियुक्त नहीं है । फिर भी इस मामले में उपस्थित अभियुक्तों से संबंधित समस्त संव्यवहार इसी खाते से किए जा रहे हैं और इस खाते का कार्यान्वयन सोसाइटी के पदधारियों द्वारा किया जा रहा है । इसलिए, इस मामले में अभियुक्त कौन है, बेनामी संव्यवहारों और अन्य पहलुओं के विवाद्यकों के अन्वेषण के प्रयोजनार्थ इन खातों का अभिग्रहण आवश्यक समझा जाता है ।

11. अन्वेषण से यह प्रकट होता है कि अभियुक्त श्री के. एल. गिडवानी और उसके दो पुत्रों के पास आदर्श कोआपरेटिव हाउसिंग सोसाइटी में फ्लैट हैं जिसके लिए उसके प्रत्येक पुत्र ने 56 लाख रुपए (लगभग) की रकम का संदाय स्वयं के. एल. गिडवानी द्वारा किया गया है । प्रथमदृष्ट्या यह प्रकट है कि श्री गजानन एस. कोली, अमोल वी खारभारी और श्री किरन भडांगे को दर्शित किया गया है कि उनको श्री सुनील गिडवानी द्वारा 51.3 लाख रुपए का ऋण और 52.04 लाख रुपए का ऋण श्री अमित गिडवानी और मैसर्स अपेक्षा इंपेक्स प्राइवेट लिमिटेड (अभियुक्त श्री के. एल. गिडवानी से संबंधित कंपनी) द्वारा दिया गया था । श्री किरन भडांगे को देवी गिडवानी और अपेक्षा इंपेक्स प्राइवेट लिमिटेड द्वारा 52.4 लाख रुपए दिए गए थे । श्री अमोल वी. खारभारी के पास तो अपना स्थाई खाता संख्या भी नहीं है और उसने कोई आयकर विवरणी भी नहीं फाइल की है । इससे प्रथमदृष्ट्या उपदर्शित होता है कि सभी तीनों फ्लैट बेनामी हैं और श्री के. एल. गिडवानी से संबंधित हैं । इसी प्रकार के बेनामी संव्यवहार के अन्य संव्यवहार भी सुव्यक्त हैं जिनको भी बेनामी संव्यवहार अधिनियम के अधीन साबित किए जाने की आवश्यकता है ।

12. यदि हम सोसाइटी के खाते को संचालित किए जाने की अनुज्ञा प्रदान करते हैं, तो अपराध के आगमों का प्रयोग साक्ष्य में फेरफार करने के लिए किया जाएगा और याची इस रकम का प्रयोग अवैध क्रियाकलापों में संलिप्त होने के प्रयोजनार्थ अपना इच्छानुसार करेंगे ।"

16. केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो का उपरोक्त पक्षकथन याची-सोसाइटी के काउंसेल के निवेदनों पर विचार किए जाने के दौरान ध्यान में रखा जाएगा । चूंकि हम संहिता की धारा 102 से सम्बद्ध हैं, तुरंत अवलोकन के प्रयोजनार्थ उपधारा (1) को उद्धृत किया जाना आवश्यक है :–

"102. **कुछ सम्पत्ति को अभिगृहीत करने की पुलिस अधिकारी की शक्ति** – कोई पुलिस अधिकारी किसी ऐसी सम्पत्ति को अभिगृहीत कर सकता है जिसके बारे में यह अभिकथन या संदेह है कि वह चुराई हुई है अथवा जो ऐसी परिस्थितियों में पाई जाती है जिनसे किसी अपराध के किए जाने का संदेह हो ।"

17. **तपस नियोगी** (उपरोक्त) वाले मामले में उच्चतम न्यायालय इस प्रश्न पर विचार कर रहा था कि क्या किसी अपराध का अन्वेषण करने वाला पुलिस अधिकारी संहिता की धारा 102 के अधीन प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए अभियुक्त के बैंक खाते के संबंध में प्रतिषेधात्मक आदेश जारी कर सकता है । उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि अभियुक्त या उसके किसी नातेदार का बैंक खाता संहिता की धारा 102 के अर्थांतर्गत 'सम्पत्ति' है और कोई पुलिस अधिकारी अन्वेषण के अनुक्रम के दौरान उक्त खाते का अभिग्रहण कर सकता है या क्रियान्वयन को प्रतिषिद्ध कर सकता है यदि उक्त खाते में जमा आस्तियां (रकम) उस अपराध के कारित किए जाने के साथ प्रत्यक्ष संबंध रखती हैं जिनका अन्वेषण पुलिस कर रही है । उच्चतम न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि धारा 102 व्यापकतम निबंधनों के अधीन लागू होती है । उच्चतम न्यायालय द्वारा व्यक्त किए गए मत तात्विक हैं :–

> "6. धारा 102 की उपधारा (1) को स्पष्ट शब्दों में पढ़ने पर यह उपदर्शित होता है कि पुलिस अधिकारी को किसी भी ऐसी सम्पत्ति, जो कोई अपराध सृजित किए जाने का संदेह सृजित करने वाली परिस्थितियों के अंतर्गत पाई जाती है, का अभिग्रहण करने की शक्ति प्राप्त होती । विधानमण्डल ने किसी भी अधिनियम के सृजित अपराधों को सम्मिलित किए जाने के प्रयोजनार्थ कोई 'कोई सम्पत्ति' और 'कोई अपराध' का प्रयोग करके किसी भी अधिनियम के सृजित अपराधों को सम्मिलित किए जाने के प्रयोजनार्थ उपबंधों के लागू होने को अत्यधिक व्यापक बना दिया है । किंतु धारा 102(1) के लागू होने के लिए दो पूर्व शर्तें यह हैं कि यह "सम्पत्ति" होनी चाहिए और द्वितीयत:, उक्त सम्पत्ति के संबंध में किसी अपराध के कारित किए जाने के बाबत संदेह होना चहिए ।"

18. इसलिए उच्चतम न्यायालय ने टिप्पणी की है कि संहिता की धारा 102 की उपधारा (1) में शब्द 'किसी सम्पत्ति' और 'किसी अपराध' का प्रयोग उसके व्यापक उपयोजन को उपदर्शित करता है । धारा 102 के अधीन अभिग्रहण किसी ऐसी सम्पत्ति के संबंध में प्रभावी किया जा सकता है जिसके बाबत यह अभिकथित किया जा सकता है या जिसके बाबत यह संदेह किया जा सकता है कि वह सम्पत्ति चुराई हुई है या ऐसी सम्पत्ति के संबंध में प्रभावी किया जा सकता है जो ऐसी परिस्थितियों के अंतर्गत पाई जाती है जो कोई अपराध कारित किए जाने के बाबत संदेह सृजित करती

है । जैसाकि पी. रामनाथ अय्यर की एडवांस्ड ला लेक्सिकोन में खण्ड 4(2005) वर्णित है और जिसकी ओर विद्वान् अपर महासालिसिटर श्री खम्बाटा ने संकेत किया है, 'संदेह' शब्द को किसी ऐसी बात की विद्यमानता, जिसका कोई सबूत न हो या उसका अत्यधिक दुर्बल साक्ष्य हो या जिसका कोई भी साक्ष्य न हो, की कल्पना के रूप में परिभाषित किया गया है । इस संबंध में **के. मुनिवेलुत्र** (उपरोक्त) वाले मामले में आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय की खण्ड न्यायपीठ द्वारा दिए गए निर्णय का अवलंब लिया गया । उस मामले में आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय ने अभिकथित किया है कि किसी तथ्य के संबंध में शब्द 'संदेह' किसी बात या अभिकथित तथ्य की विद्यमानता पर विश्वास किए जाने के लिए प्रथम और आरंभिक प्रक्रम है । तत्पश्चात् अन्वेषण अभिकरण द्वारा सूचना एकत्रित की जाती है और सूचना के आधार पर कि वह बात या दशाएं या तथ्य विद्यमान हैं, अंतिम निष्कर्ष निकाला जाता है ।

19. स्वीकृतत:, बेनामी अधिनियम के उपबंध इस मामले में लागू किए गए हैं । बेनामी अधिनियम की धारा 3 बेनामी संव्यवहारों को प्रतिषिद्ध करती है । धारा 5 उपबंधित करती है कि बेनामी संपत्ति के रूप में अर्जित किए जाने योग्य संपत्ति होती है और यदि इस प्रकार की किसी सम्पत्ति का अर्जन किया जाता है तो कोई धन संदेह नहीं होगा । धारा 2(ग) सम्पत्ति को निम्नलिखित शब्दों में परिभाषित करती है :–

> "2(ग) सम्पत्ति से आशय किसी भी प्रकार की सम्पत्ति से है चाहे वह चल सम्पत्ति हो या अचल, मूर्त हो या अमूर्त और इसमें उस सम्पत्ति के प्रत्येक अधिकार और हित भी सम्मिलित होते हैं ।"

यह परिभाषा व्यापक आयाम की है ।

20. हमने केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो के पुलिस अधीक्षक श्री सिंह के शपथपत्र के सुसंगत भागों को पहले ही उद्धृत कर दिया है । उन्होंने अभिकथित किया है कि अन्वेषण से प्रथमदृष्ट्या यह प्रकट हुआ है कि विभिन्न लोक सेवकों/निजी व्यक्तियों ने याची-सोसाइटी में बेनामी नामों फ्लैट अर्जित किए हैं और अभियुक्तों से संबंधित समस्त संव्यवहार उन बैंक खातों से संबंधित हैं जिनका अभिग्रहण किया गया है । आगे यह अभिकथित किया गया है कि इन खातों का क्रियान्वयन याची-सोसाइटी के पदाधिकारियों, जो अभियुक्त हैं, द्वारा किया जा रहा है और इन खातों का अभिग्रहण बेनामी संव्यवहारों के पुष्टिकरण के प्रयोजनार्थ किया गया है ।

अत:, यदि अन्वेषण अभिकरण जहां तक बेनामी संव्यवहारों का संबंध है, अन्वेषण के इस महत्वपूर्ण प्रक्रम पर याची-सोसाइटी के बैंक खातों के बारे में किसी संदेह, जो **तपस नियोगी** (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए निर्णय के प्रकाश में संहिता की धारा 102 के अर्थांतर्गत कोई सम्पत्ति है, पर विचार करता है, तो उन खातों के अभिग्रहण को त्रुटिपूर्ण (अभिग्रहण) नहीं कहा जा सकता । मामले की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए अन्वेषण अभिकरण द्वारा निकाला गया यह निष्कर्ष सही था कि उक्त बैंक खाते अपराध कारित किए जाने के बारे में संदेह उत्पन्न करने वाले थे । यह दलील कि अपराध अभिकथित रूप से 2004 के पहले कारित किया गया है और खातों में धन सदस्यों द्वारा तारीख 1 नवंबर, 2010 या उसके आस-पास की तारीख को याची-संस्था के खर्चों को पूरा करने के लिए जमा किया गया है और इसलिए अपराध का अभिगृहीत खातों में जमा रकम के साथ कोई अनौपचारिक संबंध नहीं है, को अस्वीकार कर दिया जाना चाहिए । हम इस दलील को स्वीकार कर पाने में भी असमर्थ हैं कि खातों में धन का प्रतिधारण (रोका जाना) निधियों के स्रोत के अन्वेषण के लिए या इस बात का अवधारण करने के लिए कि कोई खाता बेनामी है, आवश्यक नहीं है । यह उचित नहीं होगा कि इस प्रक्रम पर ऐसा कोई निष्कर्ष निकाला जाए । अन्वेषण अभिकरण को उसके द्वारा किए जाने वाले अन्वेषण के अनुक्रम को विनिर्धारित करने की स्वतंत्रता प्रदान की जानी चाहिए । हम उसके इस अधिकार क्षेत्र में रुकावट नहीं बन सकते ।

21. इस बात को भी ध्यान में रखा जाना आवश्यक है कि अभियुक्तों को भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13(2) सपठित धारा 13(1)(घ) के अधीन आरोपित किया गया है । भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 16 उन मामलों के बारे में अभिकथित करती है जिन पर न्यायालय को जुर्माना निर्धारित किए जाने के प्रयोजनार्थ विचार करना है । धारा 16 इस प्रकार है :–

> "16. **जुर्माना नियत करने के लिए विचार में लिए जाने वाले विषय** – जहां जुर्माने का दंडादेश धारा 13 की उपधारा (2) या धारा 14 के अधीन अधिरोपित किया जाता है वहां न्यायालय जुर्माने की रकम नियत करने में ऐसी संपत्ति, यदि कोई है, की रकम या मूल्य को विचार में लेगा जिसे अभियुक्त ने अपराध करके अभिप्राप्त किया है या जहां दोषसिद्धि धारा 13 की उपधारा (1) के खंड (क) में निर्दिष्ट अपराध के लिए है और उसे खंड जिसके लिए अभियुक्त

व्यक्ति समाधानप्रद रूप से हिसाब देने में असमर्थ है, में निर्दिष्ट अधीन संसाधन या संपत्ति है ।"

22. भ्रष्टाचार उन्मूलन अधिनियम की धारा 16 उपदर्शित करती है कि यदि न्यायालय विचारण की समाप्ति पर जुर्माना अधिरोपित करना चाहता है, तो उसको रकम या सम्पत्ति के मूल्य पर विचार करना चाहिए जिसको अभियुक्त ने अपराध कारित करने के द्वारा अभिप्राप्त कर लिया था । **तपस नियोगी** (उपरोक्त) वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने मत व्यक्त किया कि न्यायालयों द्वारा विचारण की समाप्ति में लगाया गया समय अन्य कारक है जिसको संहिता की धारा 102 के उपबंधों और उसमें उपबंधित उद्देश्य का निर्वचन करते हुए ध्यान में रखा जाना चाहिए चूंकि यदि अभियुक्त के बैंक खाते के अभिग्रहण का कोई आदेश नहीं हो सकता तो उस बैंक खाते में जमा सम्पूर्ण राशि जो अंतत: विचारण में अवैध परितोषण का परिणाम होने के कारण स्थिरीकृत है, को अभियुक्त द्वारा आहरित किया जा सकता था और ऐसी स्थिति में न्यायालय उस धन, जिसका उस अपराध, जिसको अभियुक्त द्वारा लोक सेवक की हैसियत में कारित किया गया था, को वापस प्राप्त कर पाने में शक्तिहीन हो जाएगी । उच्चतम न्यायालय ने मताभिव्यक्ति की कि भ्रष्टाचार उन्मूलन अधिनियम में धारा 13 की उपधारा (2) के अधीन जुर्माना के अधिरोपण के मामले में विधानमण्डलों ने यह उपबंधित किया है कि न्यायालय जुर्माना की रकम निर्धारित करने के मामले में उस रकम या उस सम्पत्ति के मूल्य पर विचार करेगा जिसको अभियुक्त ने अपराध कारित करने के द्वारा अभिप्राप्त किया है । उच्चतम न्यायालय ने मत व्यक्त किया कि इसीलिए संहिता की धारा 102 के अधीन अभिग्रहण की शक्ति के संबंध में उसके द्वारा दिया गया निर्वचन भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 16 में उपबंधित विधानमण्डल के आशय के अनुसार था ।

23. हमारे विचार में उच्चतम न्यायालय की मताभिव्यक्ति के प्रकाश में मामले का परीक्षण किए जाने पर याची-सोसाइटी के बैंक खातों का अभिग्रहण करने की अन्वेषण अभिग्रहण की कार्रवाई न्यायसंगत है । उक्त खाते में जमा रकम को बिखर जाने या समाप्त किए जाने की अनुज्ञा प्रदान नहीं की जा सकती चूंकि यदि विचारण न्यायालय जुर्माना का दंडादेश अधिरोपित करने का निर्णय करता है तो उक्त रकम का विचारण की समाप्ति पर अत्यधिक महत्व होगा । याची-सोसाइटी के काउंसेल द्वारा दी गई दलील का उत्तर यह है कि बैंक खातों में रकम का प्रतिधारण आवश्यक

नहीं होता । इस दलील में **विनोस कुमार वेल्लुवर** (उपरोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ द्वारा दिए गए निर्णय को निर्दिष्ट करना भी आवश्यक है । इस मामले में पूर्ण न्यायपीठ ने उस सम्पत्ति को परिरक्षित किए जाने की आवश्यकता पर विशेष बल दिया जिसके अपराध कारित किए जाने में प्रयोग किए जाने का संदेह है और जिसके बिखर जाने, समाप्त किए जाने या नष्ट हो जाने की आशंका है । यह निर्णय याची-सोसाइटी के काउंसेल द्वारा दी गई इस दलील का उत्तर भी है कि याची-सोसाइटी को उसके खातों का अभिग्रहण किए जाने के पूर्व कोई सूचना नहीं दी गई थी । पूर्ण न्यायपीठ ने स्पष्ट किया है कि इस प्रकार की किसी सूचना की आवश्यकता नहीं है । हम पूर्ण न्यायपीठ की सुसंगत मताभिव्यक्ति को उद्धृत करते हैं :–

> "18. अत:, यह स्पष्ट है कि किसी अन्य सम्पत्ति की भांति बैंक खाते को भी स्थिरीकृत किया जा सकता है । खाते को किया जाना ऐसा कार्य है जो अन्वेषण से संबंधित होता है । किसी अन्य कार्य की भांति यह कार्य भी साक्ष्य को परिरक्षित किए जाने के प्रयोजनार्थ गोपनीयता की सराहना करता है और उसको उचित ठहराता है । यह किसी व्यक्ति को उसके स्वातंत्र्य या सम्पत्ति से वंचित नहीं करता । यह बिल्कुल अस्थाई रूप से किया जाता है अर्थात् मामले के गुणागुण के आधार निर्णीत किए जाने तक यह अन्वेषण अधिकारी को किसी ऐसी सम्पत्ति जिसके किसी अपराध में किसी भी तरीके में प्रयोग किए जाने की शक्ति का संदेह है, को परिरक्षित बनाए रखने को प्रदान करता है । अत:, सम्पत्ति को विकीर्ण होने, क्षीण होने या उसका विनाश होने से संरक्षित किया जाना अपेक्षित होता है । परिणामस्वरूप, कोई अभियुक्त, यहां तक कि कोई तृतीय पक्ष भी उक्त कार्रवाई के बारे में सूचना प्रदान किए जाने के बहाने के अधीन किसी उत्कृष्ट उपबंध का सहारा लेकर विधि जो निर्दोष को संरक्षण प्रदान करने के लिए और उसकी सम्पत्ति को परिरक्षित करने के लिए आशयित है, अनदेखा नहीं कर सकता । यह बेतुका सुझाव है कि किसी व्यक्ति को बताया जाए कि उसके बैंक खाते जिसका प्रयोग उसी के द्वारा या किसी अन्य व्यक्ति द्वारा कोई अपराध कारित किए जाने के प्रयोजनार्थ किया गया है, को स्थिरीकृत किया जा रहा है जिससे कि वह उस खाते को बंद कर सके या उसके आगमों को किसी अन्य खाते में अंतरित कर सके या उसका आहरण कर ले ।"

याची-सोसाइटी द्वारा इस दलील पर जोर देने के लिए कि याची-सोसाइटी

को उसका बैंक खाता स्थिरीकृत किए जाने के पूर्व सूचना दी जानी चाहिए थी, **शशीकांत कार्निक** (उपरोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय का अवलंब लिया गया जिसको एतद्द्वारा नकारा जाता है ।

24. श्री थोरेट की इस दलील में भी कोई तत्व नहीं है कि चूंकि याची-सोसाइटी अभियुक्त नहीं है, उसके बैंक खातों का अभिग्रहण नहीं किया जा सकता । हम **तपस नियोगी** (उपरोक्त) वाले मामले को पहले ही निर्दिष्ट कर चुके हैं । इसमें कोई संदेह नहीं है कि संहिता की धारा 102 का आयाम अत्यधिक व्यापक है । यह धारा पुलिस अधिकारियों को न केवल अभियुक्तों, बल्कि उनके नातेदारों या किसी अन्य व्यक्ति उक्त सम्पत्ति से सम्बद्ध होने की संभाव्यता हो, की सम्पत्तियों का अभिग्रहण किए जाने के लिए सशक्त करती है । इस धारा की मात्र यह अपेक्षा है कि वह सम्पत्ति ऐसी परिस्थितियों के अधीन पाई जानी चाहिए जो अपराध करने वाली हों । उच्चतम न्यायालय ने **तपस नियोगी** (उपरोक्त) वाले मामले में मत व्यक्त किया है कि अभियुक्त या उसके किसी नातेदार का बैंक खाता संहिता की धारा 102 के अर्थांतर्गत 'संपत्ति' है । यह निर्णयज विधि विधिक परितोषण/लाभ और बेनामी संव्यवहार अंतर्वलित करने वाले मामले में अधिक प्रभावशाली ढंग से लागू होगी । यह तथ्य अत्यधिक सुसंगत है कि अभियुक्त याची-सोसाइटी के सदस्य हैं । यद्यपि याची-सोसाइटी को अभियुक्त के रूप में उद्धृत नहीं किया गया है, फिर भी हम इन परिस्थितियों में याची-सोसाइटी के बैंक खातों का अभिग्रहण किए जाने में कुछ भी त्रुटिपूर्ण नहीं पाते । हम संहिता की धारा 102 अधिनियमित किए जाने और उसकी स्पष्ट भाषा को प्रभावी किए जाने के पीछे विधानमण्डल के आशय पर विचारोपरांत उसके निर्बंधित अर्थ निकाल पाने में असमर्थ हैं । यदि इस धारा के अधीन कार्रवाई की जाती है तो यह स्पष्ट हो जाता है कि सम्पत्ति के अन्वेषण के दौरान संरक्षित किए जाने की आवश्यकता है । इसके व्यापक आयाम को इस आधार पर कि कानूनी देयों का या अधिवक्ताओं के शुल्क का संदाय किया जाना है, निर्बंधित नहीं किया जा सकता । यहां पर यह अभिकथित किया जाना आवश्यक है कि चूंकि अनेक आधारों में से एक आधार जिस पर याची-सोसाइटी ने खातों को अस्थिरीकृत किए जाने की प्रार्थना की है, कानूनी देयों के संदाय का है, हमने केन्द्रीय जांच ब्यूरो से यह अभिकथित करने की अपेक्षा की है कि क्या कानूनी देयों की रकमों का संदाय स्थिरीकृत खातों से किया जा सकता है । विद्वान् अपर महासालिसिटर श्री खम्बाटा ने निवेदन किया कि केन्द्रीय जांच ब्यूरो के अधिकारों और दलीलों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना

कानूनी देयों निर्मुक्त किए जा सकते हैं परंतु यह तब जबकि (कानूनी देयों) के विवरण प्रस्तुत किए जाएं । फिर भी याची-सोसाइटी ने इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया ।

25. हम इस दलील में भी कोई तत्व नहीं पाते कि केंद्रीय जांच ब्यूरो के आक्षेपित आदेश के कारण याची-सोसाइटी के हितों की रक्षा करने के प्रयोजनार्थ उनके विधिक प्रतिनिधित्व पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है जो संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन उनको प्रदत्त मूल अधिकार का भाग है । यह सत्य है कि उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि विधिक सेवाएं प्राप्त करने का अधिकार मूल अधिकार है । हम **हुसैनआरा खातून** (उपरोक्त) वाले मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा पारित निर्णय के सुसंगत पैरा को उद्धृत करते हैं :–

> "यह अनुच्छेद इस बात पर भी बल देता है कि नि:शुल्क विधिक सेवा युक्तिसंगत निष्पक्ष और उचित प्रक्रिया का अन्य संक्राम्य न किए जाने योग्य तत्व है क्योंकि इसके बिना आर्थिक या अन्य नि:शक्तताओं से ग्रसित कोई व्यक्ति न्याय प्राप्त करने के अवसर से वंचित हो जाएगा । अत:, नि:शुल्क विधिक सेवा का अधिकार स्पष्टत: किसी ऐसे व्यक्ति, जो किसी अपराध का अभियुक्त है, के लिए युक्तिसंगत, निष्पक्ष और उचित प्रक्रिया का आवश्यक तत्व है और इस अधिकार को अनुच्छेद 21 की प्रत्याभूति में विवक्षित अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए । यह ऐसे प्रत्येक अभियुक्त का संवैधानिक अधिकार है, जो अनेक कारणों जैसे गरीबी, दरिद्रता या कारावास वाली स्थिति के कारण वकील नियुक्त कर पाने और विधिक सेवा पाने में असमर्थ है, और राज्य अभियुक्त को वकील उपलब्ध कराने की आज्ञा के अंतर्गत है यदि मामले की परिस्थितियां और न्याय की आवश्यकताएं ऐसा किए जाने की अपेक्षा करती हों, परंतु निश्चित रूप से यह तब जबकि अभियुक्त ऐसा वकील उपलब्ध कराए जाने का विरोध न करता हो ....।"

26. तथापि, उच्चतम न्यायालय ने कहीं पर भी यह अभिनिर्धारित नहीं किया है कि विधिक प्रतिनिधित्व के अधिकार में किसी व्यक्ति की पसंद का काउंसेल नियुक्त किए जाने का अधिकार सम्मिलित है चाहे सम्बद्ध व्यक्ति के पास पर्याप्त निधि न हो । इस प्रकार की प्रतिपादना **एम. एच. होस्कोट** (उपरोक्त) या **मेनका गांधी** (उपरोक्त) वाले मामलों, जिनका अवलंब लिया गया है, में भी नहीं पाई जाती है । यदि याची संस्था ने किसी विधिक

सहायता के लिए दावा किया था तो उसको विधिक सहायता उपलब्ध कराई जा सकती थी । किंतु ऐसा कोई आवेदन प्रस्तुत नहीं किया गया है । बल्कि, हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि याची संस्था का प्रतिनिधित्व सदैव ही देश के किसी न किसी उत्कृष्ट काउंसेल द्वारा किया गया है । इसलिए, याची-संस्था के बैंक खातों के अभिग्रहण के कारण उसके ऊपर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ा है । किसी भी परिस्थिति में याची संस्था के बैंक खातों, जिनका अभिग्रहण अन्वेषण के प्रयोजनार्थ किया गया है, विशेष रूप से बेनामी संव्यवहारों के अन्वेषण के संबंध में, को इस सत्याभाषी आधार पर अस्थिरीकृत नहीं किया जा सकता कि याची-संस्था अपनी पसंद का वकील नियुक्त करना चाहती है । बैंक खातों में जमा रकम, जो अपराध कारित किए जाने के बाबत संदेह सृजित करती है, को समाप्त किए जाने की अनुज्ञा प्रदान नहीं की जा सकती । हम इस संबंध में प्राय: संयुक्त राष्ट्र (अमेरिका) की उच्चतम न्यायालय के दो विनिश्चयों जिनकी ओर हमारा ध्यान विद्वान् अपर महासालिसिटर श्री खम्बाटा द्वारा आकर्षित किया गया, को निर्दिष्ट करते हैं । **मोंसेंटो** (उपरोक्त) और **केपलिन** और **डिसडोल** (उपरोक्त) वाले मामलों में संयुक्त राष्ट्र (अमेरिका) की उच्चतम न्यायालय ने अभियुक्त की संपत्ति का समपहरण किए जाने के लिए उपबंध करने वाले एक कानून को दी गई संवैधानिक चुनौती को अस्वीकार कर दिया था । चुनौती इन आधारों पर दी गई थी कि अभियुक्त को उसकी पसंद का काउंसेल उपलब्ध कराए जाने के संवैधानिक अधिकार (छठा संशोधन) प्रदान किए जाने से इनकार कर दिया गया और सम्यक् प्रक्रिया खंड (पांचवां संशोधन) का अतिक्रमण हुआ है । संयुक्त राष्ट्र उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि सम्बद्ध कानून की भाषा असंदिग्ध थी और उसके द्वारा उस राशि को न तो अपवर्जित किया गया था और न उसके संबंध में कोई अपवाद सृजित किया गया था जिसका संदाय अभियुक्त अपने वकील को समपहृत सम्पत्ति में से या अभियुक्त की सम्पत्तियों के संबंध में पारित विचारण पूर्व प्रतिषेधात्मक आदेशों (जो अधिसंभाव्य कारणों के आधार पर पारित किए गए थे) के संबंध में करना चाहता था । इस मामले में आगे यह भी अभिनिर्धारित किया गया था कि अभियुक्त के संवैधानिक अधिकार को इस सीमा तक विस्तारित नहीं किया जा सकता जिसके आधार पर उसको उन आस्तियों, जिनको समपहरण किए जाने योग्य न्यायनिर्णीत किया गया है, उसके अधिवक्ता के शुल्क का संदाय किए जाने के प्रयोजनार्थ प्रदान कर दी जाए ।

27. अब हम कुछ मामलों को निर्दिष्ट करेंगे जिनकी हमने चर्चा नहीं

की है । यद्यपि याची-सोसाइटी द्वारा उनका अवलंब लिया गया है । **अनवार अहमद** (उपरोक्त) वाला मामला इस मामले में लागू नहीं होता क्योंकि उस मामले में न्यायालय इस विवाद्यक पर विचार कर रहा था कि क्या कोई पुलिस अधिकारी किसी व्यक्ति से बंध-पत्र ले सकता है जिसको सम्पत्ति पुरानी दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 523 के अधीन न्यस्त सौंपी गई है । **श्री कांची कामकोटि पीठाधिपति** (उपरोक्त) वाले मामले में मद्रास उच्च न्यायालय के एकल विद्वान् न्यायाधीश एक ऐसे मामले पर विचार कर रहे थे जिसमें मठ के बैंक खाते भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध कारित किए जाने के कारण मठ के प्रधान द्वारा अभिगृहीत कर लिए गए थे । अत: उस मामले के तथ्य वर्तमान मामले के तथ्यों से तत्वत: भिन्न हैं । तथापि, विद्वान् एकल न्यायाधीश ने मत व्यक्त किया कि यदि अभियुक्त लोक सेवक थे और अन्वेषण अवैध परितोषण के बाबत था, तो संहिता की धारा 102 के अधीन कार्रवाई किया जाना न्यायसंगत था । हमारे विचार में, **तपस नियोगी** (उपरोक्त) वाले मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा प्राधिकार पूर्वक की गई मताभिव्यक्ति को ध्यान में रखते हुए कि कोई व्यक्ति, जो अभियुक्त नहीं है, की सम्पत्ति भी संहिता की धारा 102 के अधीन अभिगृहीत की जा सकती है इस मामले में मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा व्यक्त किए गए विचार के विपरीत है, अनवधानता के कारण है ।

28. अंतत:, विश्लेषण किए जाने पर हमारा यह विचार है कि याची-सोसाइटी के बैंक खाते स्थिरीकृत किए जाने के मामले में हमारे द्वारा मध्यक्षेप नहीं किया जा सकता । हम याचिका में कोई तत्व नहीं पाते । अत: याचिका अस्वीकार की जाती है ।

याचिका खारिज की गई ।

शु.

नाटू लाल और एक अन्य

बनाम

राज्य

तारीख 16 अप्रैल, 2012

न्यायमूर्ति गोविन्द माथुर और न्यायमूर्ति आर. एस. चौहान

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 299 और 300 – आपराधिक मानव वध या हत्या – आशय – संपत्ति की नुकसानी को निवारित करने के आशय से क्षणिक आवेश में लाठी से प्रहार किए जाने से यह सिद्ध नहीं होता कि अभियुक्तों का आशय मृतक की मृत्यु कारित करना था, अतः मामला दंड संहिता की धारा 304 भाग 2 के अधीन आता है ।

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 299 और 300 – आपराधिक मानव वध या हत्या – ज्ञान – अभियुक्त द्वारा लाठी जैसे भोथर हथियार से मृतक के सिर पर एकल क्षति कारित करने से इस बात की परिकल्पना नहीं की जा सकती कि अभियुक्त को ज्ञान था कि क्षति इतनी आसन्न खतरनाक है कि मृत्यु पूरी अधिसंभाव्यता में कारित हो जाएगी या मृत्यु कारित होना संभाव्य है ।

संक्षेप में मामले के तथ्य इस प्रकार हैं कि तारीख 11 जून, 2005 को मन्ना ने पुलिस थाना सायरा पर लिखित रिपोर्ट प्रदर्श पी-9 प्रस्तुत की जिसमें उसने दावा किया था कि वे तीन भाई अर्थात् नाथू, लाछा और स्वयं है । उसने यह भी दावा किया कि वर्ष 2002 में उसका भाई लाछा ने अपने माता-पिता की हत्या की थी । इस प्रकार, उसे कारागार में भेजा गया था । कारागार से निर्मुक्त होने के पश्चात् लाछा की मानसिक स्थिति कमजोर पड़ गई थी । उसकी पत्नी उसे छोड़कर नाटा चली गई । उसने यह भी दावा किया कि तारीख 5 जून, 2005 को लगभग 9.00 बजे पूर्वाह्न जब वह अपने ससुराल से वापस आया तब उसने अपने बड़े भाई नाथू और चचेरे भाई हंसा से लाछा के बारे में पूछा । उन्होंने बताया कि शनिवार को लाछा ने झोपड़ी के छत के खपरैल को फेंकना शुरू कर दिया तथा झोपड़ी को जलाने का प्रयास किया । इसलिए, उन्होंने उसे धमकाया । परिणामस्वरूप वह भाग गया । उन्होंने उसे ढूंढने की कोशिश की किंतु

उसका पता नहीं लगा सके । उसने यह भी दावा किया कि देवा पटेल तालडाबा, हिरका और कुमा के सामने लगभग 6.00 बजे अपराह्न उसने नाथू और हंसाराम से लाछा के बारे में पुनः पूछा । उन्होंने इन व्यक्तियों को बताया कि चूंकि लाछा ने उनकी नहीं सुनी और झोपड़ी को जलाने की कोशिश कर रहा था, उन्होंने लकड़ी के छड़ (लट्ठे) से उसे मारा परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु हो गई । शव के बारे में पूछताछ से बचने के लिए उन्होंने उसे छुपा दिया । इस लिखित रिपोर्ट के आधार पर पुलिस ने दंड संहिता की धारा 302, 201/34 के अधीन अपराधों के लिए औपचारिक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट, 2005 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 59 दर्ज की और अन्वेषण कार्य प्रारंभ किया । अन्वेषण के दौरान लाछा के शव का पता चला और उसे शव परीक्षण के लिए भेज दिया गया । तत्पश्चात् पुलिस ने दोनों अभियुक्त-अपीलार्थियों नाथू और हंसाराम के विरुद्ध आरोप पत्र फाइल किया । अभियोजन पक्ष ने अपने पक्षकथन के समर्थन में अठारह साक्षियों की परीक्षा की तथा बत्तीस दस्तावेज पेश किए । तथापि, प्रतिरक्षा पक्ष ने न तो किसी साक्षी की परीक्षा की और न कोई दस्तावेज पेश किया । मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य का परिशीलन करने के पश्चात् विद्वान् न्यायाधीश ने तारीख 19 अप्रैल, 2006 को निर्णय पारित करके दोनों अपीलार्थियों को दोषसिद्ध करके दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन अपराधों के लिए आजीवन कारावास और 2000/- रुपए जुर्माने का दंड अधिरोपित किया गया और जुर्माने के संदाय में व्यतिक्रम करने पर छह मास का साधारण कारावास भोगने का दंडादेश दिया गया । दंड संहिता की धारा 201 के अधीन अपराध के लिए उन्हें पांच वर्ष का साधारण कारावास और 2000/- रुपए के जुर्माने से अधिरोपित किया गया और आगे यह भी निदेश दिया गया कि जुर्माने के संदाय में व्यतिक्रम करने पर छह मास का साधारण कारावास भोगने का भी निदेश दिया गया । इसलिए, दोनों अपीलार्थियों द्वारा इस न्यायालय के समक्ष कारागार अपील फाइल की गई है । अपील भागतः मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – इस न्यायालय के समक्ष प्रथम प्रश्न उद्भूत हुआ है कि क्या अपीलार्थियों का लाछा की मृत्यु कारित किए जाने का आशय था ? मन्ना के अनुसार अपीलार्थियों ने शिकायतकर्ता से यह कहा था कि लाछा छप्पर के टाइल्स फेंके थे और झोपड़ी को जलाने की कोशिश की । इसलिए, उस समय झोपड़ी को नुकसान पहुंचाने से उसे रोकने के लिए उन्होंने उसके सिर के ऊपर लाठी घुमाई थी । सुस्पष्टतया, उसकी मृत्यु कारित किए जाने का कोई आशय नहीं था । संपत्ति को नुकसान पहुंचाने

से उसे रोकने का आशय था. इस प्रकार, उसकी मृत्यु कारित करने के आशय को सुरक्षित रूप से नियम विरुद्ध घोषित किया जा सकता है । इस न्यायालय के समक्ष दूसरा प्रश्न यह है कि क्या उन्हें इस बात की जानकारी हो सकी कि क्षति इतनी आसन्न संकट थी कि इससे सभी तरह संभवतया मृत्यु हो जाएगी या क्या उन्हें इस बात की जानकारी थी कि इससे संभवतया मृत्यु कारित हो जाए । स्वीकृततः, अभियोजन पक्ष के अनुसार लाछा को अपने सिर के पीछे की ओर एकत्र क्षति पहुंची थी जो लाठी की भांति कुंद आयुध भी था । लाठी से एकल क्षति कारित की गई थी । लाठी से एक क्षति कारित की गई जिसके परिमामस्वरूप मात्र रेखीय अस्थिभंग हुआ था, "आसन्न संकट" के रूप में नहीं माना जा सकता है कि मृत्यु कारित किए जाने की पूरी संभावना होगी । तथापि, यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि कोई व्यक्ति जो सिर के भांति महत्वपूर्ण भाग पर लाठी से हमला करता है तब निश्चित तौर पर यह जानकारी होगी कि उसकी "मृत्यु कारित होना संभव" है । इसलिए, यह कारण दंड संहिता की धारा 299 के अंतर्गत आएगा और न कि दंड संहिता की धारा 300 के अधीन । चूंकि यह मामला एकल क्षति का है क्योंकि किसी व्यक्ति ने दंड संहिता की धारा 300 में उल्लिखित अपवादों में से किसी पर अभिवाक् नहीं किया है, इसलिए यह मामला दंड संहिता की धारा 304 भाग 2 के अंतर्गत आएगा । (पैरा 11, 12 और 13)

अवलंबित निर्णय

		पैरा
[1977]	ए. आई. आर. 1977 एस. सी. 45 : **आंध्र प्रदेश राज्य** बनाम **रेयावारापु पुन्नाममा और एक अन्य** ।	9

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2006 की डी. बी. दांडिक कारागार अपील सं. 746.

विद्वान् अपर जिला और सेशन न्यायाधीश (त्वरित निपटान न्यायालय) सं. 1, उदयपुर द्वारा पारित तारीख 19 अप्रैल, 2006 के निर्णय के विरुद्ध फाइल की गई कारागार अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री के. आर. भाटी

राज्य की ओर से श्री के. आर. बिश्नोई, लोक अभियोजक

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति आर. एस. चौहान ने दिया ।

न्या. चौहान – अपीलार्थी नाटू लाल और हंसाराम ने अपर जिला और सेशन न्यायाधीश (त्वरित निपटान न्यायालय) सं. 1, उदयपुर द्वारा तारीख 19 अप्रैल, 2006 को पारित किए गए निर्णय को चुनौती दी है जिसके द्वारा उन्हें दंड संहिता की धारा 302/34 और 201 के अधीन अपराधों से दोषसिद्ध किया गया था ।

2. मामले के तथ्य संक्षेप में इस प्रकार हैं कि तारीख 11 जून, 2005 को मन्ना (अभि. सा. 3) ने पुलिस थाना सायरा पर लिखित रिपोर्ट प्रदर्श पी-9 प्रस्तुत की जिसमें उसने दावा किया था कि वे तीन भाई अर्थात् नाथू, लाछा और स्वयं है । उसने यह भी दावा किया कि वर्ष 2002 में उसका भाई लाछा ने अपने माता-पिता की हत्या की थी । इस प्रकार, उसे कारागार में भेजा गया था । कारागार से निर्मुक्त होने के पश्चात् लाछा की मानसिक स्थिति कमजोर पड़ गई थी । उसकी पत्नी उसे छोड़कर नाटा चली गई । उसने यह भी दावा किया कि तारीख 5 जून, 2005 को लगभग 9.00 बजे पूर्वाह्न जब वह अपने ससुराल से वापस आया तब उसने अपने बड़े भाई नाथू और चचेरे भाई हंसा से लाछा के बारे में पूछा । उन्होंने बताया कि शनिवार को लाछा ने झोपड़ी की छत के खपरैल को फेंकना शुरू कर दिया तथा झोपड़ी को जलाने का प्रयास किया । इसलिए, उन्होंने उसे धमकाया । परिणामस्वरूप वह भाग गया । उन्होंने उसे ढूंढने की कोशिश की किंतु उसका पता नहीं लगा सके । उसने यह भी दावा किया कि देवा पटेल तालडाबा, हिरका और कुमा के सामने लगभग 6.00 बजे अपराह्न उसने नाथू और हंसाराम से लाछा के बारे में पुनः पूछा । उन्होंने इन व्यक्तियों को बताया कि चूंकि लाछा ने उनकी नहीं सुनी और झोपड़ी को जलाने की कोशिश कर रहा था, उन्होंने लकड़ी के छड़ (लट्ठे) से उसे मारा परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु हो गई शव के बारे में पूछताछ से बचने के लिए उन्होंने उसे छुपा दिया । इस लिखित रिपोर्ट के आधार पर पुलिस ने दंड संहिता की धारा 302, 201/34 के अधीन अपराधों के लिए औपचारिक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट 2005 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 59 दर्ज की और अन्वेषण कार्य प्रारंभ किया । अन्वेषण के दौरान लाछा के शव का पता चला और उसे शव परीक्षण के लिए भेज दिया गया । तत्पश्चात् पुलिस ने दोनों अभियुक्त-अपीलार्थियों नाथू और हंसाराम के विरुद्ध आरोप पत्र फाइल किया ।

3. अभियोजन पक्ष ने अपने पक्षकथन के समर्थन में अठारह साक्षियों

की परीक्षा की तथा बत्तीस दस्तावेज पेश किए । तथापि, प्रतिरक्षा पक्ष ने न तो किसी साक्षी की परीक्षा की और न कोई दस्तावेज पेश किया । मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य का परिशीलन करने के पश्चात् विद्वान् न्यायाधीश ने तारीख 19 अप्रैल, 2006 को निर्णय पारित करके दोनों अपीलार्थियों को दोषसिद्ध करके दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन अपराधों के लिए आजीवन कारावास और 2000/- रुपए जुर्माने का दंड अधिरोपित किया गया और जुर्माने के संदाय में व्यतिक्रम करने पर छह मास का साधारण कारावास भोगने का दंडादेश दिया गया । दंड संहिता की धारा 201 के अधीन अपराध के लिए उन्हें पांच वर्ष का साधारण कारावास और 2000/- रुपए के जुर्माने से अधिरोपित किया गया और आगे यह भी निदेश दिया गया कि जुर्माने के संदाय में व्यतिक्रम करने पर छह मास का साधारण कारावास भोगने का भी निदेश दिया गया । इसलिए, दोनों अपीलार्थियों द्वारा इस न्यायालय के समक्ष कारागार अपील फाइल की गई है ।

4. अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल श्री कालुराम भाटी ने इस न्यायालय के समक्ष पुरजोर निम्नलिखित दलीलें दी हैं – प्रथमतः, मन्ना (अभि. सा. 3) के अनुसार लाछा मानसिक रूप से तनावग्रस्त था । उसने खपरैल टाइल्स फेंकने की कोशिश की और झोपड़ी जलाने की कोशिश की । इसलिए, अपीलार्थियों ने मध्यक्षेप किया था । उनके द्वारा मध्यक्षेप करने के दौरान उनके बारे में लाछा पर हमला किया जाना अभिकथित है । शवपरीक्षण रिपोर्ट (प्रदर्श पी-16) के अनुसार लाछा के सिर के पीछे की ओर एक क्षति कारित हुई थी जो पश्चकपाल अस्थि के रेखीय अस्थिभंग के परिणामस्वरूप हुई थी । इस प्रकार, यह एकल क्षति का मामला है । दूसरा, यद्यपि अभियोजन का पक्षकथन सही था कि उनके द्वारा क्षति कारित की गई थी, उक्त क्षति षड्यंत्र करने के पश्चात् पूर्व निर्धारित करके कारित नहीं की गई थी । इस प्रकार, यह क्षति मृत्यु कारित करने के आशय से कारित नहीं की गई थी । उनके द्वारा केवल जानकारी होना माना जा सकता है कि ऐसी क्षति से संभवतः मृत्यु कारित होने की संभावना है । इसलिए, यह मामला दंड संहिता की धारा 302 की परिधि के अंतर्गत नहीं आता है । यह मामला दंड संहिता की धारा 304 भाग II की परिधि के अंतर्गत आता है । अंत में, अपीलार्थी पहले ही सात वर्ष का दंडादेश भोग चुका है । इसलिए, उनका दंडादेश भोगे गए कारावास से कम किया जाना चाहिए ।

5. दूसरी ओर विद्वान् लोक अभियोजक श्री के. आर. बिश्नोई ने यह

दलील दी है कि चिकित्सा साक्ष्य के अनुसार, क्षति कुंद आयुध से ऐसा बल प्रयोग करके कारित की गई थी जिससे शरीर के नाजुक भाग पश्चकपाल अस्थि का अस्थिभंग हो जाए । इसलिए, महत्वपूर्ण रूप से हत्या करने का आशय रहा है । दूसरा, अपीलार्थियों ने अपने अपराध को छुपाने के लिए शव को दफना दिया था जिसे दो सप्ताह के पश्चात् बाहर निकाला गया था । इस प्रकार, विद्वान् न्यायाधीश ने दंड संहिता की धारा 302 के साथ पठित धारा 34 तथा दंड संहिता की धारा 201 के अधीन अपराध के लिए अपीलार्थियों को दोषसिद्ध करके ठीक ही किया है । इसलिए, विद्वान् लोक अभियोजक ने आक्षेपित निर्णय का समर्थन किया है ।

6. पक्षकारों के विद्वान् काउंसेल को सुना, अभिलेख की परीक्षा की तथा आक्षेपित निर्णय का परिशीलन किया ।

7. इस न्यायालय के समक्ष मुख्य प्रश्न यह है कि क्या यह मामला दंड संहिता की धारा 300 की परिधि के अंतर्गत आता है और दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दंडनीय है या क्या यह दंड संहिता की धारा 299 की परिधि के अंतर्गत आता है और दंड संहिता की धारा 304 भाग 1 या 2 के अधीन दंडनीय है ?

8. इस विवाद्यक का न्यायनिर्णय करने के लिए दंड संहिता की धारा 299 तथा धारा 300 के बीच विभेद करना आवश्यक है ।

दंड संहिता की धारा 299 :–

> "**299. आपराधिक मानव वध** – जो कोई मृत्यु कारित करने के आशय से, या ऐसी शारीरिक क्षति कारित करने के आशय से जिससे मृत्यु कारित हो जाना संभाव्य हो, या यह ज्ञान रखते हुए कि यह संभाव्य है कि वह उस कार्य से मृत्यु कारित कर दे, कोई कार्य करके मृत्यु कारित कर देता है, वह आपराधिक मानव वध का अपराध करता है ।
>
> **300. हत्या** – एतस्मिन् पश्चात् अपवादित दशाओं को छोड़कर आपराधिक मानव वध हत्या है, यदि वह कार्य, जिसके द्वारा मृत्यु कारित की गई हो, मृत्यु कारित करने के आशय से किया गया हो, अथवा
>
> **दूसरा** – यदि वह ऐसी शारीरिक क्षति कारित करने के आशय से किया गया हो जिससे अपराधी जानता हो कि उस व्यक्ति को मृत्यु कारित करना संभाव्य है जिसको वह अपहानि कारित की गई

है, अथवा

तीसरा – यदि वह किसी व्यक्ति को शारीरिक क्षति कारित करने के आशय से किया गया हो और वह शारीरिक क्षति, जिसके कारित करने का आशय हो, प्रकृति के मामूली अनुक्रम में मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त हो, अथवा

चौथा – यदि कार्य करने वाला व्यक्ति यह जानता हो कि वह कार्य इतना आसन्न संकट है कि पूरी अधिसंभाव्यता है कि वह मृत्यु कारित कर ही देगा या ऐसी शारीरिक क्षति कारित कर ही देगा जिससे मृत्यु कारित होना संभाव्य है और वह मृत्यु कारित करने या पूर्वोक्त रूप की क्षति कारित करने की जोखिम उठाने के लिए किसी प्रतिहेतु के बिना ऐसा कार्य करें ।"

9. "हत्या" और हत्या की कोटि में न आने वाला आपराधिक मानव वध अब तक अनिर्णीत नहीं रहा है । **आंध्र प्रदेश राज्य** बनाम **रेयावारापु पुन्नाममा और एक अन्य**[1] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने दोनों उपबंधों का आलोचनात्मक विश्लेषण किया है और दोनों के बीच निम्नलिखित विभेद का वर्णन किया गया है :–

"12. दंड संहिता की स्कीम में 'आपराधिक मानव वध' एक मूल है और 'हत्या' उसकी शाखा सभी 'हत्या' एक आपराधिक मानव वध है किंतु सभी आपराधिक मानव वध हत्या नहीं है । सामान्यतया यह बोला जाता है, आपराधिक मानव वध 'हत्या' बोला जाता है, आपराधिक मानव वध को 'हत्या' का विशेष लक्षण है, हत्या की कोटि में न आने वाला आपराधिक मानव वध है । दंड नियत करने के प्रयोजन के लिए इस अविशिष्ट अपराध की गुरुता का अनुपात है, संहिता में व्यवहारिक रूप से आपराधिक मानव वध की तीन डिग्रियों को मान्यता दी गई है, प्रथम जिसे 'आपराधिक मानव वध प्रथम डिग्री' के रूप में पुकारा जा सकता है । यह आपराधिक मानव वध का गंभीर रूप है जिसे हत्या के रूप में धारा 300 में परिभाषित किया गया है । दूसरा, द्वितीय डिग्री आपराधिक मानव वध की शब्दावली में हो सकता है । यह धारा 304 के प्रथम भाग के अधीन दंडनीय है । तब, यह तीसरी डिग्री का आपराधिक मानव वध है । यह निम्नतर प्रकार का आपराधिक मान वध है और इसके लिए तीन डिग्री के लिए

[1] ए. आई. आर. 1977 एस. सी. 45.

उपबंधित दंडों में से कम दंड उपबंधित है । इस डिग्री का आपराधिक मानव वध धारा 304 के द्वितीय भाग के अधीन दंडनीय है ।

13. 'हत्या' और हत्या की कोटि में नहीं आने वाला आपराधिक मानव वध के बीच सैद्धांतिक विभेद एक शताब्दी से भी अधिक समय से न्यायालयों में विवादास्पद है । यदि न्यायालय सही क्षेत्र को अनदेखा करते हैं, तो भ्रम की स्थिति पैदा होती है और इन धाराओं में विधानमंडल द्वारा प्रयुक्त निबंधनों का अर्थ कार्यवृत्त का सार वापस लिए जाने के लिए अनुज्ञात करता है । निर्वचन पर दृष्टिकोण व्यक्त करना सुरक्षित रास्ता है और इन उपबधों को लागू करने के लिए धारा 299 और 300 के विभिन्न खंडों में प्रयुक्त केन्द्र बिंदु और मूल सिद्धांत को रखा जाना प्रतीत होता है । धारा 299 व धारा 300 के दो अपराधों के बीच विभेद का मूल्यांकन करने के लिए निम्नलिखित तुलनात्मक सारणी सहायक होगी –

धारा 299	धारा 300
कोई व्यक्ति आपराधिक मानव वध करता है यदि ऐसा कार्य जिसके द्वारा मृत्यु कारित हो जाती है ।	कतिपय अपवादों के अध्यधीन आपराधिक मानव वध हत्या है यदि ऐसा कार्य जिसके द्वारा मृत्यु कारित हो जाती है ।
आशय	
(क) मृत्यु कारित करने के आशय से ; या	(1) मृत्यु कारित करने के आशय से ; या
(ख) ऐसी शारीरिक क्षति कारित करने के आशय से जिससे मृत्यु कारित हो जाना संभाव्य हो या ;	(2) ऐसी शारीरिक क्षति कारित करने के आशय से जिसे अपराधी जानता हो कि उस व्यक्ति की मृत्यु कारित करना संभाव्य है जिसको वह अपहानि कारित की गई, अथवा (3) किसी व्यक्ति को शारीरिक क्षति कारित करने के आशय से और वह शारीरिक

	क्षति जिसके कारित करने का आशय हो, प्रकृति के मामूली अनुक्रम में मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त हो, अथवा
जानकारी (ज्ञान)	
(ग) यह ज्ञान रखते हुए कि उस कार्य से मृत्यु किया जाना संभव हो ।	(4) कार्य करने वाला व्यक्ति यह जानता हो कि वह कार्य इतना आसन्न संकट है कि सभी अधिसंभाव्यता है कि वह मृत्यु कारित कर देगा या ऐसी शारीरिक क्षति कारित कर देगा जिससे मृत्यु कारित होना संभाव्य है और वह मृत्यु कारित करने का पूर्वोक्त रूप की क्षति कारित करने का जोखिम उठाने के लिए किसी प्रतिहेतु के बिना ऐसा कार्य करें जैसाकि ऊपर उल्लेख किया गया है ।

14. धारा 299 का खंड (ख), धारा 300 के खंड (2) और (3) के समरूप है । खंड (2) के अधीन अधिकथित आपराधिक मनःस्थिति के विशिष्ट लक्षण जानकारी में हो जो विशिष्ट आहत के विशेष हालत या स्वास्थ्य की दशा के बारे में अपराधी द्वारा जानकारी में रखा गया हो कि उसे साशय क्षति पहुंचाना संभवतया घातक हो जाए, ऐसा होते हुए भी यह तथ्य कि ऐसी क्षति प्रकृति के साधारण अनुक्रम में किसी व्यक्ति के सामान्य स्वास्थ्य या दशा में मृत्यु कारित किया जाना पर्याप्त नहीं होगा । ध्यान देने योग्य है कि 'मृत्यु कारित करने का आशय खंड (2) की अध्यपेक्षा में आवश्यक नहीं है । शारीरिक क्षति कारित करने का केवल आशय अपराधी की जानकारी या ऐसी क्षति से संभावना' कि विशिष्ट आहत की मृत्यु कारित करना इस खंड की परिधि के भीतर हत्या करने के लिए पर्याप्त हो । खंड (2) के इस पहलू को धारा 300 के परिशिष्ट के दृष्टांत (ख) द्वारा प्रकट किया गया है ।

15. धारा 299 के खंड (ख) में अपराधी कोई ऐसी जानकारी अभिधारण नहीं करता है । मामलों के दृष्टांत धारा 300 के खंड (2) के अंतर्गत आने वाले ऐसे हो सकते हैं जहां हमलावर इस जानकारी के साथ साशय मुक्के से प्रहार करके मृत्यु कारित करें कि आहत का परिवर्धित यकृत या परिवर्धित प्लीहा या हृदय रोग से ग्रसित होने के कारण उसकी ऐसे प्रहार किए जाने से यथास्थिति यकृत खंडित होने या प्लीहा या हृदय की गति रुक जाने के परिणामस्वरूप विशिष्ट व्यक्ति की मृत्यु होना संभव है । यदि हमलावर को आहत की बीमारी या विशेष कमजोरी के बारे में ऐसी कोई जानकारी नहीं थी और न प्रकृति के साधारण अनुक्रम में मृत्यु कारित करने या शारीरिक क्षति करने जिससे कि मृत्यु कारित किया जाना पर्याप्त हो, अपराध हत्या का नहीं होगा, यद्यपि क्षति जिससे मृत्यु हो जाए, साशय की गई थी ।

16. धारा 300 के खंड (3) में 'मृत्यु कारित किए जाने की संभावना' शब्दों के बजाय धारा 299 के समरूप खंड (ख) में पाए जाने वाले 'प्रकृति के साधारण अनुक्रम में पर्याप्त' शब्दों का प्रयोग किया गया है । सुस्पष्टतया, शारीरिक क्षति जिनसे मृत्यु कारित किए जाने की संभावना है और प्रकृति के साधारण अनुक्रम में मृत्यु कारित किए जाने के लिए शारीरिक क्षति पर्याप्त हो । यह विभेद सूक्ष्म/ बारीक है किंतु वास्तविक है और यदि इसकी अनदेखी की जाती है तो इससे न्यायहानि होगी । धारा 299 के खंड (ख) और धारा 300 का खंड (3) में मृत्यु की संभावना की एक डिग्री है, आशयित शारीरिक क्षति के आशय का परिणाम है । इसका अति व्यापक निर्वचन किया हो मृत्यु की संभावना की डिग्री है जिससे यह अवधारित होता है कि क्या आपराधिक मानव वध की गंभीर, मध्य, और निम्नतर डिग्री है । धारा 299 में खंड (ख) में 'संभवतः' के अर्थ का बोध होता है जिसका एकमात्र संभाव्यता से विभेद किया जाता है शारीरिक क्षति ...... मृत्यु कारित किए जाने के प्रकृति के साधारण अनुक्रम में पर्याप्त है, इससे यह अभिप्रेत है कि प्रकृति के साधारण अनुक्रम को ध्यान में रखते हुए क्षति के परिणामस्वरूप मृत्यु की अत्यधिक संभावना होगी ।

17. खंड (3) के अंतर्गत आने वाले मामलों में यह आवश्यक नहीं है कि अपराधी का आशय मृत्यु कारित करना था जब तक कि साशय शारीरिक क्षति से मृत्यु नहीं हो जाती या प्रकृति के साधारण अनुक्रम में मृत्यु कारित किए जाने के लिए क्षतियां पर्याप्त हों ।

20. धारा 299 के खंड (ग) और धारा 300 के खंड (4) मृत्यु कारित किए जाने के कार्य की संभाव्यता की जानकारी अपेक्षित है ......यह कहना पर्याप्त होगा कि धारा 300 के खंड (4) वहां प्रयोज्य होगा जहां किसी व्यक्ति की मृत्यु की संभावना के बारे में अपराधी की जानकारी या आसन्न संकट कार्य से कारित होने वाले विशिष्ट व्यक्ति या व्यक्तियों से प्रभेद किया जाता है, अनुमानतः व्यवहारिक निश्चितता । अपराधी की ओर से ऐसी जानकारी संभाव्यता की सबसे ऊंची डिग्री होगी, अपराध द्वारा मृत्यु कारित करने या पूर्वोक्त ऐसी क्षति कारित करने के लिए जो जोखिम को लेते हुए बिना किसी क्षमा याचना के कार्य किया गया हो ।''

10. उच्चतम न्यायालय ने भी इस प्रश्न पर भी विचार किया है कि न्यायालय दो प्रवर्गों के बीच कैसे विभेद करता है । यह व्यापक मार्गदर्शन को प्रकट करता है जो निम्नलिखित है :–

''21. उपरोक्त सारांश से यह प्रकट होता है कि जब कभी किसी न्यायालय का इस प्रश्न से विरोध प्रकट होता है कि क्या मामले के तथ्यों पर अपराध 'हत्या' या 'हत्या की कोटि में नहीं आने वाला' आपराधिक मानव वध है, सुविधा के लिए तीन प्रक्रमों में प्रकट समस्या की ओर विचार करते हैं । प्रथम प्रक्रम पर इस प्रश्न में विचार किया जाएगा कि क्या अभियुक्त ने ऐसा करते हुए कोई कार्य किया है जिससे कि उसने किसी अन्य व्यक्ति की मृत्यु कारित कर दी । अभियुक्त के कार्य तथा मृत्यु के बीच के ऐसे कारण के संबंध में का सबूत उसके प्रक्रम पर विचार करना पड़ता है कि क्या अभियुक्त का कार्य आपराधिक मानव वध की कोटि में आता है जैसाकि धारा 299 में परिभाषित है । यदि इस प्रश्न का उत्तर प्रथमदृष्ट्या सकारात्मक पाया जाता है तब दंड संहिता की धारा 300 के प्रवर्तन पर विचार करने की अवस्था में पहुंच जाता है । यह ऐसा प्रक्रम है जहां न्यायालय को यह निर्धारण करना चाहिए कि क्या अभियोजन पक्ष द्वारा 'हत्या' की परिभाषा के चार खंड में से किसी की परिधि के भीतर मामले के लाने के लिए तथ्यों को साबित किया है । यदि इस प्रश्न का उत्तर नकारात्मक है तब अपराध 'हत्या की कोटि में न आने वाला' आपराधिक मानव वध होगा जो धारा 299 के क्रमशः द्वितीय या तृतीय खंड पर निर्भर होकर जो प्रयोज्य है । धारा 304 के प्रथम या द्वितीय भाग के अधीन दंडनीय है । यदि ऐसा प्रश्न सकारात्मक रूप में पाया जाता है किंतु धारा 300 में प्रगणित अपवादों में से किसी के

अंतर्गत मामला है तो अपराध 'हत्या की कोटि में नहीं आने वाला' आपराधिक मानव वध भी होगा, दंड संहिता की धारा 304 के प्रथम भाग के अधीन दंडनीय है ।"

11. इस न्यायालय के समक्ष प्रथम प्रश्न उद्‌भूत हुआ है कि क्या अपीलार्थियों का लाछा की मृत्यु कारित किए जाने का आशय था ? मन्ना (अभि. सा. 3) के अनुसार अपीलार्थियों ने शिकायतकर्ता से यह कहा था कि लाछा ने छप्पर के टाइल्स फेंके थे और झोपड़ी को जलाने की कोशिश की । इसलिए, उस समय झोपड़ी को नुकसान पहुंचाने से उसे रोकने के लिए उन्होंने उसके सिर के ऊपर लाठी घुमाई थी । सुस्पष्टतया, उसकी मृत्यु कारित किए जाने का कोई आशय नहीं था । संपत्ति को नुकसान पहुंचाने से उसे रोकने का आशय था । इस प्रकार, उसका मृत्यु कारित करने के आशय को सुरक्षित रूप से नियम विरुद्ध घोषित किया जा सकता है ।

12. इस न्यायालय के समक्ष दूसरा प्रश्न यह है कि क्या उन्हें इस बात की जानकारी हो सकी कि क्षति इतनी आसन्न संकट थी कि इससे सभी तरह संभवतया मृत्यु हो जाएगी या क्या उन्हें इस बात की जानकारी थी कि इससे संभवतया मृत्यु कारित हो जाए । स्वीकृततः, अभियोजन पक्ष के अनुसार लाछा को अपने सिर के पीछे की ओर एकल क्षति पहुंची थी जो लाठी की भांति कुंद आयुध भी था । लाठी से एकल क्षति कारित की गई थी । लाठी से एकल क्षति कारित की गई जिसके परिणामस्वरूप मात्र रेखीय अस्थिभंग हुआ था, "आसन्न संकट" के रूप में नहीं माना जा सकता है कि मृत्यु कारित किए जाने की पूरी संभावना होगी । तथापि, यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कोई व्यक्ति जो सिर के भांति महत्वपूर्ण भाग पर लाठी से हमला करता है तब निश्चित तौर पर यह जानकारी होगी कि उसकी "मृत्यु कारित होना संभव" है । इसलिए, यह कारण दंड संहिता की धारा 299 के अंतर्गत आएगा और न कि दंड संहिता की धारा 300 के अधीन ।

13. चूंकि यह मामला एकल क्षति का है क्योंकि किसी व्यक्ति ने दंड संहिता की धारा 300 में उल्लिखित अपवादों में से किसी पर अभिवाक् नहीं किया है, इसलिए यह मामला दंड संहिता की धारा 304 भाग II के अंतर्गत आएगा ।

14. उपरोक्त कथित कारणों से यह न्यायालय दंड संहिता की धारा 302 से 304 भाग 2 के साथ पठित धारा 34 के अधीन अपराध से दोषसिद्धि

कम करनी चाहिए क्योंकि अपीलार्थी पहले ही सात वर्ष का दंड भोग चुके हैं । चूंकि दोनों अपीलार्थी कारागार में बंदी हैं, यह निदेश दिया गया है कि यदि वे किसी आपराधिक मामले में वांछित नहीं हैं तो उन्हें तत्काल छोड़ा जाएगा । इस प्रकार यह अपील भागतः मंजूर की जाती है ।

अपील भागतः मंजूर की गई ।

आर्य

(2012) 2 दा. नि. प. 299 **हिमाचल प्रदेश**

सुनील चंदेल

बनाम

हिमाचल प्रदेश राज्य और अन्य

तारीख 20 सितंबर, 2011

न्यायमूर्ति कुलदीप सिंह

परिसीमा अधिनियम, 1963 (1963 का 36) – धारा 15 – विलंब की माफी – जहां पुनरीक्षण फाइल करने में विलंब की माफी के लिए पर्याप्त कारण न दर्शाया गया हो बल्कि प्रत्यर्थी द्वारा फाइल की गई अभिरक्षा याचिका की घोर निंदा के रूप में आवेदक द्वारा पुनरीक्षण फाइल किया गया हो वहां किसी भी दृष्टि से विलंब माफी का कोई मामला नहीं बनता ।

रजिस्ट्री के अनुसार यह पुनरीक्षण आवेदन 4 वर्ष 3 मास और 3 दिन द्वारा काल वर्जित है । आवेदन में यह कथन किया गया है कि आवेदक पढ़ा-लिखा व्यक्ति नहीं है । आवेदक का कुटुंब जिसमें उसके वृद्ध माता-पिता और पत्नी सम्मिलित हैं, अशिक्षित हैं । आवेदक मास्टर हिमांशु के भरणपोषण के खर्चे वहन करता है जिसकी माता मृतक सीमा की असामयिक और दुर्भाग्यवश मृत्यु हो गई । तारीख 22 फरवरी, 2010 को सिविल न्यायाधीश, ज्येष्ठ खंड, सोलन द्वारा तारीख 27 फरवरी, 2010 को न्यायालय में हाजिर होने के लिए आवेदक को संरक्षकता के मामले में समन भेजे गए थे जिसमें आवेदन के निष्पादन के लिए मास्टर हिमांशु को अभिरक्षा में सौंपा जाना था । आवेदक ने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश

9, नियम 13 के अधीन एक तरफा डिक्री को अपास्त करने हेतु आवेदन फाइल किया । तारीख 27 फरवरी, 2010 को आवेदक की जानकारी में यह बात आई कि विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश, सोलन द्वारा प्रत्यर्थी सं. 3 को दोषमुक्त कर दिया गया था । आवेदक ने प्रत्यर्थी सं. 3 से 6 को दोषमुक्त करने के लिए निर्णय की प्रति प्राप्त की थी । आवेदक ने तारीख 9 सितंबर, 2010 को पुनरीक्षण आवेदन के साथ विलंब माफी के लिए आवेदन फाइल किया था । प्रत्यर्थी सं. 3 से 6 को विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश (पीठासीन अधिकारी त्वरित निपटान न्यायालय), सोलन के न्यायालय में 2005 के मामला सं. 15 एफटी/7 में दंड संहिता की धारा 498-क, 306 के साथ पठित धारा 34 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए अभियोजित किया गया और उन्हें तारीख 9 मार्च, 2006 को दोषमुक्त कर दिया गया । प्रत्यर्थी सं. 3 से 6 की दोषमुक्ति को आवेदक जो परिवादी हैं द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 397/401 के अधीन पुनरीक्षण आवेदन फाइल करके आक्षेपित किया गया । यह पुनरीक्षण आवेदन काल वर्जित है और इसलिए फाइल किए गए पुनरीक्षण आवेदन में विलंब की माफी के लिए आवेदन प्रस्तुत किया गया । 2005 का मामला सं. 15 एफटी/7 में अपर सेशन न्यायाधीश (पीठासीन अधिकारी त्वरित निपटान न्यायालय), सोलन द्वारा तारीख 9 मार्च, 2006 को पारित निर्णय के विरुद्ध दांडिक पुनरीक्षण आवेदन में विलंब माफी के लिए परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के अधीन यह आवेदन फाइल किया गया है । पुनरीक्षण आवेदन खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – परिसीमा की विधि एक सारभूत विधि है और अधिकार और पक्षकारों की बाध्यता से उद्‌भूत हुए परिणामों को निश्चित किया जाता है । इन सिद्धांतों को वर्णित मामले के तथ्य और परिस्थितियों पर निर्भर होकर समुचित रूप से लागू किया जाना चाहिए । जब एक बार कोई मूल्यवान अधिकार किसी पक्षकार के पक्ष में प्रोद्‌भूत होता है जिसके परिणामस्वरूप दूसरा पक्षकार विफल हो जाता है तब पर्याप्त कारण दर्शित करके विलंब का स्पष्टीकरण दिया जाना चाहिए और उसके स्वयं के आचरण पर यह अयुक्तियुक्त होगा कि आवेदक के मात्र कहने पर उस अधिकार से उसे वंचित किया जाए, खासतौर पर जब विलंब प्रत्यक्ष रूप से असावधानी, व्यतिक्रम या पक्षकारों की निष्क्रियता के परिणाम हो । न्याय दोनों पक्षकारों के बीच समानता के आधार पर किया जाना चाहिए । यदि कोई पक्षकार अपने अधिकारों और अपने उपचारों को क्रियान्वित करने में पूर्णतया असावधानी बरतता है तब दूसरे पक्षकार को उसके मूल्यवान अधिकार से

वंचित किया जाना समानता की दृष्टि से अऋजु होगा क्योंकि उसके पक्ष में उसके सतर्क होने के परिणामस्वरूप विधि प्रोद्भूत हुई है । उदारवादी अर्थान्वयन यह किया जाना चाहिए कि दूसरे पक्षकार के साथ समानता के दृष्टिकोण से अन्याय नहीं किया जा सकता । वर्तमान मामले में, प्रकट विलंब 4 वर्ष 3 मास और 3 दिन का है । आवेदन अस्पष्ट है । आवेदक ने पुनरीक्षण आवेदन फाइल करने में विलंब माफी के लिए कोई पर्याप्त कारण प्रकट नहीं किया है । इसके प्रतिकूल, प्रत्यर्थी सं. 3 से 6 की प्रतिरक्षा में यह सार प्रकट है कि मृतका सीमा और प्रत्यर्थी सं. 3 के पुत्र मास्टर हिमांशु को अभिरक्षा में लिए जाने के लिए आवेदक के विरुद्ध प्रत्यर्थी सं. 3 द्वारा फाइल किए गए अभिरक्षा में लेने के आवेदन पर प्रतिकूल प्रत्युत्तर देने के लिए आवेदक द्वारा पुनरीक्षण आवेदन फाइल किया गया । राज्य ने प्रत्यर्थी सं. 3 से 6 की दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील फाइल नहीं की है । इन परिस्थितियों में, मूल्यवान अधिकार प्रत्यर्थी सं. 3 से 6 के पक्ष में प्रोद्भूत हुआ है । इसके अतिरिक्त, आवेदक ने तारीख 27 फरवरी, 2010 के पश्चात् तत्काल पुनरीक्षण आवेदन फाइल न करके पूर्ण रूप से असावधानी बरती है जब उसके बारे में यह अभिकथन किया गया है कि उसे प्रत्यर्थी सं. 3 से 6 की दोषमुक्ति के बारे में जानकारी हो गई थी । उसने तारीख 9 सितंबर, 2010 को पुनरीक्षण आवेदन फाइल किया । इस प्रकार, यदि एक सिरे से देखा जाए तब पुनरीक्षण आवेदन फाइल करने में विलंब माफी के लिए कोई मामला नहीं बनता है । परिणामस्वरूप, यह आवेदन असफल है और तद्नुसार इसे खारिज किया जाता है । (पैरा 16 और 17)

पुनरीक्षण (दांडिक) अधिकारिता : 2010 की दांडिक प्रकीर्ण आवेदन (एम.) सं. 23 और 2010 का दांडिक पुनरीक्षण आवेदन सं. 188.

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 397/401 के अधीन पुनरीक्षण आवेदन ।

आवेदक की ओर से श्री पी. एस. जसवाल, अधिवक्ता

अनावेदकों की ओर से सुश्री रूमा कौशिक, अपर महाधिवक्ता और श्री जे. एस. राना, सहायक महाधिवक्ता

न्यायमूर्ति कुलदीप सिंह – 2005 का मामला सं. 15 एफटी/7 में अपर सेशन न्यायाधीश (पीठासीन अधिकारी त्वरित निपटान न्यायालय), सोलन द्वारा तारीख 9 मार्च, 2006 को पारित निर्णय के विरुद्ध दांडिक पुनरीक्षण आवेदन में विलंब माफी के लिए परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के अधीन यह आवेदन फाइल किया गया है ।

2. प्रत्यर्थी सं. 3 से 6 को विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश (पीठासीन अधिकारी त्वरित निपटान न्यायालय), सोलन के न्यायालय में 2005 के मामला सं. 15 एफटी/7 में दंड संहिता की धारा 498-क, 306 के साथ पठित धारा 34 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए अभियोजित किया गया और उन्हें तारीख 9 मार्च, 2006 को दोषमुक्त कर दिया गया । प्रत्यर्थी सं. 3 से 6 की दोषमुक्ति को आवेदक जो परिवादी हैं द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 397/401 के अधीन पुनरीक्षण आवेदन फाइल करके आक्षेपित किया गया । यह पुनरीक्षण आवेदन काल वर्जित है और इसलिए फाइल किए गए पुनरीक्षण आवेदन में विलंब की माफी के लिए आवेदन प्रस्तुत किया गया ।

3. रजिस्ट्री के अनुसार यह पुनरीक्षण आवेदन 4 वर्ष 3 मास और 3 दिन द्वारा काल वर्जित है । आवेदन में यह कथन किया गया है कि आवेदक पढ़ा-लिखा व्यक्ति नहीं है । आवेदक का कुटुंब जिसमें उसके वृद्ध माता-पिता और पत्नी सम्मिलित हैं, अशिक्षित हैं । आवेदक मास्टर हिमांशु के भरणपोषण के खर्चे वहन करता है जिसकी माता मृतक सीमा की असामयिक और दुर्भाग्यवश मृत्यु हो गई ।

4. तारीख 22 फरवरी, 2010 को सिविल न्यायाधीश, ज्येष्ठ खंड, सोलन द्वारा तारीख 27 फरवरी, 2010 को न्यायालय में हाजिर होने के लिए आवेदक को संरक्षकता के मामले में समन भेजे गए थे जिसमें आवेदन के निष्पादन के लिए मास्टर हिमांशु को अभिरक्षा में सौंपा जाना था । आवेदक ने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9, नियम 13 के अधीन एक तरफा डिक्री को अपास्त करने हेतु आवेदन फाइल किया ।

5. तारीख 27 फरवरी, 2010 को आवेदक की जानकारी में यह बात आई कि विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश, सोलन द्वारा प्रत्यर्थी सं. 3 को दोषमुक्त कर दिया गया था । आवेदक ने प्रत्यर्थी सं. 3 से 6 को दोषमुक्त करने के लिए निर्णय की प्रति प्राप्त की थी । आवेदक ने तारीख 9 सितंबर, 2010 को पुनरीक्षण आवेदन के साथ विलंब माफी के लिए आवेदन फाइल किया ।

6. यह कथन किया गया कि आवेदक अशिक्षित व्यक्ति रहा है इसलिए, उसे कोई काउंसेल परामर्श किए जाने के लिए नहीं मिला । मृतक के वयोवृद्ध माता-पिता को प्रत्यर्थी सं. 3 से 6 की दोषमुक्ति की जानकारी प्राप्त होने पर कठोर आघात लगा था । अंत में, आवेदक ने जुलाई, 2010 में किसी व्यक्ति से परामर्श लिया और उसकी जानकारी में यह आया कि परिसीमा की अवधि 90 दिन है जो पहले ही समाप्त हो चुकी है । जून, 2010 जो अवकाश का महीना होने के कारण वह किसी व्यक्ति से संपर्क नहीं कर सका । जुलाई, 2010 में केवल उसने अपने काउंसेल से उच्च न्यायालय में पुनरीक्षण आवेदन फाइल करने के लिए अनुरोध किया था । तारीख 24 जुलाई, 2010 को आवेदक ने अधिवक्ता के माध्यम से निर्णय की अभिप्रमाणित प्रति पाने के लिए आवेदन किया था जिसे अधिवक्ता द्वारा तारीख 29 जुलाई, 2010 को प्राप्त किया गया था तथा निर्णय की अभिप्रमाणित प्रति आवेदक को 7 अगस्त, 2010 को प्राप्त हुई । पुनरीक्षण आवेदन में विलंब माफी के लिए प्रार्थना की गई थी ।

7. प्राइवेट प्रत्यर्थियों द्वारा उत्तर फाइल करके आवेदन का विरोध किया गया था । यह कथन किया गया कि आवेदक को आवेदन के मिथ्या होने की जानकारी थी । पुनरीक्षण आवेदन में 1640 दिनों का विलंब हुआ है । मामले के विचारण के दौरान आवेदक को प्राइवेट अधिवक्ता द्वारा समर्थन दिया गया था । आवेदक द्वारा फाइल किए गए पुनरीक्षण आवेदन में बालक को अभिरक्षा में लेने हेतु प्रत्यर्थी सं. 3 के आवेदन की घोर निंदा की गई है ।

8. मास्टर हिमांशु की अभिरक्षा के लिए आवेदन वर्ष 2006 में प्रत्यर्थी सं. 3 द्वारा फाइल किया था और यह बात अच्छी तरह से आवेदक की जानकारी में थी । इस बात से इनकार किया गया है कि केवल तारीख 27 फरवरी, 2010 को आवेदक की जानकारी में तारीख 8 अप्रैल, 2008 का आदेश आया । इस बात से भी इनकार किया गया है कि तारीख 27 फरवरी, 2010 को प्रत्यर्थी सं. 3 से 6 की दोषमुक्ति के बारे में आवेदक को प्रथम बार जानकारी हुई । जबकि प्रत्यर्थी सं. 3 से 6 की दोषमुक्ति के बारे में वर्ष 2006 से आवेदक को पता था ।

9. प्रत्यर्थी सं. 5 रितु आवेदक की नजदीकी नातेदार थी क्योंकि रितु की ननद (पति की बहन) का विवाह आवेदक के साथ हुआ था और इसलिए यह विश्वास योग्य नहीं है कि आवेदक को प्रत्यर्थी सं. 3 से 6 की दोषमुक्ति के बारे में पता नहीं था जब उन्हें तारीख 9 मार्च, 2006 को

दोषमुक्त किया गया । आवेदन पूर्णतया मिथ्या है और तात्विक तथ्यों को आवेदक द्वारा छुपाया गया है । इसलिए, आवेदन को खारिज किए जाने का अनुरोध किया गया ।

10. राज्य ने प्रत्यर्थी सं. 3 से 6 की दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील फाइल नहीं की । मामले के गुणागुण विलंब की माफी के लिए आवेदन का विनिश्चय करने हेतु सुसंगत नहीं है किंतु आवेदक के विद्वान् काउंसेल द्वारा यह दलील नहीं दी गई है कि प्रत्यर्थी सं. 3 से 6 को गुणागुण पर दोषमुक्त नहीं किया गया था । अभियोजन पक्षकथन मृतका के आत्महत्या टिप्पण या लिखत पर आधारित नहीं है और पूर्व अभियोजन पक्षकथन के अनुसार न ही अभिकथित घटना की तारीख को मृतका द्वारा विधिपूर्ण प्राधिकारी के समक्ष शिकायत की गई थी ।

11. आवेदक ने आवेदन में यह कथन किया है कि उसे तारीख 27 फरवरी, 2010 को प्रत्यर्थी सं. 3 से 6 के दोषमुक्त होने के बारे में पता चला जब तारीख 8 अप्रैल, 2008 के आदेश से उद्भूत आवेदन निष्पादन के लिए लाया गया जिस पर वह तारीख 22 फरवरी, 2010 को नोटिस के तामील होने के पश्चात् न्यायालय, सोलन में हाजिर हुआ था । आवेदक ने आवेदन में यह कथन नहीं किया है कि उसने संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890 की धारा 25 के अधीन मास्टर हिमांशु की अभिरक्षा के लिए प्रत्यर्थी सं. 3 द्वारा फाइल किए गए आवेदन की प्रति उसे मिली थी । उक्त आवेदन में आवेदक प्रत्यर्थी सं. 3 है ।

12. प्रत्यर्थी सं. 3 से 6 के विद्वान् काउंसेल ने 2006 के मामला सं. 8/2 में विद्वान् सिविल न्यायाधीश, ज्येष्ठ खंड, सोलन द्वारा तारीख 8 अप्रैल, 2008 को पारित किए गए आदेश की प्रति दिखाई थी जिसमें यह कथन किया गया है कि सीमा जयसवाल ने तारीख 30 अगस्त, 2004 को आत्महत्या की थी, इस मामले में प्रत्यर्थी सं. 3 और उसके कुटुंब द्वारा सीमा जयसवाल को प्रताड़ित किया गया था और इसलिए प्रत्यर्थी सं. 3 और उसके नातेदारों के विरुद्ध दंड संहिता की धारा 498-क और 306 के अधीन मामला रजिस्ट्रीकृत किया गया था । तारीख 8 अप्रैल, 2008 के आदेश में यह भी कथन किया गया है कि इसमें प्रत्यर्थी आवेदन का विरोध करने के लिए हाजिर नहीं हुए और इसलिए उन्होंने एकतरफा कार्यवाही की ।

13. आवेदक के कथन के आधार पर प्रत्यर्थी सं. 3 से 6 के विरुद्ध मामला रजिस्ट्रीकृत किया गया था । वह अभि. सा. 7 के रूप में विचारण

न्यायालय में हाजिर हुआ । इस प्रकार, ठीक उस तारीख से आवेदक को प्रत्यर्थी सं. 3 से 6 के विरुद्ध दांडिक मामले के बारे में पता चल गया था । प्रत्यर्थी सं. 3 की ननद आवेदक की पत्नी है ; इसलिए यह विश्वासयोग्य नहीं है कि जब दांडिक मामले में तारीख 3 मार्च, 2006 को प्रत्यर्थी सं. 3 से 6 को दोषमुक्त किया गया था तब आवेदक को उनकी दोषमुक्ति के बारे में या तारीख 9 मार्च, 2006 के बारे में पता न चल पाया हो । इसके प्रतिकूल, यह निष्कर्ष निकालना युक्तियुक्त होगा कि आवेदक को तारीख 9 मार्च, 2006 के पश्चात् युक्तियुक्त समय पर प्रत्यर्थी सं. 3 से 6 की दोषमुक्ति के बारे में पता चल गया था ।

14. यह प्रकट हुआ है कि आवेदक ने प्रत्यर्थी सं. 3 से 6 की दोषमुक्ति होना स्वीकार किया है और इसलिए उसने प्रत्यर्थी सं. 3 से 6 की दोषमुक्ति पर तारीख 9 मार्च, 2006 के निर्णय को आक्षेपित करने के लिए कोई कार्यवाही नहीं की । प्रत्यर्थी सं. 3 ने मास्टर हिमांशु को अभिरक्षा में लेने के लिए तारीख 8 अप्रैल 2008 के आदेश का निष्पादन करवाने हेतु आवेदक के विरुद्ध निष्पादन आवेदन फाइल किया है । आवेदक ने तारीख 8 अप्रैल, 2008 के आदेश के अनुसार आवेदन का विरोध नहीं किया और वह एकतरफा कार्यवाही करवाने के लिए अग्रसर था । यह प्रकट हुआ है कि प्रत्यर्थी सं. 3 पर दबाव डालने के लिए आवेदक ने तारीख 9 मार्च, 2006 के निर्णय के विरुद्ध पुनरीक्षण आवेदन फाइल करने की सोची । आवेदक के अनुसार उसे तारीख 22 फरवरी, 2010 को निष्पादन की तामीली हुई और वह तारीख 27 फरवरी, 2010 को निष्पादन न्यायालय के समक्ष हाजिर हुआ था । उसने तारीख 29 जुलाई, 2010 को तारीख 9 मार्च, 2006 के निर्णय की अभिप्रमाणित प्रति के लिए आवेदन किया जो तारीख 29 जुलाई, 2010 को तैयार हुई थी किंतु तारीख 2 अगस्त, 2010 को उसे प्राप्त हुई थी । आवेदक को तारीख 9 मार्च, 2006 के निर्णय की अभिप्रमाणित प्रति लेने के लिए आवेदन करने हेतु लगभग 5 मास का समय लगा था । यद्यपि यह धारणा की गई है कि उसे तारीख 27 फरवरी, 2010 को प्रत्यर्थी सं. 3 से 6 की दोषमुक्ति के बारे में पता चल गया था ।

15. आवेदक ने अस्पष्ट प्रकथन किए हैं कि जून 2010 में अवकाश था । आवेदन में इस बारे में कोई विनिर्दिष्ट प्रकथन नहीं किया गया है कि आवेदक ने तारीख 29 जुलाई, 2010 या 2 अगस्त, 2010 के पश्चात् क्या किया । तारीख 9 सितंबर, 2010 को रजिस्ट्री में पुनरीक्षण आवेदन फाइल

किया गया । उसमें विलंब का कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया । **पुंडलिक जलाम पाटिल (मृतक) माध्यम विधिक प्रतिनिधि** बनाम **कार्यपालक इंजीनियर, जलगांव मीडियम प्रोजेक्ट और एक अन्य**[1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि हर व्यक्ति के बारे में यह उपधारणा की जाती है कि उसे कानून की जानकारी है । न्यायालय साम्या के आधार पर विलंबित दावों की जांच नहीं कर सकता । विलंब से साम्या की पराजय होती है । न्यायालय उन लोगों की मदद करता है जो सतर्क होते हैं और अपने अधिकारों के प्रति खामोश नहीं रहते ।

16. **बलवंत सिंह** बनाम **जगदीश सिंह और अन्य**[2] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि परिसीमा की विधि एक सारभूत विधि है और अधिकार और पक्षकारों की बाध्यता से उद्‌भूत हुए परिणामों को निश्चित किया जाता है । इन सिद्धांतों को वर्णित मामले के तथ्य और परिस्थितियों पर निर्भर होकर समुचित रूप से लागू किया जाना चाहिए । जब एक बार कोई मूल्यवान अधिकार किसी पक्षकार के पक्ष में प्रोद्‌भूत होता है जिसके परिणामस्वरूप दूसरा पक्षकार विफल हो जाता है तब पर्याप्त कारण दर्शित करके विलंब का स्पष्टीकरण दिया जाना चाहिए और उसके स्वयं के आचरण पर यह अयुक्तियुक्त होगा कि आवेदक के मात्र कहने पर उस अधिकार से उसे वंचित किया जाए, खासतौर पर जब विलंब प्रत्यक्ष रूप से असावधानी, व्यतिक्रम या पक्षकारों की निष्क्रियता के परिणाम हो । न्याय दोनों पक्षकारों के बीच समानता के आधार पर किया जाना चाहिए । यदि कोई पक्षकार अपने अधिकारों और अपने उपचारों को क्रियान्वित करने में पूर्णतया असावधानी बरतता है तब दूसरे पक्षकार को उसके मूल्यवान अधिकार से वंचित किया जाना समानता की दृष्टि से अऋजु होगा क्योंकि उसके पक्ष में उसके सतर्क होने के परिणामस्वरूप विधि प्रोद्‌भूत हुई है । उदारवादी अर्थान्वयन यह किया जाना चाहिए कि दूसरे पक्षकार के साथ समानता के दृष्टिकोण से अन्याय नहीं किया जा सकता ।

17. वर्तमान मामले में, प्रकट विलंब 4 वर्ष 3 मास और 3 दिन का है । आवेदन अस्पष्ट है । आवेदक ने पुनरीक्षण आवेदन फाइल करने में विलंब माफी के लिए कोई पर्याप्त कारण प्रकट नहीं किया है । इसके प्रतिकूल, प्रत्यर्थी सं. 3 से 6 की प्रतिरक्षा में यह सार प्रकट है कि मृतका

---

[1] (2008) 17 एस. सी. सी. 448.

[2] ए. आई. आर. 2010 एस. सी. 3043.

सीमा और प्रत्यर्थी सं. 3 के पुत्र मास्टर हिमांशु को अभिरक्षा में लिए जाने के लिए आवेदक के विरुद्ध प्रत्यर्थी सं. 3 द्वारा फाइल किए गए अभिरक्षा में लेने के आवेदन पर प्रतिकूल प्रत्युत्तर देने के लिए आवेदक द्वारा पुनरीक्षण आवेदन फाइल किया गया । राज्य ने प्रत्यर्थी सं. 3 से 6 की दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील फाइल नहीं की है । इन परिस्थितियों में, मूल्यवान अधिकार प्रत्यर्थी सं. 3 से 6 के पक्ष में प्रोद्भूत हुआ है । इसके अतिरिक्त, आवेदक ने तारीख 27 फरवरी, 2010 के पश्चात् तत्काल पुनरीक्षण आवेदन फाइल न करके पूर्ण रूप से असावधानी बरती है जब उसके बारे में यह अभिकथन किया गया है कि उसे प्रत्यर्थी सं. 3 से 6 की दोषमुक्ति के बारे में जानकारी हो गई थी । उसने तारीख 9 सितंबर, 2010 को पुनरीक्षण आवेदन फाइल किया । इस प्रकार, यदि एक सिरे से देखा जाए तब पुनरीक्षण आवेदन फाइल करने में विलंब माफी के लिए कोई मामला नहीं बनता है । परिणामस्वरूप, यह आवेदन असफल है और तद्नुसार इसे खारिज किया जाता है ।

पुनरीक्षण आवेदन खारिज किया गया ।

आर्य

(2012) 2 दा. नि. प. 307 **हिमाचल प्रदेश**

हिमाचल प्रदेश राज्य

बनाम

श्रीमती उषा रानी और एक अन्य

तारीख 1 मार्च, 2012

न्यायमूर्ति आर. बी. मिश्र और न्यायमूर्ति राजीव शर्मा

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 307 और 324 – खतरनाक आयुध से स्वेच्छया हत्या करने का प्रयास – जहां अभियोजन अपराध की परिस्थितियों में प्रयुक्त हथियारों, चिकित्सा प्रमाण पत्र, अपराध के आशय और हेतु तथा साक्षियों के साक्ष्य से युक्तियुक्त संदेह से परे यह साबित नहीं कर सका कि अपराध अभियुक्त द्वारा ही कारित किया था, वहां अभियुक्त दोषमुक्त ठहराए जाने का दायी है ।

अभियोजन पक्षकथन इस प्रकार है कि तारीख 9 जुलाई, 2000 को 8.00 बजे अपराह्न हंस राज और मोहिन्द्र कुमार अभियुक्त खेम चंद के मकान के

नजदीक से जा रहे थे । अभियुक्त ने उन पर पत्थर फेंकने शुरू कर दिए । उन्होंने उससे पत्थर फेंकने के बारे में पूछताछ की । इसके पश्चात् अभियुक्त रास्ते पर उनके पास दरात और टोका लेकर पहुंचे । उन्होंने मोहिन्द्र कुमार और हंस राज पर उनसे प्रहार किए । परिणामस्वरूप मोहिन्द्र कुमार नीचे गिर गया । इसके पश्चात् हंस राज और मोहिन्द्र कुमार ने चीख-पुकार की जिस पर उनका भाई ललित कुमार भी वहां पहुंचा । उस समय अभियुक्त उषा रानी ने ललित कुमार के पैर पर टोका से प्रहार किया और खेम चंद ने ललित कुमार के सिर पर दरात से प्रहार किया । तत्पश्चात् सभी आहत व्यक्ति चीख-पुकार करने लगे और अभियुक्त भाग गया । आहत व्यक्तियों को अस्पताल ले जाया गया और हंस राज के कथन के आधार पर प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज की गई । पुलिस ने अन्वेषण किया और दरात और टोका अपने कब्जे में ले लिया और आहत व्यक्तियों की चिकित्सीय परीक्षा की । पुलिस ने सभी संहिताबद्ध औपचारिकताओं को पूरा करने के पश्चात् न्यायालय के समक्ष चालान फाइल किया । अभियोजन पक्ष ने अपने पक्षकथन को साबित करने के लिए कुल मिलाकर 14 साक्षियों की परीक्षा की । अभियुक्तों के कथन दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन अभिलिखित भी किए गए । उन्होंने अभियोजन पक्षकथन से इनकार किया और यह अभिवाक् किया कि वास्तव में आहत ललित कुमार, मोहिन्द्र कुमार और हंस राज ने उन पर हमला किया और गंभीर रूप से झगड़ा होने पर उनके शरीर पर साधारण क्षतियां कारित कीं । विचारण न्यायालय ने तारीख 8 नवंबर, 2004 को निर्णय पारित करके प्रत्यर्थियों को दोषमुक्त कर दिया । इसलिए यह अपील फाइल की गई । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – हंस राज ने यह सिद्ध किया है कि उस सुसंगत समय पर जब वे ग्राम गमला से आ रहे थे तब उन पर पत्थर फेंके गए थे । इसके पश्चात्, अभियुक्त खेम चंद दरात लेकर बाहर आया और उसने उसके छोटे भाई मोहिन्द्र कुमार पर दरात से प्रहार किया और जब उसने अपने भाई को बचाने का प्रयास किया तब उसने उसके दाहिने हाथ पर भी क्षति पहुंचाई थी । उसने आगे यह सिद्ध किया है कि जब उन्होंने चीख-पुकार की तब उनके बड़े भाई भी घटनास्थल पर पहुंच गए थे । उसी बीच में अभियुक्त उषा रानी गौशाला से बाहर आई जिसने अपने हाथ में टोका लिया हुआ था तब अभियुक्त खेम चंद ने ललित कुमार के मस्तक पर दरात से प्रहार किया जिसके परिणामस्वरूप वह नीचे गिर गया । अभियुक्त उषा रानी ने ललित कुमार के पांव पर टोका से क्षति पहुंचाई, जबकि उसके कान के नजदीक तथा हाथ पर क्षतियां कायम हुई थीं । इसके पश्चात् अभियुक्त भाग गए । उसके अनुसार अभियुक्तों से

बरामदगी ज्ञापन प्रदर्श पी. बी. और प्रदर्श पी. सी. के माध्यम से दरात और टोका बरामद किया गया था । उसके द्वारा प्रदर्श पी. 1 दरात और प्रदर्श पी. 2 टोका की पहचान की गई थी । ललित कुमार और मोहिन्द्र कुमार ने हंस राज के कथन की सम्पुष्टि की है । जालम राम, खूब राम टोका और दरात के बरामदगी के साक्षी हैं । प्रारंभ में आहत व्यक्तियों की डा. शिवानंद कौशल द्वारा रत्ती के अस्पताल पर परीक्षा की गई थी । उन्होंने ललित को पहुंचाई गईं क्षतियों के संबंध में एमएलसी प्रदर्श पी. एल. को साबित किया है । उन्होंने क्षतियां प्रदर्श पी. के. ए/1 के संबंध में अपनी राय को भी साबित किया है । उन्होंने प्रदर्श पी. एम. के माध्यम से मोहिन्द्र कुमार की एमएलसी भी साबित की है । अपनी प्रतिपरीक्षा में साक्षी द्वारा अभियुक्त खेम चंद प्रदर्श डी. बी. की एमएलसी तथा अभियुक्त उषा रानी प्रदर्श डी. ए. की एमएलसी भी साबित की है । ललित कुमार का एक्सरे राकेश कुमार द्वारा मंडी पर किया गया था और उसने एक्सरे फोटो प्रदर्श पी. ओ. और प्रदर्श पी. ओ./1 साबित किया जिसके द्वारा उसने यह निष्कर्ष निकाला कि खोपड़ी के अग्र अस्थि का भंग हुआ है । न्यायालयिक प्रयोगशाला रिपोर्ट प्रदर्श पी. जी. डा. ज्ञान ठाकुर द्वारा साबित की गई थी । डा. ज्ञान ठाकुर ने यह निष्कर्ष निकाला है कि यद्यपि टोका प्रदर्श पी. 2 पर मानव रक्त लगा हुआ था परंतु उसका रक्त समूह अभिनिश्चित नहीं किया जा सका । के. डी. शर्मा ने अन्वेषण कार्य किया । अभियोजन पक्ष अभियुक्त-व्यक्तियों को पहुंची हुई क्षतियों का स्पष्टीकरण नहीं दे पाया । प्रदर्श डी. ए. से यह सुस्पष्ट है कि खेम चंद को चार क्षतियां कायम हुई थीं और उन क्षतियों में से क्षति सं. 3 गंभीर प्रकृति की थी, जबकि क्षति सं. 4 धारदार आयुध द्वारा कारित की गई थी । उषा रानी की एमएलसी प्रदर्श डी. बी. के अनुसार उसे भी क्षतियां कायम हुई थीं । उसकी 9.45 बजे अपराह्न परीक्षा की गई थी । डा. शिवानंद कौशल द्वारा एमएलसी रिपोर्ट साबित की गई थी । के. डी. शर्मा ने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह स्वीकार किया है कि पक्षकारों के बीच झगड़े के संबंध में सूचना पुलिस थाने पर किसी महिला द्वारा प्राप्त की गई थी । उसने इस प्रकार यह साबित किया है कि हरवन्ती प्रतिरक्षा साक्षी 1 जिसने घटना के बारे में पुलिस को सूचना दी । यद्यपि टोका पर मानव रक्त पाया गया था परंतु उसका रक्त समूह न्यायालयिक प्रयोगशाला विशेषज्ञ रिपोर्ट प्रदर्श पी. जी. के अनुसार उसका अभिनिश्चय नहीं किया जा सका । जगदीश ने यह कहते हुए नया वृत्तांत दिया है कि जब वह घटनास्थल पर पहुंचा तब हंस राज और मोहिन्द्र कुमार आपस में लड़ रहे थे । हंस राज, ललित कुमार और मोहिन्द्र कुमार के कथनों के अनुसार अभिलेख पर यह भी प्रकट हुआ है कि रास्ते के इस्तेमाल के संबंध में पक्षकारों के बीच विवाद हुआ था । प्रतिरक्षा साक्षी 2 के कथन में यह प्रकट हुआ है कि वास्तव में मोहिन्द्र कुमार, ललित कुमार और हंस राज

खेम चंद के प्रांगण में थे और डंडों से प्रहार कर रहे थे और उन्होंने उसे डंगा की ओर घसीटा था । टोका पर मानव रक्त नहीं पाया गया था । इससे अभियोजन पक्षकथन में संदेह उत्पन्न होता है । परिणामस्वरूप, यह अभिनिर्धारित किया गया है कि विचारण न्यायालय ने पक्षकारों द्वारा दिए गए साक्ष्य का सही रूप से मूल्यांकन किया है और सही निष्कर्ष पर पहुंचा है कि अभियोजन पक्ष अभियुक्तों के विरुद्ध युक्तियुक्त संदेह के परे अपने पक्षकथन को साबित करने में समर्थ नहीं हुआ है । इस प्रकार, 2001 के सेशन विचारण सं. 19 में विद्वान् सेशन न्यायाधीश, मंडी द्वारा तारीख 8 नवंबर, 2004 को पारित किए गए निर्णय पर किसी तरह हस्तक्षेप करना आवश्यक नहीं है । (पैरा 7, 8, 10 और 11)

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2005 की दांडिक अपील सं. 59.

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 378 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री आर. के. शर्मा, ज्येष्ठ अपर महाधिवक्ता

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री एम. एस. गुलेरिया, अधिवक्ता

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति राजीव शर्मा ने दिया ।

न्या. शर्मा – राज्य द्वारा 2001 के सेशन विचारण सं. 19 में तारीख 8 नवंबर, 2004 को विद्वान् सेशन न्यायाधीश, मंडी की ओर से दिए गए निर्णय के विरुद्ध अपील फाइल की है जिसके द्वारा प्रत्यर्थी-अभियुक्त जो दंड संहिता की धारा 307, 324 और 323 के साथ पठित धारा 34 के अधीन अपराध के लिए आरोपित किए गए थे और उनका विचारण करके उन्हें दोषमुक्त कर दिया गया ।

2. संक्षेप में अभियोजन पक्षकथन इस प्रकार है कि तारीख 9 जुलाई, 2000 को 8.00 बजे अपराह्न हंस राज और मोहिन्द्र कुमार अभियुक्त खेम चंद के मकान के नजदीक से जा रहे थे । अभियुक्त ने उन पर पत्थर फेंकने शुरू कर दिए । उन्होंने उससे पत्थर फेंकने के बारे में पूछताछ की । इसके पश्चात् अभियुक्त रास्ते पर उनके पास दरात और टोका लेकर पहुंचे । उन्होंने मोहिन्द्र कुमार और हंस राज पर उनसे प्रहार किए । परिणामस्वरूप मोहिन्द्र कुमार नीचे गिर गया । इसके पश्चात् हंस राज और मोहिन्द्र कुमार ने चीख-पुकार की जिस पर उनका भाई ललित कुमार भी वहां पहुंचा । उस समय अभियुक्त उषा रानी ने ललित कुमार के पैर पर टोका से प्रहार किया और खेम चंद ने ललित कुमार के सिर पर दरात से प्रहार किया । तत्पश्चात् सभी आहत व्यक्ति चीख-पुकार करने लगे और अभियुक्त भाग गया ।

आहत व्यक्तियों को अस्पताल ले जाया गया और हंस राज के कथन के आधार पर प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज की गई । पुलिस ने अन्वेषण किया और दरात और टोका अपने कब्जे ले में लिया और आहत व्यक्तियों की चिकित्सीय परीक्षा की । पुलिस ने सभी संहिताबद्ध औपचारिकताओं को पूरा करने के पश्चात् न्यायालय के समक्ष चालान फाइल किया । अभियोजन पक्ष ने अपने पक्षकथन को साबित करने के लिए कुल मिलाकर 14 साक्षियों की परीक्षा की । अभियुक्तों के कथन दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन अभिलिखित भी किए गए । उन्होंने अभियोजन पक्षकथन से इनकार किया और यह अभिवाक् किया कि वास्तव में आहत ललित कुमार, मोहिन्द्र कुमार और हंस राज ने उन पर हमला किया और गंभीर रूप से झगड़ा होने पर उनके शरीर पर साधारण क्षतियां कारित कीं । विचारण न्यायालय ने तारीख 8 नवंबर, 2004 को निर्णय पारित करके प्रत्यर्थियों को दोषमुक्त कर दिया । इसलिए यह अपील फाइल की गई ।

3. श्री आर. के. शर्मा, विद्वान् ज्येष्ठ महाधिवक्ता ने दृढ़तापूर्वक यह दलील दी कि अभियोजन पक्ष ने अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध अपने पक्षकथन को सिद्ध किया है ।

4. प्रत्यर्थियों की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री एम. एस. गुलेरिया ने विचारण न्यायालय के निर्णय का समर्थन किया ।

5. हमने पक्षकारों के विद्वान् काउंसेल को सुना और अभिवचनों और अभिलेखों का सावधानीपूर्वक परिशीलन किया ।

6. अभियोजन पक्ष ने प्रारंभिक रूप से हंस राज (अभि. सा. 1), ललित कुमार (अभि. सा. 3) और मोहिन्द्र कुमार (अभि. सा. 12) के कथनों का चिकित्सा साक्ष्य के साथ अवलंब लिया । प्रत्यर्थियों का मामला यह था कि दो कुटुंबों के बीच कुंटुंब संबंधी विवाद था और उनके विरुद्ध मिथ्या मामला रजिस्ट्रीकृत किया गया था ।

7. हंस राज (अभि. सा. 1) ने यह सिद्ध किया है कि उस सुसंगत समय पर जब वे ग्राम गमला से आ रहे थे तब उन पर पत्थर फेंके गए थे । इसके पश्चात्, अभियुक्त खेम चंद दरात लेकर बाहर आया और उसने उसके छोटे भाई मोहिन्द्र कुमार पर दरात से प्रहार किया और जब उसने अपने भाई को बचाने का प्रयास किया तब उसने उसके दाहिने हाथ पर भी क्षति पहुंचाई थी । उसने आगे यह सिद्ध किया है कि जब उन्होंने चीख-पुकार की तब उनके बड़े भाई भी घटनास्थल पर पहुंच गए थे । उसी बीच में अभियुक्त उषा रानी गौशाला से बाहर आई जिसने अपने हाथ में टोका लिया हुआ था तब अभियुक्त

खेम चंद ने ललित कुमार के मस्तक पर दरात से प्रहार किया जिसके परिणामस्वरूप वह नीचे गिर गया । अभियुक्त उषा रानी ने ललित कुमार के पांव पर टोका से क्षति पहुंचाई, जबकि उसके कान के नजदीक तथा हाथ पर क्षतियां कायम हुई थीं । इसके पश्चात् अभियुक्त भाग गए । उसके अनुसार अभियुक्तों से बरामदगी ज्ञापन प्रदर्श पी. बी. और प्रदर्श पी. सी. के माध्यम से दरात और टोका बरामद किया गया था । उसके द्वारा प्रदर्श पी. 1 दरात और प्रदर्श पी. 2 टोका की पहचान की गई थी ।

8. ललित कुमार (अभि. सा. 3) और मोहिन्द्र कुमार (अभि. सा. 12) ने हंस राज (अभि. सा. 1) के कथन की सम्पुष्टि की है । जालम राम (अभि. सा. 4), खूब राम (अभि. सा. 5) टोका और दरात के बरामदगी के साक्षी हैं । प्रारंभ में आहत व्यक्तियों की डा. शिवानंद कौशल (अभि. सा. 10) द्वारा रत्ती के अस्पताल पर परीक्षा की गई थी । उन्होंने ललित को पहुंचाई गईं क्षतियों के संबंध में एमएलसी प्रदर्श पी. एल. को साबित किया है । उन्होंने क्षतियां प्रदर्श पी. के. ए/1 के संबंध में अपनी राय को भी साबित किया है । उन्होंने प्रदर्श पी. एम. के माध्यम से मोहिन्द्र कुमार की एमएलसी भी साबित की है । अपनी प्रतिपरीक्षा में साक्षी द्वारा अभियुक्त खेम चंद प्रदर्श डी. बी. की एमएलसी तथा अभियुक्त उषा रानी प्रदर्श डी. ए. की एमएलसी भी साबित की है । ललित कुमार का एक्सरे राकेश कुमार (अभि. सा. 11) द्वारा मंडी पर किया गया था और उसने एक्सरे फोटो प्रदर्श पी. ओ. और प्रदर्श पी. ओ./1 साबित किया जिसके द्वारा उसने यह निष्कर्ष निकाला कि खोपड़ी के अग्र अस्थि का भंग हुआ है । न्यायालयिक प्रयोगशाला रिपोर्ट प्रदर्श पी. जी. डा. ज्ञान ठाकुर (अभि. सा. 7) द्वारा साबित की गई थी । डा. ज्ञान ठाकुर ने यह निष्कर्ष निकाला है कि यद्यपि टोका प्रदर्श पी. 2 पर मानव रक्त लगा हुआ था परंतु उसका रक्त समूह अभिनिश्चित नहीं किया जा सका ।

9. जगदीश कुमार (अभि. सा. 13) एक स्वतंत्र साक्षी है । उसने यह कथन किया है कि जब वह घटनास्थल पर पहुंचा । उसने देखा कि हंस राज और मोहिन्द्र कुमार एक-दूसरे से झगड़ा कर रहे थे और जब ललित कुमार वहां पहुंचा, अभियुक्त खेम चंद ने उसके हाथ पर दरात से प्रहार किया और ललित कुमार नीचे गिर गया । उसके पश्चात् अभियुक्त उषा रानी ने उसके दाहिने पैर पर टोका से प्रहार किया । उसने यह स्वीकार किया है कि उसका मकान घटनास्थल से एक किलोमीटर की दूरी पर है ।

10. के. डी. शर्मा (अभि. सा. 14) ने अन्वेषण कार्य किया । अभियोजन पक्ष अभियुक्त-व्यक्तियों को पहुंची हुईं क्षतियों का स्पष्टीकरण नहीं दे पाया ।

प्रदर्श डी. ए. से यह सुस्पष्ट है कि खेम चंद को चार क्षतियां कायम हुई थीं और उन क्षतियों में से क्षति सं. 3 गंभीर प्रकृति की थी, जबकि क्षति सं. 4 धारदार आयुध द्वारा कारित की गई थी । उषा रानी की एमएलसी प्रदर्श डी. बी. के अनुसार उसे भी क्षतियां कायम हुई थीं । उसकी 9.45 बजे अपराह्न परीक्षा की गई थी । डा. शिवानंद कौशल द्वारा एमएलसी रिपोर्ट साबित की गई थी । के. डी. शर्मा (अभि. सा. 14) ने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह स्वीकार किया है कि पक्षकारों के बीच झगड़े के संबंध में सूचना पुलिस थाने पर किसी महिला द्वारा प्राप्त की गई थी । उसने इस प्रकार यह साबित किया है कि हरवन्ती प्रतिरक्षा साक्षी 1 जिसने घटना के बारे में पुलिस को सूचना दी । यद्यपि टोका पर मानव रक्त पाया गया था परंतु उसका रक्त समूह न्यायालयिक प्रयोगशाला विशेषज्ञ रिपोर्ट प्रदर्श पी. जी. के अनुसार उसका अभिनिश्चय नहीं किया जा सका ।

11. जगदीश (अभि. सा. 13) ने यह कहते हुए नया वृत्तांत दिया है कि जब वह घटनास्थल पर पहुंचा तब हंस राज और मोहिन्द्र कुमार आपस में लड़ रहे थे । हंस राज (अभि. सा. 1), ललित कुमार (अभि. सा. 3) और मोहिन्द्र कुमार (अभि. सा. 12) के कथनों के अनुसार अभिलेख पर यह भी प्रकट हुआ है कि रास्ते के इस्तेमाल के संबंध में पक्षकारों के बीच विवाद हुआ था । प्रतिरक्षा साक्षी 2 के कथन में यह प्रकट हुआ है कि वास्तव में मोहिन्द्र कुमार, ललित कुमार और हंस राज खेम चंद के प्रांगण में थे और डंडों से प्रहार कर रहे थे और उन्होंने उसे डंगा की ओर घसीटा था । टोका पर मानव रक्त नहीं पाया गया था । इससे अभियोजन पक्षकथन में संदेह उत्पन्न होता है । परिणामस्वरूप, यह अभिनिर्धारित किया गया है कि विचारण न्यायालय ने पक्षकारों द्वारा दिए गए साक्ष्य का सही रूप से मूल्यांकन किया है और सही निष्कर्ष पर पहुंचा है कि अभियोजन पक्ष अभियुक्तों के विरुद्ध युक्तियुक्त संदेह के परे अपने पक्षकथन को साबित करने में समर्थ नहीं हुआ है । इस प्रकार, 2001 के सेशन विचारण सं. 19 में विद्वान् सेशन न्यायाधीश, मंडी द्वारा तारीख 8 नवंबर, 2004 को पारित किए गए निर्णय पर किसी तरह हस्तक्षेप करना आवश्यक नहीं है ।

12. तद्नुसार, इसमें ऊपर उल्लिखित मताभिव्यक्तियों और चर्चाओं को ध्यान में रखते हुए इस अपील में कोई गुणागुण नहीं है और इसे खारिज किया जाता है । प्रत्यर्थियों-अभियुक्तों द्वारा निष्पादित किए गए जमानत पत्र उन्मोचित किए जाते हैं ।

अपील खारिज की गई ।

आर्य

अंग्रेज सिंह उर्फ **काका और एक अन्य**

बनाम

हिमाचल प्रदेश राज्य

तारीख 19 मार्च, 2012

न्यायमूर्ति सुरिन्दर सिंह

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 304 भाग 2 – हत्या की कोटि में न आने वाला आपराधिक मानव वध – जहां मामले के तथ्यों और साक्ष्य की गहन परीक्षा से यह स्पष्ट होता है कि अभियुक्त द्वारा मृतक के सिर पर एक ही घातक प्रहार इस जानकारी के साथ किया गया कि उससे मृत्यु कारित होना संभाव्य है किंतु यह मृत्यु कारित करने के आशय के बिना था, वहां अभियुक्त उक्त धारा के अधीन दंडित किए जाने का दायी है ।

इस मामले के तथ्य संक्षेप में इस प्रकार हैं कि शिकायतकर्ता तेजा सिंह तारीख 24 मार्च, 2003 को सायंकाल में लगभग 5/6 बजे अपने मामा गिरधारी लाल के साथ बस अड्डा, कोपरा आया । अशोक कुमार (मृतक) भी अपनी जीप से बस अड्डे पर आया था । बीर सिंह और अंग्रेज सिंह (अपीलार्थी) के बीच कुछ कहा-सुनी हो रही थी तथा अशोक कुमार (मृतक) ने बीच-बचाव किया । अंग्रेज सिंह ने दोनों हाथों से लकड़ी का एक टुकड़ा (पाचर) उठाई और अशोक कुमार के सिर पर दे मारी । क्षति पहुंचने पर वह बेहोश होकर घटनास्थल पर ही गिर पड़ा । उसके बाद अपीलार्थी केवल सिंह दौड़कर आया और तेजा सिंह के सिर पर प्रहार किया । शोर-शराबा सुनकर घटनास्थल पर बहुत सारे लोग इकट्ठा हो गए । अपीलार्थियों ने उस स्थान से जाते हुए शिकायतकर्ता पक्ष को गंभीर परिणाम भुगतने की धमकी दी । क्षतिग्रस्त अशोक कुमार को तुरंत अस्पताल ले जाया गया किंतु रास्ते में ही उसकी मृत्यु हो गई । पुलिस को दूरभाष से घटना के बारे में सूचित किया गया । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 154 के अधीन तेजा सिंह (क्षतिग्रस्त) का कथन अभिलिखित किया गया और उसके आधार पर भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 और 307 के अधीन अपराध के लिए प्रथम इत्तिला रिपोर्ट

दर्ज की गई । अभियुक्तों को गिरफ्तार किया गया । पुलिस ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 161 के अधीन साक्षियों के कथन अभिलिखित किए । उन्होंने तृतीय अभियुक्त गिरधारी लाल की भी संलिप्तता पाई । उसे भी गिरफ्तार किया गया । बाद में तीनों अभियुक्तों को जमानत दे दी गई । चालान पूर्ण करने के पश्चात् इसे पूर्वोक्त अपराधों के लिए अभियुक्तों के विरुद्ध प्रस्तुत किया गया । अभियुक्तों द्वारा अपने सामान्य आशय को अग्रसर करते हुए अशोक कुमार की मृत्यु कारित करने और तेजा सिंह को साधारण क्षति कारित करने के लिए प्रथमदृष्ट्या मामला पाए जाने पर उन्हें तद्नुसार भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 और 323 के अधीन आरोप-पत्रित किया गया । विद्वान् विचारण न्यायालय ने अभियुक्त गिरधारी लाल के विरुद्ध सटीक साक्ष्य नहीं पाया, इसलिए उसे दोषमुक्त कर दिया गया । तथापि, अभिलेख पर के साक्ष्य का मूल्यांकन करने के पश्चात् अभियुक्त अंग्रेज सिंह को अशोक कुमार का हत्या की कोटि में न आने वाला आपराधिक मानव वध कारित करने और अभियुक्त केवल सिंह को तेजा सिंह के माथे पर साधारण क्षति कारित करने के लिए दोषी पाया गया, इसलिए उनमें से प्रत्येक को दोषसिद्ध और दंडादिष्ट किया गया । अभियुक्तों ने विचारण न्यायालय के विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपील फाइल की । उच्च न्यायालय द्वारा अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – अभिलेख पर के साक्ष्य का अवलोकन करने के पश्चात् न्यायालय यह नहीं पाता है कि साक्षियों में से किसी भी साक्षी के पास अपना स्वार्थ सिद्ध करने और अभियुक्त को मामले में मिथ्या रूप से आलिप्त करने का कोई कारण था । तेजा सिंह शिकायतकर्ता और क्षतिग्रस्त साक्षी है । उसके परिसाक्ष्य को एकदम आसानी से नामंजूर नहीं किया जा सकता है, किंतु तथापि, उसके परिसाक्ष्य की एक साधारण मामले से अधिक संवीक्षा करना आवश्यक है । उसका कथन आरंभ में पुलिस द्वारा अस्पताल पहुंचकर अभिलिखित किया गया था । क्योंकि तेजा सिंह ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि जब वह गिरधारी लाल के साथ ट्रेक्टर पर बस अड्डा, कोपरा पहुंचा तो उसने अशोक कुमार (मृतक) और अभियुक्त अंग्रेज सिंह को आपस में झगड़ते हुए देखा । उसने बीर सिंह की मौजूदगी के बारे में भी कथन किया है । उसने स्पष्ट रूप से यह कथन किया है कि जब अंग्रेज सिंह और अशोक कुमार आपस में झगड़ा करने लगे तो उसने उनको अलग-अलग किया और फिर अभियुक्त अंग्रेज सिंह अपने घर चला गया और अपने भाई केवल सिंह के साथ आया । अंग्रेज सिंह ने एक

"खोखे" से एक "पाचर" प्रदर्श पी-6 उठाई और अशोक कुमार के सिर पर एक प्रहार किया और अशोक कुमार गिर पड़ा । उसने यह भी कथन किया है कि एक अन्य अभियुक्त केवल सिंह ने उसके सिर पर डंडे से प्रहार किया, जिसके परिणामस्वरूप उसे एक रक्तस्राव क्षति पहुंची और उसे जान से मारने की भी धमकी दी । इसके बाद वे (साक्षी) अशोक को उठाकर जीप में पुलिस थाने ले गए और उसके बाद नुरपुर स्थित अस्पताल ले गए, जहां डाक्टर ने उन्हें बताया कि उसकी पहले ही मृत्यु हो चुकी है । इस साक्षी ने डाक्टर द्वारा किए गए उसके अपने चिकित्सीय परीक्षण के बारे में भी कथन किया है और चिकित्सा विधिक प्रमाणपत्र प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए पर अपने हस्ताक्षरों को साबित किया है । उसने यह भी कथन किया है कि पुलिस ने उसका कथन अभिलिखित किया था और अभियुक्तों को गिरफ्तार किया था । उसने "पाचर" प्रदर्श पी-6 की भी शनाख्त की, जिससे अभियुक्त अंग्रेज सिंह ने मृतक अशोक कुमार पर प्रहार किया था । इस साक्षी की सतर्कतापूर्वक प्रतिपरीक्षा की गई थी किंतु कोई तात्विक बात नहीं निकल सकी । जिस रीति में मृतक और अभियुक्त अंग्रेज सिंह कथित रूप से झगड़ रहे थे, उनमें गर्मागर्म कहा-सुनी हो रही थी । "पाचर" प्रदर्श पी-6 की शनाख्त को विवादग्रस्त नहीं किया गया है । उपरोक्त कथन की संपुष्टि अभि. सा.4 बीर सिंह और 5 गिरधारी लाल द्वारा की गई है । उनके नामों का प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में भी उल्लेख है । सुसंगत समय पर घटनास्थल पर उनकी मौजूदगी को भी विवादग्रस्त नहीं किया गया है और उनकी प्रतिपरीक्षा में भी ऐसी कोई तात्विक कमी सामने नहीं लाई जा सकी, जिससे या तो अभियोजन के पक्षकथन को नामंजूर किया जा सके या इन साक्षियों पर विश्वास न किया जा सके । कुल मिलाकर, इन साक्षियों ने प्रतिरक्षा में प्रस्तुत की गई इस दलील से इनकार किया है कि वह शिकायकर्ता पक्ष ही था जिसने अंधेरे में डंडे से आक्रमण किया था और अपने ही सदस्य पर प्रहार कर दिया था । अंग्रेज सिंह द्वारा मृतक के सिर पर प्रदर्श पी-6 प्रहार करने की बाबत प्रत्येक साक्षी ने स्पष्ट कथन किया है जो घातक साबित हुआ और यह साबित किया गया है कि केवल सिंह ने डंडे प्रदर्श पी-1 द्वारा तेजा सिंह को साधारण क्षति कारित की थी । इसके अतिरिक्त, डा. पी. के. अहलूवालिया ने "पाचर" प्रदर्श पी-6 से मृतक को घातक क्षति कारित करने की संभाव्यता से इनकार नहीं किया है । इसी प्रकार, डा. सुषमा शर्मा ने तेजा सिंह के शरीर पर पाई गई क्षति डंडे प्रदर्श पी-1 से कारित होने की संभाव्यता के बारे में कथन किया है । "पाचर" प्रदर्श पी-6 अभियुक्त अंग्रेज सिंह द्वारा बरामद कराई गई थी और डंडा प्रदर्श पी-1 केवल सिंह द्वारा बरामद कराया गया था । बरामदगी का

तथ्यात्मक स्थिति में केवल संपुष्टिकारी महत्व है, जिसकी विस्तार से चर्चा करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि घटना में इन आयुधों का पूर्वोक्त अनुसार प्रयोग भी विवादग्रस्त नहीं है । अन्यथा भी, प्रश्नगत घटना के साथ इन आयुधों का संबंध होना साबित किया गया है । किसी भी साक्षी के समक्ष ऐसी कोई बात नहीं रखी गई थी जिससे यह दर्शित होता हो कि वे मामले की सफलता में हितबद्ध थे और अति सावधानीपूर्वक संवीक्षा करने पर न्यायालय ने इसमें कोई कमी नहीं पाई है । इसके अतिरिक्त, न्यायालय प्रथम इत्तिला रिपोर्ट, जो अभिलिखित की गई थी और उसी दिन इलाका मजिस्ट्रेट द्वारा प्राप्त की गई थी, दर्ज कराने में भी कोई विलंब हुआ नहीं पाता है । यद्यपि अभि. सा. 3 ने यह कथन किया है कि वे पहले पुलिस थाने गए थे और इसके बाद अस्पताल गए थे, किंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि उनके द्वारा कहानी गढ़ी गई थी । हालांकि क्षतिग्रस्त को बचाना सर्वोच्च प्राथमिकता थी और प्रतिपरीक्षा में ऐसी कोई बात निकलकर नहीं आई कि उन्होंने पुलिस से सांठगांठ की थी । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन किए गए कथनों में यथा उल्लिखित किसी रास्ते को लेकर विवाद की कहानी के बारे में भी किसी साक्षी के समक्ष कोई बात नहीं रखी गई थी । इस प्रकार, पूर्वोक्त साक्ष्य तथा इस तथ्य की विवेचनात्मक परीक्षा करने पर कि अभियुक्त अंग्रेज सिंह द्वारा सिर पर एक घातक प्रहार इस ज्ञान के साथ किया गया था कि इससे मृत्यु कारित होना संभाव्य है, किंतु मृत्यु कारित करने या ऐसी शारीरिक क्षति जिससे मृत्यु होना संभाव्य है, कारित करने के आशय के बिना किया गया था और इसके अतिरिक्त केवल सिंह ने तेजा सिंह के सिर पर डंडे से प्रहार किया था जिससे साधारण क्षति कारित हुई । न्यायालय की सुविचारित राय में, विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा प्रत्येक अभियुक्त-अपीलार्थी को पूर्वोक्त अनुसार ठीक ही दोषसिद्ध किया गया है । सिद्धदोष व्यक्तियों की ओर से विद्वान् काउंसेल ने नरमी बरतने की प्रार्थना की है । न्यायालय ने उसकी प्रार्थना पर विचार किया है । अभियुक्त केवल सिंह के विरुद्ध पारित किए गए दंडादेश में कोई कमी करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि वह दंडादेश भुगत चुका है और जुर्माना जमा कर दिया है, किंतु अंग्रेज सिंह, जिसकी अभिकथित घटना के समय आयु केवल 24 वर्ष थी और प्रश्नगत घटना पक्षकारों के बीच हुई गर्मागर्म बहस का परिणाम थी, पर अधिरोपित दंडादेश को दृष्टिगत करते हुए जुर्माने के साथ छेड़छाड़ किए बिना उसके मूल दंडादेश को कम करके चार वर्ष किया जाता है । इस सीमा तक दंडादेश को उपांतरित किया जाता है । (पैरा 20, 21, 22, 24, 25 और 26)

अवलंबित निर्णय

		पैरा
[2012]	(2012) 2 एस. सी. सी. 553: **अमित** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** ।	23

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2005 की दांडिक अपील सं. 190.

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 374 के अधीन अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से	श्री एन. एस. चंदेल और सुश्री कांता ठाकुर
प्रत्यर्थी की ओर से	सर्वश्री अंशुल बंसल, अपर महाधिवक्ता और आर. पी. सिंह, सहायक महाधिवक्ता

न्यायमूर्ति सुरिन्दर सिंह – अपीलार्थी, 2004 के सेशन मामला सं. 60-एन/vii/03/से. वि. सं. 3 जिसका विनिश्चय तारीख 25/26 अप्रैल, 2005 को किया गया, में विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा उनके विरुद्ध पारित किए गए उस दोषसिद्धि के निर्णय से व्यथित हुए हैं, जिसके द्वारा अपीलार्थी अंग्रेज सिंह को भारतीय दंड संहिता की धारा 304 भाग 2 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए पांच वर्ष का कठोर कारावास भोगने और 25,000/- रुपए के जुर्माने का संदाय करने तथा एक अन्य अपीलार्थी केवल सिंह को भारतीय दंड संहिता की धारा 323 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए उस अवधि का कारावास जो उसके द्वारा पहले ही भोगी गई है और 1,000/- रुपए के जुर्माने का संदाय करने का दंडादेश, व्यतिक्रम खंड के साथ, दिया गया है । जुर्माने की वसूली होने की दशा में इसे प्रतिकर के रूप में मृतक अशोक कुमार के विधिक उत्तराधिकारियों को संदत्त किए जाने का आदेश किया गया है । इसीलिए यह अपील फाइल की गई है ।

2. संक्षेप में, अभियोजन का वृत्तांत इस प्रकार है । अभि. सा. 3, शिकायतकर्ता तेजा सिंह तारीख 24 मार्च, 2003 को ट्रेक्टर के श्रमिक-सह-चालक के रूप में कार्य कर रहा था । सायंकाल में लगभग 5/6 बजे वह अपने मामा अभि. सा. 5 गिरधारी लाल के साथ बस अड्डा, कोपरा आया । अशोक कुमार (मृतक) भी अपनी जीप से बस अड्डे पर आया था । अभि. सा. 4 बीर सिंह और अंग्रेज सिंह के बीच कुछ कहा-सुनी हो रही थी तथा अशोक कुमार (मृतक) ने बीच-बचाव किया । अंग्रेज सिंह ने दोनों

हाथों से लकड़ी का एक टुकड़ा (पाचर), प्रदर्श पी-6, उठाई और अशोक कुमार के सिर पर मारी । क्षति पहुंचने पर वह बेहोश होकर घटनास्थल पर ही गिर पड़ा । उसके बाद अपीलार्थी केवल सिंह दौड़कर आया और अभि. सा. 3 तेजा सिंह के सिर पर प्रहार किया । शोर-शराबा सुनकर घटनास्थल पर बहुत सारे लोग इकट्ठा हो गए । अपीलार्थियों ने चेतावनी दी और उस स्थान से जाते हुए उन्होंने शिकायतकर्ता पक्ष को गंभीर परिणाम भुगतने की धमकी दी ।

3. क्षतिग्रस्त अशोक कुमार को तुरंत उसकी जीप में अस्पताल ले जाया गया किंतु रास्ते में ही उसकी मृत्यु हो गई । डाक्टर ने "मृत लाया गया" की रिपोर्ट दी ।

4. पुलिस को दूरभाष से घटना के बारे में सूचित किया गया । अभि. सा. 21 निरीक्षक आर. पी. जसवाल अपराह्न के लगभग 9.35 बजे अस्पताल आया और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 154 के अधीन तेजा सिंह का कथन, प्रदर्श पी.डब्ल्यू. 3/बी अभिलिखित किया और उसके आधार पर भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 और 307 के अधीन अपराध के लिए प्रथम इत्तिला रिपोर्ट, प्रदर्श पी.डब्ल्यू. 6/ए, दर्ज की गई ।

5. अन्वेषण के दौरान घटनास्थल का निरीक्षण किया गया । तात्विक साक्षियों की मौजूदगी में स्थल नक्शा, प्रदर्श पी.डब्ल्यू. 21/ए, तैयार किया गया । शव के फोटो भी लिए गए और पुलिस ने मृत्यु-समीक्षा कागजात भी तैयार किए ।

6. पुलिस के अनुरोध पर अभि. सा. 2 डा. पी. के. अहलूवालिया द्वारा शव की शव-परीक्षा की गई । शव का परीक्षण करने पर उसे माथे पर दाईं भौंह के एक अंगुली ऊपर 3 से. मी. x 0.5 से. मी. का एक विदीर्ण घाव तथा दांए पार्श्विक अस्थिप्रोत्थ पर 4 से. मी. x 1 से. मी. x 1 से. मी. का दबे हुए अस्थिभंग के साथ एक अन्य विदीर्ण घाव पाया । बाएं पार्श्विक अस्थिप्रोत्थ के नीचे बाईं भित्तिकास्थि और अस्थि चिप खोपड़ी में अंतः रक्तस्राव के साथ मस्तिष्क के उत्तक में सन्निहित थी । डाक्टर ने दोनों नथुनों और दाएं कान से रक्तस्राव हुआ भी पाया । डाक्टर की राय में मृत्यु का कारण मस्तिष्क में दबा हुआ अस्थिभंग और क्षति थी जिसकी वजह से खोपड़ी में हुए अंतः रक्तस्राव के कारण सदमा पहुंचा जो अनुत्क्रमणीय था और उसकी वजह से मृत्यु हुई और डाक्टर ने क्षति सं. 2

के बारे में यह भी राय व्यक्त की कि यह क्षति ''पाचर'' प्रदर्श पी-6 से कारित की जा सकती थी । पूर्वोक्त क्षतियां मृत्यु-पूर्व कारित की गई पाई गई थीं । क्षति पहुंचने और मृत्यु होने के बीच की संभाव्य अवधि कुछ ही मिनट थी और मृत्यु तथा मरणोत्तर परीक्षा के बीच की अवधि 24 घंटे थी । मरणोत्तर परीक्षा रिपोर्ट प्रदर्श पी.डब्ल्यू. 2/सी है । विसरा भी संरक्षित रखा गया और परीक्षण के लिए भेजा गया था ।

(रेखांकन बल देने के लिए)

7. तारीख 24 मार्च, 2003 को लगभग 8.30 बजे अभि. सा. 1 डा. सुषमा शर्मा द्वारा क्षतिग्रस्त तेजा सिंह का भी परीक्षण किया गया था । उसके माथे के मध्य में 3 से. मी. x 0.5 से. मी. का एक विदीर्ण घाव पाया और रक्तस्राव भी मौजूद पाया । क्षतिग्रस्त को सिर का सी. टी. स्कैन करवाने का परामर्श दिया गया, किंतु विकिरण विज्ञानी द्वारा दी गई रिपोर्ट के अनुसार यह एक सामान्य अध्ययन था । उसने इस आशय का चिकित्सा विधिक प्रमाणपत्र, प्रदर्श पी.डब्ल्यू.1/ए जारी किया । उसने प्रमाणित किया कि प्रश्नगत क्षति डंडे, प्रदर्श पी-1 से कारित की जा सकती थी ।

8. पुलिस ने घटनास्थल से प्रदर्श पी.डब्ल्यू. 4/बी द्वारा एक माचिस की डिब्बी में रक्तरंजित मिट्टी और इसके साथ-साथ प्रदर्श पी.डब्ल्यू. 4/ए द्वारा कमीज के पांच बटन तथा रक्तरंजित छोटा-सा पत्थर भी उठाया और न्यायालयिक परीक्षण के लिए भेजा गया । अपीलार्थियों, जिन्हें इसमें इसके पश्चात् ''अभियुक्त'' कहा गया है, को तारीख 25 मार्च, 2003 को गिरफ्तार किया गया । उनका भी चिकित्सीय परीक्षण कराया गया ।

9. साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अधीन अभिलिखित किए गए कथन के अनुसरण में अभियुक्त अंग्रेज सिंह ने ''पाचर'' (लकड़ी का टुकड़ा) बरामद कराई, जो झाड़ियों के नीचे छिपाकर रखी गई थी । इसके फोटो लिए गए और इसे ज्ञापन प्रदर्श पी.डब्ल्यू. 21/डी द्वारा कब्जे में लिया गया । ''पाचर'' पर एक तरफ दो जगह रक्त के धब्बों के साथ-साथ दूसरी तरफ कुछ बाल भी थे और इन बालों को उठाया गया और इसका नक्शा, प्रदर्श पी.डब्ल्यू. 11/बी भी बनाया गया और इसे मुहरबंद किया गया तथा ज्ञापन प्रदर्श पी.डब्ल्यू. 21/एफ द्वारा कब्जे में लिया गया ।

10. अभियुक्त केवल सिंह ने भी अपने प्रकटन कथन के अनुसरण में डंडा, प्रदर्श पी-1 बरामद कराया और इसका नक्शा, प्रदर्श पी.डब्ल्यू. 9/बी बनाने के पश्चात् इसे ज्ञापन प्रदर्श पी.डब्ल्यू. 21/एच द्वारा कब्जे में लिया गया ।

11. पुलिस ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 161 के अधीन साक्षियों के कथन अभिलिखित किए । उन्होंने तृतीय अभियुक्त गिरधारी लाल की भी संलिप्तता पाई । उसे भी गिरफ्तार किया गया । बाद में तीनों अभियुक्तों को जमानत दे दी गई ।

12. न्यायालयिक रिपोर्टें प्रदर्श पीए और पीबी भी प्राप्त हुईं । चालान पूर्ण करने के पश्चात् इसे पूर्वोक्त अपराधों के लिए अभियुक्तों के विरुद्ध प्रस्तुत किया गया ।

13. अभियुक्तों द्वारा अपने सामान्य आशय को अग्रसर करते हुए अशोक कुमार की मृत्यु कारित करने और तेजा सिंह को साधारण क्षति कारित करने के लिए प्रथमदृष्ट्या मामला पाए जाने पर उन्हें तद्नुसार भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 और 323 के अधीन आरोप-पत्रित किया गया । उन्होंने दोषी न होने का अभिवाक् किया और विचारण का दावा किया ।

14. अभियोजन पक्ष ने अपने पक्षकथन को साबित करने के लिए औपचारिक साक्षियों और अन्वेषक अधिकारी के अतिरिक्त, अभि. सा. 3 क्षतिग्रस्त तेजा सिह, अभि. सा. 4 बीर सिंह और अभि. सा. 5 गिरधारी लाल तथा अभि. सा. 3 और मृतक अशोक कुमार के शरीर पर पाई गई क्षतियों को साबित करने के लिए अभि. सा. 1 डा. सुषमा शर्मा और अभि. सा. 2 डा. पी. के. अहलूवालिया की भी परीक्षा कराई ।

15. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन अभियुक्तों के कथन भी अलग-अलग अभिलिखित किए गए । प्रत्येक अभियुक्त पर उनके विरुद्ध विद्यमान पाई गई परिस्थितियों को अधिरोपित किया गया । उन्होंने यह अभिकथन किया कि एक रास्ते की बाबत अभि. सा. 3 तेजा सिंह के साथ विवाद चल रहा था जिसकी वजह से उन्हें मामले में मिथ्या रूप से आलिप्त किया गया । जब उन्हें अपनी प्रतिरक्षा में साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए कहा गया तो उन्होंने कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया ।

16. विद्वान् विचारण न्यायालय ने अभियुक्त गिरधारी लाल के विरुद्ध सटीक साक्ष्य नहीं पाया, इसलिए उसे दोषमुक्त कर दिया गया । तथापि, अभिलेख पर के साक्ष्य का मूल्यांकन करने के पश्चात् अभियुक्त अंग्रेज सिंह को अशोक कुमार की हत्या की कोटि में न आने वाला आपराधिक मानव वध कारित करने और अभियुक्त केवल सिंह को अभि. सा. 3 तेजा सिंह के माथे पर साधारण क्षति कारित करने के लिए दोषी पाया गया,

इसलिए उनमें से प्रत्येक को पूर्वोक्त अनुसार दोषसिद्ध और दंडादिष्ट किया गया ।

17. विद्वान् काउंसेल श्री एन. एस. चंदेल ने सुश्री कांता ठाकुर द्वारा की गई सम्यक् सहायता से जोरदार रूप से यह दलील दी कि अभिलेख पर प्रस्तुत किए गए साक्ष्य से यह प्रकट होता है कि घटनास्थल पर बहुत सारे प्रत्यक्षदर्शी साक्षी मौजूद थे किंतु पुलिस ने हितबद्ध साक्षियों के सिवाय उनमें से किसी साक्षी की परीक्षा कराना उचित नहीं समझा और इसके अतिरिक्त प्रथम इत्तिला रिपोर्ट विलंब से दर्ज कराई गई थी, क्योंकि अभि. सा. 3 क्षतिग्रस्त और मृतक अशोक कुमार को पहले पुलिस थाने और उसके बाद अस्पताल ले जाया गया था और इस प्रकार शिकायतकर्ता पक्ष के पास अभियुक्तों के विरुद्ध मामला गढ़ने का अवसर था । विद्वान् विचारण न्यायालय ने मामले के महत्वपूर्ण पहलू की अनदेखी की है, इसलिए दोषसिद्धि विधि की दृष्टि से दूषित है ।

18. इसके विपरीत, विद्वान् अपर महाधिवक्ता श्री ए. के. बंसल ने विद्वान् सहायक महाधिवक्ता श्री आर. पी. सिंह की सम्यक् सहायता से दोषसिद्धि और दंडादेश के आक्षेपित निर्णय का समर्थन किया और यह दलील दी कि दोषसिद्धि और दंडादेश का निर्णय साक्ष्य के उचित मूल्यांकन पर आधारित है ।

19. मैंने पक्षकारों की विरोधी दलीलों पर गंभीरता से विचार किया है और अभिलेख पर के साक्ष्य का सावधानी और सतर्कता पूर्वक पुनर्मूल्यांकन किया है ।

20. अभिलेख पर के साक्ष्य का अवलोकन करने के पश्चात् मैं यह नहीं पाता हूं कि साक्षियों में से किसी भी साक्षी के पास अपना स्वार्थ सिद्ध करने और अभियुक्त को मामले में मिथ्या रूप से आलिप्त करने का कोई कारण है । अभि. सा. 3 तेजा सिंह शिकायतकर्ता और क्षतिग्रस्त साक्षी है । उसके परिसाक्ष्य को एकदम आसानी से नामंजूर नहीं किया जा सकता है, किंतु तथापि, उसके परिसाक्ष्य की एक साधारण मामले से अधिक संवीक्षा करना आवश्यक है । उसका कथन आरंभ में पुलिस द्वारा अस्पताल पहुंचकर अभिलिखित किया गया था । क्योंकि अभि. सा. 3 ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि जब वह अभि. सा. 5 गिरधारी लाल के साथ ट्रेक्टर पर बस अड्डा, कोपरा पहुंचा तो उसने अशोक कुमार (मृतक) और अभियुक्त अंग्रेज सिंह को आपस में झगड़ते हुए देखा । उसने अभि. सा. 4 बीर सिंह की मौजूदगी के बारे में भी कथन किया है । उसने स्पष्ट रूप से

यह कथन किया है कि जब अंग्रेज सिंह और अशोक कुमार आपस में झगड़ा करने लगे तो उसने उनको अलग-अलग किया और फिर अभियुक्त अंग्रेज सिंह अपने घर चला गया और अपने भाई केवल सिंह के साथ आया । अंग्रेज सिंह ने एक "खोखे" से एक "पाचर" प्रदर्श पी-6 उठाई और अशोक कुमार के सिर पर एक प्रहार किया और अशोक कुमार गिर पड़ा । उसने यह भी कथन किया है कि एक अन्य अभियुक्त केवल सिंह ने उसके सिर पर डंडे से प्रहार किया, जिसके परिणामस्वरूप उसे एक रक्तस्राव क्षति पहुंची और उसे जान से मारने की भी धमकी दी । इसके बाद वे (साक्षी) अशोक को उठाकर जीप में पुलिस थाने ले गए और उसके बाद नुरपुर स्थित अस्पताल ले गए, जहां डाक्टर ने उन्हें बताया कि उसकी पहले ही मृत्यु हो चुकी है । इस साक्षी ने डाक्टर द्वारा किए गए उसके अपने चिकित्सीय परीक्षण के बारे में भी कथन किया है और चिकित्सा विधिक प्रमाणपत्र, प्रदर्श पी.डब्ल्यू. 1/ए पर अपने हस्ताक्षरों को साबित किया है । उसने यह भी कथन किया है कि पुलिस ने उसका कथन अभिलिखित किया था और अभियुक्तों को गिरफ्तार किया था । उसने "पाचर" प्रदर्श पी-6 की भी शनाख्त की, जिससे अभियुक्त अंग्रेज सिंह ने मृतक अशोक कुमार पर प्रहार किया था । इस साक्षी की सतर्कतापूर्वक प्रतिपरीक्षा की गई थी किंतु कोई तात्विक बात नहीं निकल सकी । जिस रीति में मृतक और अभियुक्त अंग्रेज सिंह कथित रूप से झगड़ रहे थे, उनमें गर्मागर्म कहासुनी हो रही थी । "पाचर" प्रदर्श पी-6 की शनाख्त को विवादग्रस्त नहीं किया गया है । उपरोक्त कथन की संपुष्टि अभि. सा. 4 बीर सिंह और अभि. सा. 5 गिरधारी लाल द्वारा की गई है । उनके नामों का प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में भी उल्लेख है । सुसंगत समय पर घटनास्थल पर उनकी मौजूदगी को भी विवादग्रस्त नहीं किया गया है और उनकी प्रतिपरीक्षा में भी ऐसी कोई तात्विक कमी सामने नहीं लाई जा सकी, जिससे या तो अभियोजन के पक्षकथन को नामंजूर किया जा सके या इन साक्षियों पर विश्वास न किया जा सके । कुल मिलाकर, इन साक्षियों ने प्रतिरक्षा में प्रस्तुत की गई इस दलील से इनकार किया है कि वह शिकायकर्ता पक्ष ही था जिसने अंधेरे में डंडे से आक्रमण किया था और अपने ही सदस्य पर प्रहार कर दिया था । अंग्रेज सिंह द्वारा मृतक के सिर पर प्रदर्श पी-6 से प्रहार करने की बाबत प्रत्येक साक्षी ने स्पष्ट कथन किया है जो घातक साबित हुआ और यह साबित किया गया है कि केवल सिंह ने डंडे प्रदर्श पी-1 द्वारा अभि. सा. 3 तेजा सिंह को साधारण क्षति कारित की थी ।

21. इसके अतिरिक्त, अभि. सा. 2 डा. पी. के. अहलूवालिया ने

"पाचर" प्रदर्श पी-6 से मृतक को घातक क्षति कारित करने की संभाव्यता से इनकार नहीं किया है । इसी प्रकार, अभि. सा. 1 डा. सुषमा शर्मा ने अभि. सा. 3 तेजा सिंह के शरीर पर पाई गई क्षति डंडे, प्रदर्श पी-1 से कारित होने की संभाव्यता के बारे में कथन किया है ।

22. "पाचर" प्रदर्श पी-6 अभियुक्त अंग्रेज सिंह द्वारा बरामद कराई गई थी और डंडा, प्रदर्श पी-1 केवल सिंह द्वारा बरामद कराया गया था । बरामदगी का तथ्यात्मक स्थिति में केवल संपुष्टिकारी महत्व है, जिसकी विस्तार से चर्चा करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि घटना में इन आयुधों का पूर्वोक्त अनुसार प्रयोग भी विवादग्रस्त नहीं है । अन्यथा भी, प्रश्नगत घटना के साथ इन आयुधों का संबंध होना साबित किया गया है । किसी भी साक्षी के समक्ष ऐसी कोई बात नहीं रखी गई थी जिससे यह दर्शित होता हो कि वे मामले की सफलता में हितबद्ध थे और अति सावधानीपूर्वक संवीक्षा करने पर मैंने इसमें कोई कमी नहीं पाई है ।

23. **अमित** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि हितबद्ध साक्षियों का बाह्य कारणों से अभियुक्त को दोषसिद्ध कराने में हित होना चाहिए, किंतु पूर्वोक्त साक्षियों की प्रतिपरीक्षा से ऐसा कोई बाह्य कारण दर्शित नहीं होता है जिसकी वजह से वे अभियुक्तों को मिथ्या रूप से आलिप्त करने में हितबद्ध हो सकते थे ।

24. इसके अतिरिक्त, मैं प्रथम इत्तिला रिपोर्ट, जो अभिलिखित की गई थी और उसी दिन इलाका मजिस्ट्रेट द्वारा प्राप्त की गई थी, दर्ज कराने में भी कोई विलंब हुआ नहीं पाता हूं । यद्यपि अभि. सा. 3 ने यह कथन किया है कि वे पहले पुलिस थाने गए थे और इसके बाद अस्पताल गए थे, किंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि उनके द्वारा कहानी गढ़ी गई थी । क्षतिग्रस्त को बचाना सर्वोच्च प्राथमिकता थी और प्रतिपरीक्षा में ऐसी कोई बात निकलकर नहीं आई कि उन्होंने पुलिस से सांठगांठ की थी । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन किए गए कथनों में यथा उल्लिखित किसी रास्ते को लेकर विवाद की कहानी के बारे में भी किसी साक्षी के समक्ष कोई बात नहीं रखी गई थी ।

25. इस प्रकार, पूर्वोक्त साक्ष्य तथा इस तथ्य की विवेचनात्मक परीक्षा करने पर कि अभियुक्त अंग्रेज सिंह द्वारा सिर पर एक घातक प्रहार इस ज्ञान के साथ किया गया था कि इससे मृत्यु कारित होना संभाव्य है, किंतु

---

[1] (2012) 2 एस. सी. सी. 553.

मृत्यु कारित करने या ऐसी शारीरिक क्षति जिससे मृत्यु होना संभाव्य है, कारित करने के आशय के बिना किया गया था और इसके अतिरिक्त केवल सिंह ने अभि. सा. 3 तेजा सिंह के सिर पर डंडे से प्रहार किया था जिससे साधारण क्षति कारित हुई । मेरी सुविचारित राय में, विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा प्रत्येक अभियुक्त-अपीलार्थी को पूर्वोक्त अनुसार ठीक ही दोषसिद्ध किया गया है ।

26. सिद्धदोष व्यक्तियों की ओर से विद्वान् काउंसेल ने नरमी बरतने की प्रार्थना की है । मैंने उसकी प्रार्थना पर विचार किया है । अभियुक्त केवल सिंह के विरुद्ध पारित किए गए दंडादेश में कोई कमी करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि वह दंडादेश भुगत चुका है और जुर्माना जमा कर दिया है, किंतु अंग्रेज सिंह, जिसकी अभिकथित घटना के समय आयु केवल 24 वर्ष थी और प्रश्नगत घटना पक्षकारों के बीच हुई गर्मागर्म बहस का परिणाम थी, पर अधिरोपित दंडादेश को दृष्टिगत करते हुए जुर्माने के साथ छेड़छाड़ किए बिना उसके मूल दंडादेश को कम करके चार वर्ष किया जाता है । इस सीमा तक दंडादेश को उपांतरित किया जाता है ।

27. यह बताया गया है कि दोनों अभियुक्तों द्वारा जुर्माने की रकम जमा करा दी गई है । केवल सिंह का दंडादेश भुगत लेने पर पहले ही पूर्ण हो चुका है, किंतु अंग्रेज सिंह पर अधिरोपित दंडादेश को इस न्यायालय द्वारा तारीख 10 मई, 2005 के आदेश द्वारा निलंबित किया गया था । इस प्रकार, उसे (अंग्रेज सिंह) शेष दंडादेश भुगतने के लिए तारीख 18 अप्रैल, 2012 को विद्वान् विचारण न्यायालय के समक्ष अभ्यर्पण करने का आदेश दिया जाता है और अभ्यर्पण नहीं करने पर विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा इस निर्णय की अनुरूपता में उसे कारागार के सुपुर्द करने के लिए प्रपीड़क उपाय किए जाएंगे । अन्वेषण/विचारण के दौरान उसके द्वारा पहले ही भोगी गई अवधि का दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 428 के उपबंधों के अनुसार मुजरा किया जाएगा । जुर्माने की रकम की अदायगी विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा दिए गए निदेशानुसार की जाएगी । यह अपील सिद्धदोष/अभियुक्त अंग्रेज सिंह के विरुद्ध यथा पारित दंडादेश में उपरोक्त उपांतरण के साथ खारिज की जाती है ।

अपील खारिज की गई ।

जस.

श्याम वर्मा

बनाम

हिमाचल प्रदेश राज्य

तारीख 26 मार्च, 2012

न्यायमूर्ति कुलदीप सिंह

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 311 साक्षियों को समन करने और परीक्षा करने की शक्ति – न्यायालय अभियोजन के साक्ष्य की समाप्ति के पश्चात् भी विचारण के किसी प्रक्रम पर किसी व्यक्ति को साक्षी के रूप में समन करने और परीक्षा करने के लिए धारा 311 के अधीन सशक्त है, अतः, विचारण न्यायालय द्वारा किए गए विवेकाधिकार के प्रयोग को गलत और अवैध नहीं कहा जा सकता ।

मामले के संक्षेप में तथ्य इस प्रकार हैं कि याची दंड संहिता की धारा 406 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए विचारण का सामना कर रहा है । अभियोजन पक्ष ने सतपाल नामक व्यक्ति सहित 11 साक्षियों का हवाला दिया है परंतु अभियोजन पक्ष ने केवल 6 साक्षियों की परीक्षा की है । विचारण न्यायालय ने अभियोजन पक्ष को अपना साक्ष्य पेश करने के लिए कई अवसर दिए किंतु ऐसा अवसर दिए जाने के बावजूद भी अभियोजन पक्ष 6 साक्षियों से अधिक साक्षियों की परीक्षा नहीं करा सका । विचारण न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन याची के कथन जिसे तारीख 8 सितंबर, 2010 को अभिलिखित किया गया था जिसके आधार पर मामले को सूचीबद्ध करते हुए तारीख 1 जुलाई, 2010 को अभियोजन पक्ष के साक्ष्य को समाप्त कर दिया गया था । मामले पर अंतिम दलील देने के लिए 16 सितंबर, 2010 की तारीख नियत की गई थी । तारीख 16 सितंबर, 2010 को अभियोजन पक्ष ने सतपाल, सुरजीत सिंह, सुरेश कुमार, रंजीत सिंह और मदन लाल की परीक्षा करने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 311 के अधीन आवेदन प्रस्तुत किया था । याची द्वारा आवेदन का विरोध किया गया था । विचारण न्यायालय द्वारा तारीख 28 दिसंबर, 2010 को आवेदन भागतः मंजूर किया गया था और अभियोजन पक्ष को साक्षी के रूप में सतपाल की परीक्षा करने के लिए अनुज्ञात किया गया था । इस याचिका में तारीख 28 दिसंबर, 2010 के

आदेश को आक्षेपित किया गया है । यह कथन किया गया है कि जब एक बार तारीख 1 जुलाई, 2010 के आदेश के द्वारा अभियोजन पक्ष का साक्ष्य समाप्त कर दिया गया तब मामला अंतिम हो गया था, अभियोजन पक्ष को उसी साक्षी की परीक्षा करने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 311 के अधीन अनुज्ञा प्रदान नहीं की जा सकती है जिसे पूर्व में तारीख 1 जुलाई, 2010 के आदेश द्वारा परीक्षा किए जाने के लिए अनुज्ञात नहीं किया गया था । इस याचिका में इस अनुरोध को स्वीकार किए जाने की बात कही गई थी । उच्च न्यायालय द्वारा याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – अभियोजन का साक्ष्य तारीख 1 जुलाई, 2010 को समाप्त कर दिया गया था और इसलिए, आदेश अंतिम हो गया था । तारीख 28 दिसंबर, 2010 का आदेश तारीख 1 जुलाई, 2010 के आदेश के पुनर्विलोकन किए जाने की कोटि में आता है जो अनुज्ञेय नहीं है । इस दलील में कोई बल नहीं है । संहिता की धारा 311 विचारण के किसी भी प्रक्रम पर साक्षी के रूप में किसी व्यक्ति को समन भेजे जाने हेतु न्यायालय को प्राधिकृत करता है । ऐसी शक्ति अभियोजन साक्ष्य को समाप्त होने के पश्चात् भी न्यायालय को उपलब्ध है । शैलेन्द्र कुमार वाले मामले में न्यायालय के आदेश द्वारा अभियोजन साक्ष्य समाप्त कर दिया गया था । अपर सेशन न्यायाधीश ने तारीख 20 सितंबर, 1995 को आदेश पारित करके तारीख 3 सितंबर, 1994 के आदेश को वापस मंगाया जिसके द्वारा अभियोजन साक्ष्य को समाप्त किए जाने का निदेश किया गया था । उन्होंने सुनवाई के दूसरे दिन साक्षियों को पेश करने के लिए सहायक लोक अभियोजक को निदेश भी दिया था । उक्त आदेश को उच्च न्यायालय में चुनौती दी गई थी । उच्च न्यायालय ने तारीख 1 फरवरी, 2000 के आदेश द्वारा इस आधार पर पुनरीक्षण आवेदन को मंजूर कर लिया कि दांडिक न्यायालय अपने पूर्ववर्ती आदेश को पुनः वापस नहीं मंगा सकता है । तारीख 12 मई, 2000 को राज्य ने साक्षियों की परीक्षा किए जाने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 311 के अधीन आवेदन फाइल किया । इस आवेदन को इस आधार पर तारीख 2 जून, 2000 को खारिज कर दिया गया था कि पुनरीक्षण आवेदन में उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए आदेश को ध्यान में रखते हुए उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए आदेश का कोई अर्थ नहीं निकलता है और इस मामले को उच्च न्यायालय में ले जाया गया जिसे इस आधार पर भी खारिज कर दिया गया कि उच्च न्यायालय के लिए यह उचित नहीं है कि सेशन न्यायाधीश द्वारा पारित किए गए आदेश पर हस्तक्षेप करे । उसके पश्चात् मामले को उच्चतम

न्यायालय ले जाया गया था । यह दलील दी गई थी कि उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 1 फरवरी, 2000 को पारित किया गया आदेश अवैध था । उच्चतम न्यायालय द्वारा उपरोक्त उल्लिखित निर्णय में इस दलील को अस्वीकार कर दिया गया था । वर्तमान मामले में विचारण न्यायालय द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 311 के अधीन राज्य के आवेदन को अभिलेख सहित सतपाल की परीक्षा करने के लिए मंजूर कर लिया गया । विचारण न्यायालय द्वारा प्रयुक्त किए गए विवेक को गलत, अवैध होना नहीं कहा जा सकता है । याची को साक्षी से प्रतिपरीक्षा करने के लिए अवसर मिलेगा । इस याचिका में कोई गुणागुण नहीं है, इसलिए, यह याचिका खारिज की जाती है । (पैरा 10)

अवलंबित निर्णय

		पैरा
[2004]	2004 क्रिमिनल ला जर्नल 1512 : **सरस्वती देवी** बनाम **झारखंड राज्य**;	4
[2002]	2002 क्रिमिनल ला जर्नल (एस. सी.) 568 : **शैलेन्द्रा कुमार** बनाम **बिहार राज्य और अन्य**;	4
[2000]	2000 क्रिमिनल ला जर्नल 624 : **मै. दांडी निट गारमेंट्स और एक अन्य** बनाम **मै. सुभिक्षा स्पिनर्स (प्रा.) लि.** ;	4, 7
[2000]	2000 क्रिमिनल ला जर्नल 3705 : **केशव चौधरी और अन्य** बनाम **बिहार राज्य**;	4
[1999]	ए. आई. आर. 1999 एस. सी. 3524 : **राज देव शर्मा** बनाम **बिहार राज्य** ।	4

प्रकीर्ण (दांडिक) अधिकारिता : 2012 की दांडिक एमएमओ सं. 5.

मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, सोलन द्वारा पारित किए गए आदेश के विरुद्ध याचिका ।

याची की ओर से श्री वीरेन्द्र सिंह चौहान, अधिवक्ता

प्रत्यर्थियों की ओर से सुश्री रूमा कौशिक, अपर महाधिवक्ता साथ में श्री जे. एस. राना, सहायक महाधिवक्ता

न्यायमूर्ति कुलदीप सिंह – यह याचिका मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, सोलन द्वारा अभियोजन के दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 311 के अधीन आवेदन मंजूर करते हुए 2005 का दांडिक मामला सं. 50/2 से उद्भूत 2010 का आवेदन सं. 378/4 में तारीख 28 दिसंबर, 2010 को पारित किए गए आदेश के विरुद्ध फाइल की गई ।

2. मामले के संक्षेप में तथ्य इस प्रकार हैं कि याची दंड संहिता की धारा 406 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए विचारण का सामना कर रहा है । अभियोजन पक्ष ने सतपाल नामक व्यक्ति सहित 11 साक्षियों का हवाला दिया है परंतु अभियोजन पक्ष ने केवल 6 साक्षियों की परीक्षा की है । विचारण न्यायालय ने अभियोजन पक्ष को अपना साक्ष्य पेश करने के लिए कई अवसर दिए किंतु ऐसा अवसर दिए जाने के बावजूद भी अभियोजन पक्ष 6 साक्षियों से अधिक साक्षियों की परीक्षा नहीं करा सका । विचारण न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन याची के कथन जिसे तारीख 8 सितंबर, 2010 को अभिलिखित किया गया था जिसके आधार पर मामले को सूचीबद्ध करते हुए तारीख 1 जुलाई, 2010 को अभियोजन पक्ष के साक्ष्य को समाप्त कर दिया गया था । मामले पर अंतिम दलील देने के लिए 16 सितंबर, 2010 की तारीख नियत की गई थी ।

3. तारीख 16 सितंबर, 2010 को अभियोजन पक्ष ने सतपाल, सुरजीत सिंह, सुरेश कुमार, रंजीत सिंह और मदन लाल की परीक्षा करने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 311 के अधीन आवेदन प्रस्तुत किया था । याची द्वारा आवेदन का विरोध किया गया था । विचारण न्यायालय द्वारा तारीख 28 दिसंबर, 2010 को आवेदन भागतः मंजूर किया गया था और अभियोजन पक्ष को साक्षी के रूप में सतपाल की परीक्षा करने के लिए अनुज्ञात किया गया था । इस याचिका में तारीख 28 दिसंबर, 2010 के आदेश को आक्षेपित किया गया है । यह कथन किया गया है कि जब एक बार तारीख 1 जुलाई, 2010 के आदेश के द्वारा अभियोजन पक्ष का साक्ष्य समाप्त कर दिया गया तब मामला अंतिम हो गया था, अभियोजन पक्ष को उसी साक्षी की परीक्षा करने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 311 के अधीन अनुज्ञा प्रदान नहीं की जा सकती है जिसे पूर्व में तारीख 1 जुलाई, 2010 के आदेश द्वारा परीक्षा किए जाने के लिए अनुज्ञात नहीं किया गया था । इस याचिका में इस अनुरोध को स्वीकार किए जाने की बात कही गई थी ।

4. पक्षकारों को सुना गया । याची के विद्वान् काउंसेल श्री वीरेन्द्र सिंह चौहान, अधिवक्ता ने यह दलील दी कि विचारण न्यायालय ने तारीख 28 दिसंबर, 2010 के आदेश के माध्यम से अभियोजन साक्षी के रूप में सतपाल की परीक्षा करने के लिए अभियोजन पक्ष को मजूंरी देकर गलती की है । विचारण न्यायालय द्वारा तारीख 1 जुलाई, 2010 को अभियोजन साक्ष्य समाप्त कर दिया था जब अभियोजन पक्ष को कई मौके दिए जाने के बावजूद भी सतपाल सहित कई साक्षियों की परीक्षा कराने में विफल हुआ । तारीख 1 जुलाई, 2010 के आदेश से यह निष्कर्ष निकलता है कि विचारण न्यायालय द्वारा तारीख 28 दिसंबर, 2010 के आदेश के माध्यम से दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन सतपाल की परीक्षा करने के लिए अभियोजन पक्ष को विचारण न्यायालय द्वारा मंजूरी प्रदान किया जाना गलत और अवैध है । याची के विद्वान् काउंसेल ने **मै. दांडी निट गारमेंट्स और एक अन्य** बनाम **मै. सुभिक्षा स्पिनर्स (प्रा.) लि.**[1], **केशव चौधरी और अन्य** बनाम **बिहार राज्य**[2] और **सरस्वती देवी** बनाम **झारखंड राज्य**[3] वाले मामलों का अपनी दलील के समर्थन में अवलंब लिया था । विद्वान् अपर महाधिवक्ता ने आक्षेपित आदेश का समर्थन किया है । यह निवेदन किया है कि विचारण न्यायालय ने अभियोजन पक्ष को अनुज्ञात करके इस बारे में कोई गलती नहीं कि है कि तारीख 1 जुलाई, 2010 के आदेश की मौजूदगी में भी तारीख 28 दिसंबर, 2010 के आदेश के माध्यम से सतपाल की परीक्षा कराई जाए । विद्वान् अपर महाधिवक्ता ने **राज देव शर्मा** बनाम **बिहार राज्य**[4] और **शैलेन्द्रा कुमार** बनाम **बिहार राज्य और अन्य**[5] वाले मामलों का अवलंब लिया ।

5. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 311 में जो कुछ उपबंध किया गया है इस प्रकार है :–

> "**311. आवश्यक साक्षी को समन करने या उपस्थित व्यक्ति की परीक्षा करने की शक्ति** – कोई न्यायालय इस संहिता के अधीन किसी जांच, विचारण या अन्य कार्यवाही के किसी प्रक्रम में किसी व्यक्ति को साक्षी के तौर पर समन कर सकता है या किसी ऐसे

---

[1] 2000 क्रिमिनल ला जर्नल 624.

[2] 2000 क्रिमिनल ला जर्नल 3705.

[3] 2004 क्रिमिनल ला जर्नल 1512.

[4] ए. आई. आर. 1999 एस. सी. 3524.

[5] 2002 क्रिमिनल ला जर्नल (एस. सी.) 568.

व्यक्ति की, जो हाजिर हो, यद्यपि वह साक्षी के रूप मे समन न किया गया हो, परीक्षा कर सकता है, किसी व्यक्ति को, जिसकी पहले परीक्षा की जा चुकी है, पुनः बुला सकता है और उसकी पुनः परीक्षा कर सकता है; और यदि न्यायालय को मामले के न्यायसंगत विनिश्चय के लिए किसी ऐसे व्यक्ति का साक्ष्य आवश्यक प्रतीत होता है तो वह ऐसे व्यक्ति को समन करेगा और उसकी परीक्षा करेगा या उसे पुनः बुलाएगा और उसकी पुनः परीक्षा करेगा ।"

6. विचारण न्यायालय ने तारीख 28 दिसंबर, 2010 के आदेश द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 311 के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते हुए अभियोजन पक्ष को सतपाल, अभिलेखपाल, जिला न्यायालय कार्यालय, सोलन की ट्रक सं. एचपी-14-4817 को छोड़े जाने के संबंध में तारीख 1 सितंबर, 2004 का मामला फाइल सं. 168/04 श्याम वर्मा **बनाम** हिमाचल प्रदेश राज्य, प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 168/2004 के रूप में शीर्षक सीएनए में निजी और सुपरदारी बंधपत्रों के संबंध में परीक्षा कराए जाने के लिए अभियोजन पक्ष को अनुज्ञात किया गया है । आवेदक के आवेदन का याची द्वारा इस आधार पर विचारण न्यायालय में विरोध किया गया था कि विचारण न्यायालय अभियोजन पक्ष के साक्ष्य को समाप्त करने का पूर्ववर्ती आदेश का पुनर्विलोकन करने के लिए सक्षम नहीं है ।

7. **मै. दांडी निट गारमेंट्स** (उपरोक्त) वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि प्रत्यर्थी की ओर से साक्ष्य की समाप्ति के पश्चात् उसे कमी को पूरा किए जाने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जा सकता है और यह अभिनिर्धारित किया गया था कि विचारण न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 311 के अधीन आवेदन अनुज्ञात करके सही नहीं किया था । **केशव चौधरी** (उपरोक्त) वाले मामले में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन आवेदन मंजूर किया गया था । उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि ऐसे किसी प्रक्रम पर जिस प्रक्रम पर विचारण न्यायालय द्वारा पहुंचा जा सकता है बशर्ते कि इसकी वही राय हो कि मामले में न्यायोचित विनिश्चय किया जा सकेगा न्यायालय की शक्ति के बारे में कोई परिसीमा नहीं है । उस मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि अभियोजन पक्ष तथा पुलिस मशीनरी की कार्रवाई के बारे में अत्यधिक असावधानी से किया जाना कहा जा सकता है और अभियोजन पक्ष ने उनके विरुद्ध जारी कराए गए गिरफ्तारी के गैर-जमानती वारंटों के बावजूद भी किसी साक्षी को पेश करने में विशेष रूप से

विफल हुआ है । उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि उन परिस्थितियों के अधीन दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 311 लागू नहीं हो सकती है । **सरस्वती देवी** (उपरोक्त) वाले मामले में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 311 के अधीन विचारण न्यायालय द्वारा आवेदन खारिज कर दिया गया था क्योंकि अभियोजन पक्ष लगभग 5 वर्षों के पश्चात् भी अभियोजन साक्षियों की परीक्षा कराने में विफल हुआ था और विचारण न्यायालय के आदेश को उच्च न्यायालय द्वारा कायम रखा गया था ।

8. केन्द्रीय जांच ब्यूरो ने उच्चतम न्यायालय द्वारा जारी किए गए निदेशों के बारे में (तथा कुछ उपांतरणों के लिए भी) स्पष्टीकरण चाहने के लिए **राज देव शर्मा** (उपरोक्त) वाले मामले में आवेदन फाइल किया । उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया जो इस प्रकार है :–

> "हम यह मत व्यक्त कर सकते हैं कि न्यायालय की शक्ति जैसा कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 में परिकल्पित है, इस न्यायालय द्वारा कम नहीं की गई है । न तो ए. आर. अन्तुले वाला मामला (1992 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 1872) ; (ए. आई. आर. 1992 एस. सी. 1701) ; (1992 क्रिमिनल ला जर्नल 2717) और न करतार सिंह वाला मामला (1994 क्रिमिनल ला जर्नल 3139), वाले मामलों में सात न्यायाधीशों की पीठ के विनिश्चय में ऐसी शक्ति त्वरित विचारण प्राप्त किए जाने के लिए निर्बंधित की गई हैं । दूसरे शब्दों में, यद्यपि मुख्य निर्णय में अंतर्विष्ट निदेशों के अनुपालन में अभियोजन साक्ष्य समाप्त कर दिया गया है फिर भी अभियोजन पक्ष इस बात के लिए स्वतंत्र है कि संहिता की धारा 311 के अधीन न्यायालय की शक्तियों का अवलंब लें । हम यह स्पष्ट करते हैं कि यदि किसी साक्षी के साक्ष्य मामले में न्यायोचित विनिश्चय देने के लिए न्यायालय को यह प्रतीत होता है कि उसका लिया जाना आवश्यक है तब न्यायालय का यह कर्तव्य है कि ऐसे किसी व्यक्ति को समन भेजा जाए और उसे पुनः बुलाकर उसकी परीक्षा और पुनः परीक्षा की जाए ।"

9. **सुरिन्द्र कुमार** (उपरोक्त) वाले मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा जो कुछ अभिनिर्धारित किया गया इस प्रकार है :–

> "प्रत्यर्थी-अभियुक्त के विद्वान् काउंसेल ने किसी प्रकार यह दलील दी है कि इस मामले में अपर सेशन न्यायाधीश द्वारा तारीख 3

> सितंबर, 1994 के आदेश को वापस लेकर जिसमें अभियोजन साक्ष्य को समाप्त घोषित किया गया था, तारीख 20 सितंबर, 1995 को पारित किए गए आदेश को उच्च न्यायालय द्वारा अपास्त करके तारीख 1 फरवरी, 2000 को पारित किए गए पूर्ववर्ती आदेश को ध्यान में रखते हुए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 311 का उल्लेख करने का कोई प्रश्न नहीं है । इस दलील में कोई सार नहीं है । धारा 311 न्यायालय को इस बात के लिए सशक्त करती है कि आवश्यक साक्षियों को समन कर सकता है जिसे साक्षी के रूप में समन न किया गया हो भेजा जाना यद्यपि यदि मामले में न्यायोचित विनिश्चय देने के लिए साक्षियों का साक्ष्य न्यायालय में लिया जाना आवश्यक प्रतीत होता हो तब उन्हें परीक्षा देने के लिए या पुनः बुलाने के लिए या पुनः परीक्षा करने के लिए बुला सकता है ......।"

10. याची के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि अभियोजन का साक्ष्य तारीख 1 जुलाई, 2010 को समाप्त कर दिया गया था और इसलिए, आदेश अंतिम हो गया था । तारीख 28 दिसंबर, 2010 का आदेश तारीख 1 जुलाई, 2010 के आदेश के पुनर्विलोकन किए जाने की कोटि में आता है जो अनुज्ञेय नहीं है । इस दलील में कोई बल नहीं है । संहिता की धारा 311 विचारण के किसी भी प्रक्रम पर साक्षी के रूप में किसी व्यक्ति को समन भेजे जाने हेतु न्यायालय को प्राधिकृत करता है । ऐसी शक्ति अभियोजन साक्ष्य को समाप्त होने के पश्चात् भी न्यायालय को उपलब्ध है । **शैलेन्द्र कुमार** (उपरोक्त) वाले मामले में न्यायालय के आदेश द्वारा अभियोजन साक्ष्य समाप्त कर दिया गया था । अपर सेशन न्यायाधीश ने तारीख 20 सितंबर, 1995 को आदेश पारित करके तारीख 3 सितंबर, 1994 के आदेश को वापस मंगाया जिसके द्वारा अभियोजन साक्ष्य को समाप्त किए जाने का निदेश किया गया था । उन्होंने सुनवाई के दूसरे दिन साक्षियों को पेश करने के लिए सहायक लोक अभियोजक को निदेश भी दिया था । उक्त आदेश को उच्च न्यायालय में चुनौती दी गई थी । उच्च न्यायालय ने तारीख 1 फरवरी, 2000 के आदेश द्वारा इस आधार पर पुनरीक्षण आवेदन को मंजूर कर लिया कि दांडिक न्यायालय अपने पूर्ववर्ती आदेश को पुनः वापस नहीं मंगा सकता है । तारीख 12 मई, 2000 को राज्य ने साक्षियों की परीक्षा किए जाने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 311 के अधीन आवेदन फाइल किया । इस आवेदन को इस आधार पर तारीख 2 जून, 2000 को खारिज कर दिया गया था कि पुनरीक्षण आवेदन में उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए आदेश को ध्यान में रखते

हुए उच्च न्यायालय द्वारा पारित किया गया आदेश का कोई अर्थ नहीं निकलता है और इस मामले को उच्च न्यायालय में ले जाया गया जिसे इस आधार पर भी खारिज कर दिया गया कि उच्च न्यायालय के लिए यह उचित नहीं है कि सेशन न्यायाधीश द्वारा पारित किए गए आदेश पर हस्तक्षेप करे । उसके पश्चात् मामले को उच्चतम न्यायालय ले जाया गया था । यह दलील दी गई थी कि उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 1 फरवरी, 2000 को पारित किया गया आदेश अवैध था । उच्चतम न्यायालय द्वारा उपरोक्त उल्लिखित निर्णय में इस दलील को अस्वीकार कर दिया गया था ।

11. वर्तमान मामले में विचारण न्यायालय द्वारा राज्य की दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 311 के अधीन आवेदन को अभिलेख सहित सत पाल की परीक्षा करने के लिए मंजूर कर लिया गया । विचारण न्यायालय द्वारा प्रयुक्त किए गए विवेक को गलत, अवैध होना नहीं कहा जा सकता है । याची को साक्षी से प्रतिपरीक्षा करने के लिए अवसर मिलेगा । इस याचिका में कोई गुणागुण नहीं है, इसलिए, यह याचिका खारिज की जाती है । पक्षकारों को अपने-अपने काउंसेल के माध्यम से तारीख 12 अप्रैल, 2012 को विचारण न्यायालय के समक्ष हाजिर होने के लिए निदेश दिया गया । निचले न्यायालय को अभिलेख तत्काल भेजे जाएं जिससे कि नियत तारीख से पूर्व वह पहुंच जाए । 2012 का दांडिक प्रकीर्ण याचिका सं. 26 मुख्य याचिका को निपटाए जाने को दृष्टिगत करते हुए, असफल हो गया है ।

याचिका खारिज की गई ।

आर्य

(2012) 2 दा. नि. प. 334 **हिमाचल प्रदेश**

राजेन्द्र

बनाम

हिमाचल प्रदेश राज्य

तारीख 24 जुलाई, 2012

न्यायमूर्ति सुरिन्दर सिंह

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 376 – बलात्संग – अभियोक्त्री द्वारा अपने पति को बलात्संग के बारे में घटना के अगले दिन

बताना – अभियोक्त्री के शरीर पर कोई क्षति या उसके वस्त्र भी फटे हुए नहीं पाया जाना – बलात्संग के संबंध में अभियोक्त्री का कथन विश्वासोत्पादक नहीं पाया जाना – अभिलेख पर मामले के तथ्यों और परिस्थितियों तथा साक्षियों के साक्ष्य की गहन संवीक्षा करने पर सहमतिजन्य मैथुन का मामला पाए जाने के कारण अभियुक्त को संदेह का फायदा देकर दोषमुक्त करना उचित होगा ।

मामले के तथ्यों के अनुसार अभियोजन का पक्षकथन यह है कि अभियोक्त्री (आयु 49 वर्ष) एक विवाहित स्त्री है जिसकी दो विवाहित पुत्रियां हैं और एक अप्राप्तवय पुत्र है । अभियोक्त्री अपने पति, जो सिंचाई और लोक स्वास्थ्य विभाग में बेलदार है, के साथ अपने गांव में रह रही थी । वह अभिकथित रूप से तारीख 8 फरवरी, 2011 को सायंकाल में लगभग 7.00 बजे घर में अकेली थी । उस दिन उसका पति ड्यूटी समय के पश्चात् एक विवाह में सम्मिलित होने के लिए गया हुआ था । अभियोक्त्री को अकेला पाकर अभियुक्त, जो उसका पड़ोसी है, ने सायंकाल में 7.30 बजे रसोई का दरवाजा खटखटाया और जबरदस्ती अंदर घुस आया और उसका उत्पीड़न करने लगा । वह उसका विरोध नहीं कर सकी क्योंकि वह पहले से ही रीढ़ की हड्डी के अस्थिभंग से ग्रस्त थी । अभियुक्त ने उसे रसोई के फर्श पर गिरा लिया और उसके साथ बलात्संग किया । यद्यपि उसने शोर मचाया, तो भी उसके बचाव के लिए कोई नहीं आया क्योंकि दरवाजा अंदर से बंद था । उसका पति सवेरे घर वापस आया । उसने जल्दी-जल्दी खाना खाया और अपनी ड्यूटी के लिए चला गया, किंतु अभियोक्त्री ने उससे कोई शिकायत नहीं की । बाद में उसने पूर्वाह्न में लगभग 10/11 बजे अभियोक्त्री से मोबाइल पर संपर्क किया और रसोई से आ रही शराब की गंध, जो उसने खाना खाते समय महसूस की थी, के बारे में पूछताछ की । तब अभियोक्त्री ने सूचित किया कि पूर्ववर्ती सायंकाल में अभियुक्त उसकी रसोई में घुस आया था और उसके साथ बलात्संग किया । यह सूचना प्राप्त होने पर उसका पति मामले की रिपोर्ट करने के लिए पुलिस थाने गया । उसके साथ पुलिस घटनास्थल पर आई और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 154 के अधीन अभियोक्त्री का कथन अभिलिखित किया । टूटी हुई चूड़ियों के टुकड़े भी बरामद किए गए । पुलिस द्वारा अभियोक्त्री का चिकित्सीय परीक्षण भी कराया गया । डाक्टर ने यह राय व्यक्त की कि यह सुझाने के लिए ऐसा कुछ नहीं कि मैथुन नहीं हुआ था । अन्वेषण पूर्ण होने पर अभियुक्त के विचारण के लिए न्यायालय में चालान

फाइल किया गया । विचारण न्यायालय द्वारा अभियुक्त को भारतीय दंड संहिता की धारा 376 और धारा 452 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए दोषसिद्ध और दंडादिष्ट किया गया । अभियुक्त ने व्यथित होकर उच्च न्यायालय में अपील फाइल की । उच्च न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – साक्ष्य की समालोचनात्मक परीक्षा करने पर न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि यह मामला अनेक कारणों से यथा अभिकथित बलात्संग का मामला नहीं है । प्रथमतः, अभियोक्त्री तथा उसके पति दोनों के पास मोबाइल फोन थे । प्रश्नगत घटना सायंकाल में लगभग 7.30 बजे घटी थी । वह अपने पति को शिकायत कर सकती थी । द्वितीयतः, अभि. सा. 3 के अनुसार उसने अभियुक्त को अभियोक्त्री के घर जाते हुए देखा था और अभियोक्त्री ने सवेरे उसे उत्पीड़न के बारे में बताया था, किंतु उसने बलात्संग का कथन नहीं किया है । तृतीयतः, उसका पति (अभि. सा. 2) सवेरे घर आया था और उस समय भी उसके पास अपने पति को घटना के बारे में जानकारी देने का पर्याप्त अवसर था, किंतु उसने ऐसा नहीं किया । उसने घटना के बारे में अभि. सा. 2 को केवल तब बताया जब उसने रसोई में से शराब की गंध आने के कारण कुछ संदेह होने पर दूरभाष पर बात की । इस आशंका से कि सच्चाई सामने न आ जाए, अभियोक्त्री ने अभियुक्त पर बलात्संग का आरोप मढ़ दिया । मुझे (अभि. सा. 3) गीता देवी के साक्ष्य से यह प्रतीत होता है कि उसने अभियुक्त को अभियोक्त्री के घर जाते हुए देखा था । अभियोक्त्री ने यह महसूस किया होगा कि वह कलई न खोल दे, इसलिए उसने अपनी शिकायत के अनुसार श्रीमती गीता देवी को उत्पीड़न का अभिकथन किया किंतु बाद में अपने पति द्वारा पूर्वोक्त रीति में पूछने पर बलात्संग का अभिकथन किया । चतुर्थतः, योनिक स्राव में वीर्य की मौजूदगी इस मामले में निरर्थक है क्योंकि अभिलेख की परिस्थितियां भी स्पष्ट सहमति की बात की सूचक हैं जो सहमतिजन्य मैथुन की ओर इंगित करती है । इसलिए, पूर्वोक्त साक्ष्य की बारीकी से संवीक्षा करने पर न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि अभियोक्त्री के कथन के आधार पर यह एक विश्वासोत्पादक मामला नहीं है । अतः अभियुक्त को संदेह का फायदा देते हुए दोषमुक्त किया जाता है । (पैरा 17 और 18)

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2012 की दांडिक अपील सं. 40.

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 374 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री एम. एल. ब्राकटा

प्रत्यर्थी की ओर से श्री पी. एम. नेगी, उप महाधिवक्ता

न्यायमूर्ति सुरिन्दर सिंह – अपीलार्थी के विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा भारतीय दंड संहिता की धारा 376 और 452 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए आरोप पत्रित, विचारित और दोषसिद्ध किया गया तथा भारतीय दंड संहिता की धारा 376 के अधीन पांच वर्ष का कठोर कारावास और एक हजार रुपए के जुर्माने का संदाय करने तथा भारतीय दंड संहिता की धारा 452 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए छह मास का कठोर कारावास भोगने का दंडादेश दिया गया है । दोनों दंडादेश साथ-साथ चलने का आदेश किया गया है । अपीलार्थी, जिसे इसमें इसके पश्चात् "अभियुक्त" कहा गया है, को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 428 के अधीन विचारण-पूर्व और विचारणाधीन निरोध की अवधि का मुजरा करते हुए जुर्माने के संदाय में व्यतिक्रम करने पर एक मास का और साधारण कारावास भोगने का दंडादेश दिया गया है ।

2. अभियुक्त ने व्यथित होकर यह अपील फाइल की है ।

3. अभियोजन का पक्षकथन, जैसा कि अभिलेख पर के साक्ष्य से प्रकट होता है, इस प्रकार उल्लिखित किया जा सकता है :–

(i) अभियोक्त्री (आयु 49 वर्ष) एक विवाहित स्त्री है जिसकी दो विवाहित पुत्रियां हैं और एक अप्राप्तवय पुत्र है जो नया शिमला में अपने मामा के साथ रहते हुए महाविद्यालय में पढ़ रहा है ।

(ii) अभियोक्त्री अपने पति, जो सिंचाई और लोक स्वास्थ्य विभाग में बेलदार है, के साथ अपने गांव में रह रही थी ।

(iii) यह अभिकथित है कि वह तारीख 8 फरवरी, 2011 को सायंकाल में लगभग 7.00 बजे घर में अकेली थी । उस दिन उसका पति ड्यूटी समय के पश्चात् अपनी धर्म बहिन की पुत्री के विवाह में सम्मिलित होने के लिए गांव बरोग गया था ।

(iv) अभियोक्त्री को अकेला पाकर अभियुक्त, जो उसका पड़ोसी है, ने सायंकाल में 7.30 बजे रसोई का दरवाजा खटखटाया और जबरदस्ती अंदर घुस आया और उसका उत्पीड़न करने लगा । वह उसका विरोध नहीं कर सकी क्योंकि वह पहले से ही रीढ़ की हड्डी के अस्थिभंग से ग्रस्त थी । अभियुक्त ने उसे रसोई के फर्श

पर गिरा लिया और अपना पायजामा और अधोवस्त्र उतारकर उसके साथ बलात्संग किया । यद्यपि उसने शोर मचाया, तो भी उसके बचाव के लिए कोई नहीं आया क्योंकि दरवाजा अंदर से बंद था । यह भी अभिकथित है कि उसकी चूड़ियां टूट गई थीं ।

(v) अगले दिन प्रातः अभियोक्त्री ने अभि. सा. 3 श्रीमती गीता देवी से शिकायत की । उसका पति (अभि. सा. 2) सवेरे घर आया । उसने जल्दी-जल्दी खाना खाया और अपनी ड्यूटी के लिए चला गया, किंतु अभियोक्त्री ने उससे कोई शिकायत नहीं की ।

(vi) बाद में उसने (अभि. सा. 2) पूर्वाह्न में लगभग 10/11 बजे अभियोक्त्री से संपर्क किया और रसोई से आ रही शराब की गंध, जो उसने खाना खाते समय महसूस की थी, के बारे में पूछताछ की । तब अभियोक्त्री ने सूचित किया कि पूर्ववर्ती सायंकाल में अभियुक्त उसकी रसोई में घुस आया था और उसके साथ बलात्संग किया ।

(vii) यह सूचना प्राप्त होने पर उसका पति मामले की रिपोर्ट करने के लिए पुलिस थाने गया । उसके साथ पुलिस घटनास्थल पर आई और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 154 के अधीन अभियोक्त्री का कथन (प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/बी) अभिलिखित किया तथा टूटी हुई चूड़ियों को ज्ञापन प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/बी द्वारा कब्जे में लिया । अभियोक्त्री ने अपनी उन चूड़ियों को भी प्रस्तुत किया जो उसने पहनी हुई थीं और उनका एक पार्सल बनाया गया तथा न्यायालयिक विज्ञान प्रयोगशाला भेजा गया ।

4. पुलिस द्वारा तारीख 9 फरवरी, 2011 को अभि. सा. 17 डा. रेणु शर्मा से अभियोक्त्री का चिकित्सीय परीक्षण कराया गया । डाक्टर ने यह पाया कि अभियोक्त्री को लम्बसाक्रेल स्पाइन का कुबड़ापन था (पुरानी क्षति) । डाक्टर ने उसके शरीर के किसी अन्य भाग पर कोई अन्य क्षति नहीं पाई । उसने सलवार, प्रदर्श पी-3, कमीज, प्रदर्श पी-4, शॉल, प्रदर्श पी-5 और इन्नर, प्रदर्श पी-6 कब्जे में लिए और जघन बाल तथा नाखूनों के अंश के साथ-साथ योनिक स्राव, अधोवस्त्र और रक्त का नमूना भी परिरक्षित किए ।

5. न्यायालयिक परीक्षण रिपोर्ट प्रदर्श पीएक्स से यह प्रकट हुआ कि चूड़ियों के टूकड़े अभियोक्त्री द्वारा प्रस्तुत की गई चूड़ियों से भिन्न थे ।

तथापि, एक अन्य रिपोर्ट, प्रदर्श पीवाई से अभियोक्त्री की योनिक स्लाइड पर रक्त और मानव वीर्य की मौजूदगी के बारे में पता चला । उक्त रिपोर्ट के आधार पर पूर्वोक्त डाक्टर ने यह राय व्यक्त की कि यह सुझाने के लिए ऐसा कुछ नहीं कि मैथुन नहीं हुआ था ।

6. पुलिस ने अभिकथित घटना के स्थल का स्थल-नक्शा, प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 15/सी भी तैयार किया और अभियुक्त को गिरफ्तार करने के पश्चात् उसका चिकित्सीय परीक्षण भी कराया । उसका चिकित्सा विधिक प्रमाणपत्र प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/बी है । उसे मैथुन करने के लिए उपयुक्त पाया गया ।

7. अन्वेषण पूर्ण होने पर अभियुक्त के विचारण के लिए न्यायालय में चालान फाइल किया गया । तद्नुसार, अभियुक्त को पूर्वोक्त अपराधों के लिए आरोप पत्रित किया गया, जिनके लिए उसने इनकार किया ।

8. अभियोजन ने अपने पक्षकथन को साबित करने के लिए अपने साक्षियों की परीक्षा कराई और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन अभियुक्त की भी परीक्षा की गई । उसने उन परिस्थितियों से इनकार किया जो उसके विरुद्ध विद्यमान पाई गई थीं और निर्दोष होने के साथ-साथ इस मामले में मिथ्या रूप से फंसाए जाने का भी अभिवाक् किया । जब उसे अपनी प्रतिरक्षा पेश करने के लिए कहा गया, तो उसने प्रतिरक्षा में कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया ।

9. विचारण के समापन पर उसे पूर्वोक्त अनुसार दोषसिद्ध और दंडादिष्ट किया गया ।

10. अभियुक्त की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री एम. एल. ब्राकटा ने जोरदार रूप से यह दलील दी कि अभिलेख पर के साक्ष्य से ही अभियोजन का वृत्तांत अनधिसंभाव्य है, क्योंकि अभियोक्त्री ने अभिकथित घटना के तुरंत पश्चात् अपने पति को सूचित नहीं किया और उसके पति को यह जानकारी उसने रसोई में जो शराब की गंध महसूस की थी, के बारे में दूरभाष पर की गई जांच करने पर ही प्राप्त हुई । यह भी दलील दी गई है कि उसने रसोई में खाना खाया था और कोई टूटी हुई चूड़ी और टूटी हुई चूड़ियों के टुकड़े नहीं देखे थे जो अभिकथित रूप से बरामद हुए थे और ये छलसाधित हैं तथा मेरा ध्यान अभि. सा. 3 गीता देवी के कथन की ओर भी दिलाया गया । न तो अभियोक्त्री के कपड़े फटे हुए थे और न ही किसी क्षति का साक्ष्य था । यह दलील दी गई कि अन्यथा भी परिस्थितियां

सहमतिजन्य मैथुन की ओर इंगित करती हैं ।

11. दूसरी ओर, विद्वान् उप महाधिवक्ता श्री पी. एम. नेगी ने दोषसिद्धि और दंडादेश के आक्षेपित निर्णय का समर्थन करते हुए यह दलील दी कि उपरोक्त अभिकथित विसंगतियां तुच्छ प्रकृति की हैं और इसे अधिक महत्व नहीं दिया जा सकता है । उसने श्रीमती गीता देवी (अभि. सा. 3) और अभियोक्त्री के पति अभि. सा. 2 के कथनों के साथ-साथ इस तथ्य को भी निर्दिष्ट किया कि योनिक स्राव में वीर्य पाया गया था जिससे यह इंगित होता है कि यह अभियुक्त द्वारा किए गए बलात्संग का मामला है । इसलिए किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है ।

12. मैंने पक्षकारों की विरोधी दलीलों पर गंभीरता से विचार किया और अभिलेख पर के साक्ष्य का सावधानीपूर्वक परिशीलन किया ।

13. प्रस्तुत मामले में अभियोक्त्री के कथन और उसके आचरण की उचित रूप से और बारीकी से संवीक्षा करने की आवश्यकता है । स्वीकृततः, उसका पति सवेरे अपने घर वापस आया और रसोई में खाना खाया और अपनी ड्यूटी पर चला गया । किंतु यह आश्चर्यजनक है कि अभियोक्त्री ने उसे घटना के बारे में नहीं बताया । उसके और उसके पति दोनों के पास मोबाइल फोन थे । उसने अभिकथित घटना के तुरंत पश्चात् भी अपने फोन से अपने पति को घटना के बारे में नहीं बताया । किंतु उसने इसके बारे में तब बताया जब उसके पति द्वारा पूर्वाह्न में लगभग 11.00 बजे अपने मोबाइल फोन से संपर्क किया गया और उसने रसोई से आ रही शराब की गंध के बारे में पूछा जो उसने खाना खाते हुए महसूस की थी । इस प्रश्न का उत्तर देते समय ही उसने अपने पति को घटना के बारे में बताया ।

14. उसने आगे यह भी कथन किया कि जब अभियुक्त ने अपराध कारित किया था तब उसे किसी खरोंच और घसीटने का चिह्न नहीं लगा था और उसके कपड़े भी नहीं फटे थे । उसने इस बात से इनकार किया कि वह घटना से पूर्व अनेक बार अभियुक्त से मिलती रहती थी और उसका पति विश्वासघात के लिए उस पर संदेह करता था । किंतु, तथापि, उसने यह स्वीकार किया कि अभियुक्त की पत्नी ने घटना के दिन से कुछ दिन पूर्व उस पर उसके पति-अभियुक्त के साथ आपत्तिजनक क्रियाकलाप करने का आरोप लगाया था ।

15. अभियोक्त्री के पति, अभि. सा. 2 ने यह कथन किया कि वह

सवेरे अपने घर वापस आया, जल्दी-जल्दी रसोई में खाना खाया और अपनी ड्यूटी पर चला गया । उसने पूर्वाहन में लगभग 10/11 बजे दूरभाष पर अपनी पत्नी से संपर्क किया और रसोई में मौजूद शराब की गंध के बारे में पूछा, इस पर उसने उसे घटना के बारे में बताया । वह पुलिस थाने गया और पुलिस को सूचना दी । पुलिस उसके घर गई और अभियोक्त्री का कथन अभिलिखित किया और उसने पुलिस को चूड़ियां, प्रदर्श पी-2, प्रस्तुत की जिन्हें मुहरबंद किया गया । इस साक्षी के अनुसार, उसकी पत्नी ने उसे डर के कारण सवेरे घटना के बारे में सूचित नहीं किया था, किंतु अभियोक्त्री ने ऐसा कथन नहीं किया है । तथापि, प्रतिपरीक्षा में उसने (अभि. सा. 2) यह कथन किया कि बरामदगी ज्ञापन, प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/बी और सभी अन्य कागजात पुलिस थाने में तैयार किए गए थे न कि घटनास्थल पर । उसने यह भी कथन किया कि उसने रसोई में खाना खाते समय चूड़ी के टूटे हुए टुकड़े नहीं देखे थे । उसने यह भी कथन किया कि उसका और अभियुक्त का पिछले 25 वर्षों से आना-जाना था । उसने इस बात से इनकार किया कि वह अपनी पत्नी के चरित्र के बारे में संदेह करता था और अभियुक्त के साथ उसके संबंधों को संदेह की दृष्टि से देखता था ।

(जोर देने के लिए रेखांकन किया गया ।)

16. अभि. सा. 3 श्रीमती गीता देवी ने यह कथन किया कि उसने अभियुक्त को अभियोक्त्री के घर जाते हुए देखा था । सवेरे लगभग 8.00 बजे अभियोक्त्री ने उसे बताया था कि अभियुक्त ने उसका उत्पीड़न किया है । उसका पति घर में नहीं था । उसने प्रतिपरीक्षा में यह कथन किया कि पुलिस द्वारा अभियोक्त्री की रसोई से टूटी हुई चूड़ियों के टुकड़े उसकी मौजूदगी में नहीं लिए गए थे ।

(जोर देने के लिए रेखांकन किया गया ।)

17. पूर्वोक्त साक्ष्य की समालोचनात्मक परीक्षा करने पर मेरा यह निष्कर्ष है कि यह मामला अनेक कारणों से यथा अभिकथित बलात्संग का मामला नहीं है । प्रथमतः, अभियोक्त्री तथा उसके पति दोनों के पास मोबाइल फोन थे । प्रश्नगत घटना सायंकाल में लगभग 7.30 बजे घटी थी । वह अपने पति को शिकायत कर सकती थी । द्वितीयतः, अभि. सा. 3 के अनुसार उसने अभियुक्त को अभियोक्त्री के घर जाते हुए देखा था और अभियोक्त्री ने सवेरे उसे उत्पीड़न के बारे में बताया था, किंतु उसने बलात्संग का कथन नहीं किया है । तृतीयतः, उसका पति (अभि. सा. 2) सवेरे घर आया था और उस समय भी उसके पास अपने पति को घटना के बारे में जानकारी देने का पर्याप्त अवसर था, किंतु उसने ऐसा नहीं

किया । उसने घटना के बारे में अभि. सा. 2 को केवल तब बताया जब उसने रसोई में से शराब की गंध आने के कारण कुछ संदेह होने पर दूरभाष पर बात की । इस आशंका से कि सच्चाई सामने न आ जाए, अभियोक्त्री ने अभियुक्त पर बलात्संग का आरोप मढ़ दिया । मुझे अभि. सा. 3 गीता देवी के साक्ष्य से यह प्रतीत होता है कि उसने अभियुक्त को अभियोक्त्री के घर जाते हुए देखा था । अभियोक्त्री ने यह महसूस किया होगा कि वह कलई न खोल दे, इसलिए उसने अपनी शिकायत के अनुसार श्रीमती गीता देवी को उत्पीड़न का अभिकथन किया किंतु बाद में अपने पति द्वारा पूर्वोक्त रीति में पूछने पर बलात्संग का अभिकथन किया । चतुर्थतः, योनिक स्राव में वीर्य की मौजूदगी इस मामले में निरर्थक है क्योंकि अभिलेख की परिस्थितियां भी मौन सहमति की बात की सूचक हैं जो सहमतिजन्य मैथुन की ओर इंगित करती है ।

18. इसलिए, पूर्वोक्त साक्ष्य की बारीकी से संवीक्षा करने पर मेरा यह निष्कर्ष है कि अभियोक्त्री के कथन के आधार पर यह एक विश्वासोत्पादक मामला नहीं है । अतः अभियुक्त को संदेह का फायदा देते हुए दोषमुक्त किया जाता है । परिणामतः, यह अपील मंजूर की जाती है और दोषसिद्धि तथा दंडादेश अपास्त किया जाता है ।

19. अभियुक्त दंडादेश भुगत रहा है, यदि उसकी किसी अन्य मामले में आवश्यकता नहीं है तो उसे तुरंत छोड़ दिया जाए । रजिस्ट्री को निदेशित किया जाता है कि संबंधित कारागार अधीक्षक को निर्मुक्ति वारंट जारी किया जाए ।

अपील मंजूर की गई ।

जस.

चुहरू राम और एक अन्य

बनाम

हिमाचल प्रदेश राज्य

तारीख 29 अगस्त, 2012

न्यायमूर्ति कुलदीप सिंह

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 227 – आरोपों को विरचित किया जाना – यदि अभियोजन द्वारा पेश सामग्री को प्रथमदृष्ट्या देखने और उसे पढ़ने से भी यह प्रकट हुआ है कि यदि मामले में दो अभियुक्त एक गाड़ी चालक तथा दूसरा उसके साथ बैठा हुआ व्यक्ति है तो गाड़ी चालक के विरुद्ध धारा 307 के अधीन आरोप विरचित किए जाने की दशा में दूसरे व्यक्ति के विरुद्ध भी धारा 307 का आरोप विरचित किया जाना उचित नहीं है ।

करतार सिंह का पूरक कथन अभिलिखित किया गया था और मामले को दंड संहिता की धारा 307 में संपरिवर्तित किया गया था । अभियोजन पक्षकथन इस प्रकार है कि तारीख 17 मार्च, 2010 को पुलिस द्वारा गुप्त सूचना प्राप्त की गई थी कि आल्टो कार और महिन्द्रा पिकअप कुछ वस्तुओं को लेकर चंबा से आ रही थी । सुकदाइन बैन स्थान पर नाका डाला गया था । महिन्द्रा पिकअप सं. एचपी-73-0625 तेज रफ्तार से पहुंची । इसे रुकने का संकेत दिया गया था । रुकने का संकेत देने के बावजूद महिन्द्रा पिकअप सं. एचपी-73-0625 अभियुक्त ने उतावलेपन और उपेक्षापूर्वक उसे इस तरीके से घुमाया कि आगे के पहिए से शिकायतकर्ता का दाहिना पैर, बायां कंधा और गर्दन कुचल गए और शिकायतकर्ता नीचे गिर गया । अभियुक्त तेज गति से उस स्थान से भाग गया । शिकायतकर्ता की चिकित्सीय रूप से परीक्षा कराई गई । मामले को रजिस्ट्रीकृत किया गया, अन्वेषण पूरा करने के पश्चात् चालान पेश किया गया । मामले के तथ्य इस प्रकार हैं कि करतार सिंह के दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 154 के अधीन कथन पर प्रारंभ में दंड संहिता की धारा 279, 338 के अधीन मामला आवेदकों के विरुद्ध रजिस्ट्रीकृत किया गया था जिसके आधार पर तारीख 17 मार्च, 2010 को प्रथम इत्तिला रिपोर्ट अभिलिखित की गई थी । करतार सिंह की चिकित्सीय रूप से परीक्षा की गई थी । सेशन विचारण सं. 12/12/2011 में विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश (त्वरित निपटान

न्यायालय) चंबा, हिमाचल प्रदेश द्वारा आवेदकों के विरुद्ध दंड संहिता की धारा 307 के साथ पठित धारा 34 के अधीन आरोप विरचित करने के लिए तारीख 28 अप्रैल, 2012 को पारित किए गए आदेश को पुनरीक्षण आवेदन में आक्षेपित किया गया है । विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश के भारतीय दंड संहिता की धारा 307 और धारा 34 के अधीन आरोप विरचित करने वाले आदेश की चुनौती इस पुनरीक्षण आवेदन में की गई है । पुनरीक्षण आवेदन भागतः मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – आवेदक सं. 1 चुहरू राम के विरुद्ध दंड संहिता की धारा 307 के साथ पठित धारा 34 के अधीन आरोप विरचित किया गया और उस सुसंगत समय पर आवेदक सं. 2 यशपाल द्वारा महिन्द्रा पिकअप सं. एचपी-73-0625 जीप चलाई जा रही थी । कुछ साक्षियों ने यह कथन किया कि आवेदक सं. 1 महिन्द्रा जीप में उस सुसंगत समय पर बैठा हुआ था परंतु किसी साक्षी ने आवेदक सं. 1 के किसी प्रत्यक्ष कार्य के बारे में कथन नहीं किया है जिससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता हो कि आवेदक सं. 2 का जीप को चलाकर शिकायतकर्ता के ऊपर चढ़ाने का कोई सामान्य आशय था या आवेदक सं. 1 ने स्वतंत्र रूप से शिकायतकर्ता के ऊपर जीप चढ़ाने का कोई कार्य किया । अभियोजन साक्षियों के कथन शिकायतकर्ता को क्षतियां कारित किए जाने के लिए आवेदक सं. 1 की भूमिका के बारे में पूर्णतया खामोश हैं । साधारणतया, कोई व्यक्ति जीप में बैठा हो तब उसके बारे में ऐसा कुछ भी नहीं कहा जा सकता कि उसने विनिर्दिष्ट अपराध कारित करने के लिए किसी विशिष्ट रीति में जीप चलाने के लिए सामान्य आशय में भागीदारी की है । निःसंदेह सामान्य आशय किसी भी क्षण उत्पन्न हो सकता है किंतु यह बात मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर होती है । इस बारे में कोई भी दूरस्थ अभिकथन या अन्य परिस्थितियों से भी अभिलेख की सामग्री से यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है कि आवेदक सं. 1 ने शिकायतकर्ता के ऊपर जीप चढ़ाने के लिए दंड संहिता की धारा 307 के अधीन अपराध किए जाने में आवेदक सं. 2 के साथ सामान्य आशय में भागीदारी की है । जब आवेदक सं. 2 को जीप को रोकने का संकेत दिया गया था । यद्यपि, वर्तमान मामले में अभियोजन पक्ष द्वारा प्रथमदृष्ट्या सामग्री प्रस्तुत की गई है और न्यायालय को उसके महत्व को विचार में लेना चाहिए तथा उस मामले का परिशीलन भी करना चाहिए । यह नहीं कहा जा सकता है कि दंड संहिता की धारा 307 के अधीन अपराध आवेदक सं. 1 के विरुद्ध बनता है । अभिलेख पर

ऐसी कोई पर्याप्त सामग्री नहीं है जिससे कि आवेदक सं. 1 के विरुद्ध आरोप विरचित किया जाए । विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश (त्वरित निपटान न्यायालय) ने दंड संहिता की धारा 307 के साथ पठित धारा 34 के अधीन आवेदक सं. 1 के विरुद्ध आरोप विरचित करके गलती की है । दंड संहिता की धारा 307 के साथ पठित धारा 34 के अधीन आवेदक सं. 1 के विरुद्ध आरोप कायम रखे जाने योग्य नहीं है, तथापि, दंड संहिता की धारा 307 के अधीन आवेदक सं. 2 के विरुद्ध आरोप विरचित करने के लिए किसी दोष का निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है । आवेदक सं. 1 के विरुद्ध धारा 307 के साथ पठित धारा 34 के अधीन आरोप विरचित किए जाने के आक्षेपित आदेश को अपास्त किया जाता है । (पैरा 11, 12 और 15)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2000]	(2000) 6 एस. सी. सी. 338 : **मध्य प्रदेश राज्य** बनाम **मोहन लाल सोनी**;	14
[1979]	ए. आई. आर. 1979 एस. सी. 366 : **भारत संघ** बनाम **प्रफुल्ल कुमार समल और एक अन्य** ।	13

पुनरीक्षण (दांडिक) अधिकारिता : 2012 का दांडिक पुनरीक्षण आवेदन सं. 129.

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 401/397 के अधीन पुनरीक्षण आवेदन ।

आवेदकों की ओर से श्री एम. एस. गुलेरिया, अधिवक्ता

प्रत्यर्थी की ओर से श्री विनोद ठाकुर, उप-महाधिवक्ता

न्यायमूर्ति कुलदीप सिंह – सेशन विचारण सं. 12/12/2011 में विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश (त्वरित निपटान न्यायालय) चंबा, हिमाचल प्रदेश द्वारा आवेदकों के विरुद्ध दंड संहिता की धारा 307 के साथ पठित धारा 34 के अधीन आरोप विरचित करने के लिए तारीख 28 अप्रैल, 2012 को पारित किए गए आदेश को पुनरीक्षण आवेदन में आक्षेपित किया गया है ।

2. मामले के तथ्य इस प्रकार हैं कि करतार सिंह के दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 154 के अधीन कथन पर प्रारंभ में दंड संहिता की धारा 279, 338 के अधीन मामला आवेदकों के विरुद्ध रजिस्ट्रीकृत किया गया

था जिसके आधार पर तारीख 17 मार्च, 2010 को प्रथम इत्तिला रिपोर्ट अभिलिखित की गई थी । करतार सिंह की चिकित्सीय रूप से परीक्षा की गई थी ।

3. करतार सिंह का पूरक कथन अभिलिखित किया गया था और मामले को दंड संहिता की धारा 307 में संपरिवर्तित किया गया था । अभियोजन पक्षकथन इस प्रकार है कि तारीख 17 मार्च, 2010 को पुलिस द्वारा गुप्त सूचना प्राप्त की गई थी कि आल्टो कार और महिन्द्रा पिकअप कुछ वस्तुओं को लेकर चंबा से आ रही थी । सुकदाइन बैन स्थान पर नाका डाला गया था । महिन्द्रा पिकअप सं. एचपी-73-0625 तेज रफ्तार से पहुंची । इसे रुकने का संकेत दिया गया था । रुकने का संकेत देने के बावजूद महिन्द्रा पिकअप सं. एचपी-73-0625 अभियुक्त ने उतावलेपन और उपेक्षापूर्वक उसे इस तरीके से घुमाया कि आगे के पहिए से शिकायतकर्ता का दाहिना पैर, बायां कंधा और गर्दन कुचल गए और शिकायतकर्ता नीचे गिर गया । अभियुक्त तेज गति से उस स्थान से भाग गया । शिकायतकर्ता की चिकित्सीय रूप से परीक्षा कराई गई । मामले को रजिस्ट्रीकृत किया गया, अन्वेषण पूरा करने के पश्चात् चालान पेश किया गया ।

4. विचारण न्यायालय ने दंड संहिता की धारा 279 के साथ पठित धारा 337 के अधीन आरोप विरचित करने के बजाय दंड संहिता की धारा 307 के अधीन आरोप विरचित किया, देखिए आदेश तारीख 28 अप्रैल, 2012 जिसे फाइल किए गए पुनरीक्षण आवेदन में आक्षेपित किया गया है । यह कथन किया गया है कि करतार सिंह ने बानीखेत या डलहोजी या चंबा अस्पतालों से परीक्षा कराने के बावजूद उसने ट्रामा और स्पाइन सेंटर, पठानकोट जो प्राइवेट अस्पताल हैं, से जाली प्रमाणपत्र प्राप्त किया । विचारण न्यायालय ने दंड संहिता की धारा 307 के अधीन आरोप विरचित करके गलती की है । अन्वेषक अधिकारी के अनुसार यह अपराध दंड संहिता की धारा 279 के साथ पठित धारा 337 के अधीन बनता है परंतु विचारण न्यायालय ने दंड संहिता की धारा 307 के अधीन आरोप विरचित करने के समर्थन में किसी सामग्री के प्रकट न होते हुए भी दंड संहिता की धारा 307 के अधीन स्वयं आरोप विरचित किया ।

5. पक्षकारों को सुना गया और अभिलेख का परिशीलन किया गया । हैड कांस्टेबल, करतार सिंह का कथन दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 154 के अधीन अभिलिखित किया गया था । उसने यह कथन किया कि तारीख 16 मार्च, 2010 को वह किसी अन्य पुलिस पदधारी के साथ बानीखेत पर था ।

तारीख 17 मार्च, 2010 को लगभग 3.30 बजे पूर्वाह्न गुप्त सूचना प्राप्त हुई कि एक आल्टो कार और एक महिन्द्रा पिकअप कुछ निषिद्ध वस्तुओं को लेकर चंबा की ओर आ रही है । सुकदाइन बैन स्थान पर जिसका पिकअप सं. एचपी-73-0625 था जो तीव्र गति से आ रही थी उसे रुकने का संकेत दिया गया और उसे रोकने के लिए लगभग 5.15 बजे पूर्वाह्न नाका डाला गया था ।

6. ड्राइवर ने उतावलेपन और उपेक्षापूर्वक यान को ऐसी दिशा की ओर मोड़ दिया कि ड्राइवर की ओर के सामने के टायर से शिकायतकर्ता के दाहिने पैर पर क्षति पहुंची । उसके बाएं कंधे और गर्दन पर भी क्षतियां कारित हुईं और वह जमीन पर गिर कर बेहोश हो गया । महिन्द्रा पिकअप एचपी-73-0625 का ड्राइवर यान को तेज गति से भगा ले गया । आल्टो कार सं. एचपी-44-1851 से महिन्द्रा पिकअप सं. एचपी-73-0625 का अनुसरण किया गया । आल्टो कार के ड्राइवर ने कार को वापस घुमाया तथा भाग गया । शिकायतकर्ता ने यह कथन किया कि वह महिन्द्रा पिकअप सं. एचपी-73-0625 के ड्राइवर का नाम नहीं जानता है किंतु वह उसे पहचान सकता है । महिन्द्रा पिकअप सं. एचपी-73-0625 का ड्राइवर अत्यधिक तेज गति से और उतावलेपन और उपेक्षापूर्वक यान को मोड़ने पर शिकायतकर्ता को क्षतिग्रस्त किया ।

7. करतार सिंह के पूरक कथन में उसने यह कथन किया है कि उसने महिन्द्रा पिकअप सं. एचपी-73-0625 रोकने का संकेत दिया । महिन्द्रा पिकअप के ड्राइवर ने यान को अत्यधिक गति से मोड़ दिया और शिकायतकर्ता पर चढ़ाने की कोशिश की । कांस्टेबल, अनुज कुमार ने शिकायतकर्ता को खींचा परंतु इसके बावजूद भी महिन्द्रा पिकअप ने शिकायतकर्ता को क्षति पहुंचाई जिससे उसका दाहिना पैर, बायां कंधा और गर्दन पर क्षतियां कारित हुईं । शिकायतकर्ता नीचे गिर गया और दोनों यान अत्यधिक तेज गति से चंबा की ओर वापस भाग गए । शिकायतकर्ता बेहोश हो गया था । महिन्द्रा पिकअप के ड्राइवर का शिकायतकर्ता पर यान चढ़ाने की कोशिश करते हुए उसकी हत्या करने का आशय रहा था । उसने शिकायतकर्ता की हत्या करने का प्रयत्न किया था ।

8. शिकायतकर्ता करतार सिंह ने अन्य पूरक कथन किया और यह कहा कि महिन्द्रा पिकअप सं. एचपी-73-0625 तारीख 17 मार्च, 2010 को यशपाल द्वारा चलाई जा रही थी । चुहरू राम उसके साथ बैठा हुआ था । उसने इन दोनों की शिनाख्त की । ड्राइवर यशपाल ने अत्यधिक तेज गति

से वापस लौटने के लिए यान को मोड़ लिया और शिकायतकर्ता की हत्या करने का प्रयत्न किया । दूसरा व्यक्ति चुहरू राम यान में बैठा हुआ था । वे तेज गति से यान को भगा ले गया ।

9. कांस्टेबल, संजय कुमार ने अपने कथन में यह कहा है कि महिन्द्रा पिकअप हैड कांस्टेबल करतार सिंह के ऊपर चढ़ाने के आशय से चलाई गई थी । कांस्टेबल, संजय कुमार ने अपने पूरक कथन में यह कहा है कि यशपाल महिन्द्रा पिकअप चला रहा था और चुहरू राम उसके साथ बैठा हुआ था । यशपाल ने हैड कांस्टेबल, करतार सिंह के ऊपर यान को चढ़ाने की कोशिश की । चुहरू राम और यशपाल तेज गति से यान को भगा ले गए । कांस्टेबल अनुज कुमार और कांस्टेबल, मोहम्मद असलम ने एक समान कथन किए हैं ।

10. करतार सिंह की एम. एल. सी. में कुछ क्षतियां पाई गई थीं, क्षति सं. 1 और 2 गंभीर पाई गई थीं । यह भी कथन किया गया कि आर्थोपेडिक सर्जन की राय के अनुसार कुछ अस्थिभंग पाए गए थे जिसका एम. एल. सी. में प्रकट किया गया है । दंड संहिता की धारा 307 की कि यदि कोई व्यक्ति किसी कार्य को ऐसे आशय या ज्ञान से ऐसी परिस्थिति में करेगा यदि वह उस कार्य द्वारा मृत्यु कारित कर देता तो वह हत्या का दोषी होगा । यशपाल आवेदक सं. 2 के विरुद्ध किए गए अभिकथन इस प्रकार हैं कि वह उस सुसंगत समय पर महिन्द्रा पिकअप सं. एचपी-73-0625 चला रहा था । उसने शिकायतकर्ता करतार सिंह के ऊपर महिन्द्रा जीप को चढ़ाने की कोशिश की परंतु कांस्टेबल, अनुज कुमार ने शिकायतकर्ता को खींच लिया उसे बचा लिया अन्यथा उस पर आवेदक सं. 2 द्वारा महिन्द्रा जीप उसके ऊपर चढ़ा दी जाती । अभिलेख की सामग्री के आधार पर यह नहीं कहा जा सकता है कि आवेदक सं. 2 यशपाल के विरुद्ध दंड संहिता की धारा 307 के अधीन अपराध किए जाने का कोई अभिकथन नहीं किया गया है ।

11. आवेदक सं. 1 चुहरू राम के विरुद्ध दंड संहिता की धारा 307 के साथ पठित धारा 34 के अधीन आरोप विरचित किया गया और उस सुसंगत समय पर आवेदक सं. 2 यशपाल द्वारा महिन्द्रा पिकअप सं. एचपी-73-0625 जीप चलाई जा रही थी । कुछ साक्षियों ने यह कथन किया कि आवेदक सं. 1 महिन्द्रा जीप में उस सुसंगत समय पर बैठा हुआ था परंतु किसी साक्षी ने आवेदक सं. 1 के किसी प्रत्यक्ष कार्य के बारे में कथन नहीं किया है जिससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता हो कि आवेदक सं. 2 का

जीप को चलाकर शिकायतकर्ता के ऊपर चढ़ाने का कोई सामान्य आशय था या आवेदक सं. 1 ने स्वतंत्र रूप से शिकायतकर्ता के ऊपर जीप चढ़ाने का कोई कार्य किया । अभियोजन साक्षियों के कथन शिकायतकर्ता को क्षतियां कारित किए जाने के लिए आवेदक सं. 1 की भूमिका के बारे में पूर्णतया खामोश हैं ।

12. साधारणतया, कोई व्यक्ति जीप में बैठा हो तब उसके बारे में ऐसा कुछ भी नहीं कहा जा सकता कि उसने विनिर्दिष्ट अपराध कारित करने के लिए किसी विशिष्ट रीति में जीप चलाने के लिए सामान्य आशय में भागीदारी की है । निःसंदेह सामान्य आशय किसी भी क्षण उत्पन्न हो सकता है किंतु यह बात मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर होती है । इस बारे में कोई भी दूरस्थ अभिकथन या अन्य परिस्थितियों से भी अभिलेख की सामग्री से यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है कि आवेदक सं. 1 ने शिकायतकर्ता के ऊपर जीप चढ़ाने के लिए दंड संहिता की धारा 307 के अधीन अपराध किए जाने में आवेदक सं. 2 के साथ सामान्य आशय में भागीदारी की है । जब आवेदक सं. 2 को जीप को रोकने का संकेत दिया गया था ।

13. **भारत संघ** बनाम **प्रफुल्ल कुमार समल और एक अन्य**[1] वाले मामले में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया है :–

> "इस प्रकार, ऊपर उल्लिखित नज़ीरों पर विचार करते हुए निम्नलिखित सिद्धांत प्रकट होते हैं –
>
> (1) कि न्यायाधीश के पास संहिता की धारा 227 के अधीन आरोप विरचित करने के प्रश्न पर विचार करते समय इस बारे में निष्कर्ष निकालने के लिए सीमित प्रयोजन हेतु साक्ष्य को अंतरित करने और उसके महत्व को समझने की स्पष्ट शक्ति है कि अभियुक्त के विरुद्ध प्रथमदृष्ट्या मामला बनता है या नहीं;
>
> (2) जहां न्यायालय के समक्ष कोई सामग्री रखी गई है और उसे अभियुक्त के विरुद्ध गंभीर संदेह प्रकट होता है जिसपर उसने न्यायालय के समक्ष उचित स्पष्टीकरण नहीं दिया है तब आरोपों को विरचित करना पूर्णतया न्यायसंगत होगा और विचारण की कार्यवाही चलाना भी न्यायसंगत होगा;

---

[1] ए. आई. आर. 1979 एस. सी. 366.

(3) प्रथमदृष्ट्या मामले को निर्धारण करने की कसौटी प्रत्येक मामले के तथ्यों पर स्वाभाविक रूप से निर्भर होगी और इस बारे में यह कठिनाई है कि ऐसे मामलों में सारभौम प्रयोग का नियम अधिकथित किया जाए । तथापि, कुल मिलाकर सामान्यतया यदि दो मत संभवतया एक समान हैं और न्यायाधीश का यह समाधान है कि उसके समक्ष पेश किए गए साक्ष्य से वर्णित मामले में कोई संदेह उत्पन्न होता है परंतु अभियुक्त के विरुद्ध गंभीर संदेह नहीं है तब वह अभियुक्त को उन्मोचित करना पूर्णतया उसके अधिकार के अंतर्गत आता है;

(4) कि न्यायाधीश के पास संहिता की धारा 227 के अधीन अपनी अधिकारिता का प्रयोग करते हुए जो वर्तमान संहिता के अधीन है तो उसे अपनी ज्येष्ठता और अनुभवी न्यायालय होने के कारण केवल डाकखाने के रूप में या अभियोजन के पक्ष में होकर कार्य नहीं कर सकता है परंतु उसे मामले के व्यापक अधिसंभाव्यताओं पर विचार करना चाहिए, साक्ष्य का पूर्ण प्रभाव और न्यायालय के समक्ष पेश किए गए दस्तावेज, मामले में प्रकट हो रही कोई आधारभूत कमियां इत्यादि पर भी विचार करना चाहिए । तथापि, इससे यह अर्थ नहीं निकलता है कि न्यायाधीश को मामले के पक्ष-विपक्ष में जांच करनी चाहिए और साक्ष्य को महत्व देना चाहिए, मानों, वह विचारण कर रहा है ।"

14. **मध्य प्रदेश राज्य** बनाम **मोहन लाल सोनी**[1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया है यदि न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि यदि कार्यवाहियों से प्रथमदृष्ट्या मामला बनता है तब उसे आरोप विरचित करना चाहिए । इसके प्रतिकूल, यदि साक्ष्य जिसे अभियोजन पक्ष द्वारा पेश किया जाना प्रस्तावित है, से अभियुक्त की दोषिता साबित होती है । किसी प्रकार भी, न्यायालय के समक्ष पूर्णतया यह स्वीकार किया जाना चाहिए कि मामले को प्रतिपरीक्षा में चुनौती दी गई या प्रतिरक्षा साक्ष्य द्वारा मामले का खंडन किया गया, यदि किसी बात से यह दर्शित नहीं हो सकता हो कि अभियुक्त ने विशिष्ट अपराध किया है तब आरोप अभिखंडित किया जा सकता है ।

---

[1] (2000) 6 एस. सी. सी. 338.

15. यद्यपि, वर्तमान मामले में अभियोजन पक्ष द्वारा प्रथमदृष्ट्या सामग्री प्रस्तुत की गई है और न्यायालय को उसके महत्व को विचार में लेना चाहिए तथा उस मामले का परिशीलन भी करना चाहिए । यह नहीं कहा जा सकता है कि दंड संहिता की धारा 307 के अधीन अपराध आवेदक सं. 1 के विरुद्ध बनता है । अभिलेख पर ऐसी कोई पर्याप्त सामग्री नहीं है जिससे कि आवेदक सं. 1 के विरुद्ध आरोप विरचित किया जाए । विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश (त्वरित निपटान न्यायालय) ने दंड संहिता की धारा 307 के साथ पठित धारा 34 के अधीन आवेदक सं. 1 के विरुद्ध आरोप विरचित करके गलती की है । दंड संहिता की धारा 307 के साथ पठित धारा 34 के अधीन आवेदक सं. 1 के विरुद्ध आरोप कायम रखे जाने योग्य नहीं है, तथापि, दंड संहिता की धारा 307 के अधीन आवेदक सं. 2 के विरुद्ध आरोप विरचित करने के लिए किसी दोष का निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है । आवेदक सं. 1 के विरुद्ध धारा 307 के साथ पठित धारा 34 के अधीन आरोप विरचित किए जाने के आक्षेपित आदेश को अपास्त किया जाता है ।

16. उपरोक्त बातों को ध्यान में रखते हुए पुनरीक्षण आवेदन भागतः मंजूर किया जाता है । सेशन विचारण सं. 12/12/ 2011 में आवेदक सं. 1 चुहरू राम के विरुद्ध दंड संहिता की धारा 307 के साथ पठित धारा 34 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए आरोप विरचित किए जाने के विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश (त्वरित निपटान न्यायालय,) चंबा द्वारा पारित तारीख 298 अप्रैल, 2012 के आदेश को अपास्त किया जाता है । तथापि, आवेदक सं. 2 के विरुद्ध दंड संहिता की धारा 307 के अधीन आरोप कायम रखा जाता है । अभिलेख तत्काल वापस भेजे जाते हैं जो निचले विचारण न्यायालय द्वारा पहले ही नियत की गई तारीख से पूर्व वहां पर पहुंच जाए ।

पुनरीक्षण आवेदन भागतः मंजूर किया गया ।

आर्य

संसद् के अधिनियम

न्यायालय अवमान अधिनियम, 1971

(1971 का अधिनियम संख्यांक 70)

[24 दिसम्बर, 1971]

न्यायालयों के अवमान के लिए दंडित करने के बारे में कुछ न्यायालयों की शक्तियों को परिनिश्चित और परिसीमित करने के लिए और उस सम्बन्ध में उनकी प्रक्रिया को विनियमित करने के लिए अधिनियम

भारत गणराज्य के बाईसवें वर्ष में संसद् द्वारा निम्नलिखित रूप में अधिनियमित हो :–

1. **संक्षिप्त नाम और विस्तार** – (1) इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम न्यायालय अवमान अधिनियम, 1971 है ।

(2) इसका विस्तार सम्पूर्ण भारत पर है :

परन्तु यह जम्मू-कश्मीर राज्य को वहां तक के सिवाय लागू नहीं होगा जहां तक इस अधिनियम के उपबंधों का सम्बन्ध उच्चतम न्यायालय के अवमान से है ।

2. **परिभाषाएं** – इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, –

(क) "न्यायालय अवमान" से सिविल अवमान अथवा आपराधिक अवमान अभिप्रेत है ;

(ख) "सिविल अवमान" से किसी न्यायालय के किसी निर्णय, डिक्री, निदेश, आदेश, रिट या अन्य आदेशिका की जानबूझकर अवज्ञा करना अथवा न्यायालय से किए गए किसी वचनबन्ध को जानबूझकर भंग करना अभिप्रेत है ;

(ग) "आपराधिक अवमान" से किसी भी ऐसी बात का (चाहे बोले गए या लिखे गए शब्दों द्वारा, या संकेतों द्वारा या दृश्य रूपणों द्वारा या अन्यथा) प्रकाशन अथवा किसी भी अन्य ऐसे कार्य का करना अभिप्रेत है –

(i) जो किसी न्यायालय को कलंकित करता है या जिसकी प्रवृत्ति उसे कलंकित करने की है अथवा जो उसके प्राधिकार को, अवनत करता है या जिसकी प्रवृत्ति उसे अवनत करने की है ; अथवा

(ii) जो किसी न्यायिक कार्यवाही के सम्यक् अनुक्रम पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है, या उसमें हस्तक्षेप करता है या जिसकी प्रवृत्ति उसमें हस्तक्षेप करने की है; अथवा

(iii) जो न्याय प्रशासन में किसी अन्य रीति से हस्तक्षेप करता है या जिसकी प्रवृत्ति उसमें हस्तक्षेप करने की है अथवा जो उसमें बाधा डालता है या जिसकी प्रवृत्ति उनमें बाधा डालने की है ;

(घ) "उच्च न्यायालय" से किसी राज्य अथवा संघ राज्यक्षेत्र के लिए उच्च न्यायालय अभिप्रेत है और किसी संघ राज्यक्षेत्र में न्यायिक आयुक्त का न्यायालय इसके अन्तर्गत है ।

3. **किसी बात के निर्दोष प्रकाशन और वितरण का अवमान न होना** – (1) कोई व्यक्ति इस आधार पर कि उसने किसी ऐसी बात को (चाहे बोले गए या लिखे गए शब्दों द्वारा या संकेतों द्वारा या दृश्य रूपणों द्वारा या अन्यथा) प्रकाशित किया है जो प्रकाशन के समय लम्बित किसी सिविल या दाण्डिक कार्यवाही के सम्बन्ध में न्याय के अनुक्रम में हस्तक्षेप करती है या जिसकी प्रवृत्ति उसमें हस्तक्षेप करने की है अथवा जो उसमें बाधा डालती है या जिसकी प्रवृत्ति उसमें बाधा डालने की है, उस दशा में न्यायालय अवमान का दोषी नहीं होगा जिसमें उस समय उसके पास यह विश्वास करने के समुचित आधार नहीं थे कि वह कार्यवाही लम्बित थी ।

(2) इस अधिनियम में या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी प्रतिकूल बात के होते हुए भी, किसी ऐसी सिविल या दाण्डिक कार्यवाही के संबंध में, जो प्रकाशन के समय लम्बित नहीं है, किसी ऐसी बात के प्रकाशन के बारे में, जो उपधारा (1) में वर्णित है, यह नहीं समझा जाएगा कि उससे न्यायालय अवमान होता है ।

(3) कोई भी व्यक्ति इस आधार पर कि उसने ऐसा कोई प्रकाशन वितरित किया है जिसमें कोई ऐसी बात अन्तर्विष्ट है जो उपधारा (1) में वर्णित है, उस दशा में न्यायालय अवमान का दोषी नहीं होगा जिसमें वितरण के समय उसके पास यह विश्वास करने के समुचित आधार नहीं थे

कि उसमें यथापूर्वोक्त कोई बात अन्तर्विष्ट थी या उसके अन्तर्विष्ट होने की सम्भावना थी :

परन्तु यह उपधारा निम्नलिखित के विवरण के बारे में लागू न होगा –

(i) कोई ऐसा प्रकाशन जो प्रेस और पुस्तक रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1867 (1867 का 25) की धारा 3 में अन्तर्विष्ट नियमों के अनुरूप मुद्रित या प्रकाशित न होते हुए अन्यथा मुद्रित या प्रकाशित पुस्तक या कागजपत्र है;

(ii) कोई ऐसा प्रकाशन जो उक्त अधिनियम की धारा 5 में अन्तर्विष्ट नियमों के अनुरूप प्रकाशित न होते हुए अन्यथा प्रकाशित समाचारपत्र है ।

स्पष्टीकरण – इस धारा के प्रयोजनों के लिए कोई न्यायिक कार्यवाही –

(क) निम्नलिखित दशाओं में लम्बित कही जाती है –

(क) सिविल कार्यवाही के मामले में जब वह वादपत्र फाइल करके या अन्यथा संस्थित की जाती है,

(ख) दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1898(1898 का 5) या किसी अन्य विधि के अधीन किसी दाण्डिक कार्यवाही के मामले में –

(i) जहां वह किसी अपराध के किए जाने से संबंधित है वहां जब आरोप-पत्र या चालान फाइल किया जाता है अथवा जब अपराधी के विरुद्ध न्यायालय, यथास्थिति, समन या वारंट निकालता है, और

(ii) किसी अन्य मामले में जब न्यायालय उस विषय का संज्ञान करता है जिससे कार्यवाही संबंधित है; और

किसी सिविल या दाण्डिक कार्यवाही के मामले में तब तक लम्बित बनी रही समझी जाएगी जब तक वह सुन नहीं ली जाती और अन्तिम रूप से विनिश्चित नहीं कर दी जाती, अर्थात् उस मामले में जहां अपील या पुनरीक्षण हो सकता है, जब तक अपील या पुनरीक्षण को सुन नहीं लिया जाता और अन्तिम रूप से विनिश्चित नहीं कर दिया जाता, या जैसा अपील या पुनरीक्षण न किया जाए वहां जब तक उस परिसीमा-काल का अवसान नहीं हो जाता जो ऐसी अपील या

पुनरीक्षण के लिए विहित है;

(ख) जिसे सुन लिया गया है और अन्तिम रूप से विनिश्चित कर दिया गया है, केवल इस बात के ही कारण लम्बित नहीं समझी जाएगी कि उसमें पारित डिक्री, आदेश या दण्डादेश के निष्पादन की कार्यवाही लम्बित है ।

4. **न्यायिक कार्यवाही की उचित और सही रिपोर्ट का अवमान न होना** – धारा 7 में अन्तर्विष्ट उपबंधों के अधीन रहते हुए यह है कि कोई भी व्यक्ति किसी न्यायिक कार्यवाही या उसके किसी प्रक्रम की उचित और सही रिपोर्ट प्रकाशित करने से न्यायालय अवमान का दोषी न होगा ।

5. **न्यायिक कार्य की उचित और आलोचना का अवमान न होना** – कोई भी व्यक्ति किसी मामले के, जिसे सुन लिया गया है और अन्तिम रूप से विनिश्चित कर दिया गया है, गुणागुण पर उचित टीका-टिप्पणी प्रकाशित करने से न्यायालय अवमान का दोषी न होगा ।

6. **अधीनस्थ न्यायालयों के पीठासीन अधिकारियों के विरुद्ध परिवाद का कब अवमान न होना** – कोई भी व्यक्ति किसी ऐसे कथन के बारे में जो उसने किसी अधीनस्थ न्यायालय के पीठासीन अधिकारी की बाबत –

(क) किसी अन्य अधीनस्थ न्यायालय से, या

(ख) उच्च न्यायालय से,

जिसके अधीनस्थ वह न्यायालय है, सद्भावपूर्वक किया हो, न्यायालय अवमान का दोषी न होगा ।

स्पष्टीकरण – इस धारा में "अधीनस्थ न्यायालय" से किसी उच्च न्यायालय के अधीनस्थ कोई न्यायालय अभिप्रेत है ।

7. **चैम्बर में या बन्द कमरे में कार्यवाहियों के संबंध में जानकारी के प्रकाशन का कुछ दशाओं के सिवाय अवमान न होना** – (1) इस अधिनियम में किसी बात के होते हुए भी कोई व्यक्ति चैम्बर में या बन्द कमरे में बैठे हुए न्यायालय के समक्ष किसी न्यायिक कार्यवाही की उचित और सही रिपोर्ट प्रकाशित करने से, निम्नलिखित दशाओं के सिवाय, न्यायालय अवमान का दोषी न होगा, अर्थात् –

(क) जब प्रकाशन तत्समय प्रवृत्त किसी अधिनियमिति के उपबन्धों के प्रतिकूल है;

(ख) जब न्यायालय, लोक-नीति के आधारों पर या अपने में निहित किसी शक्ति का प्रयोग करते हुए उस कार्यवाही से सम्बद्ध सभी जानकारी का या उस वर्णन की जानकारी का, जो प्रकाशित की जाती है, प्रकाशन स्पष्टतः प्रतिषिद्ध कर देता है;

(ग) जब न्यायालय लोक व्यवस्था अथवा राज्य की सुरक्षा से सम्बन्धित कारणों से चैम्बर में या बन्द कमरे में बैठता है तब उस कार्यवाही से सम्बद्ध जानकारी का प्रकाशन;

(घ) जब जानकारी किसी ऐसी गुप्त प्रक्रिया, खोज या आविष्कार के सम्बन्ध में है जो कार्यवाही में विवाद्यक है ।

(2) उपधारा (1) में अन्तर्विष्ट उपबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना यह है कि कोई भी व्यक्ति चैम्बर में या बन्द कमरे में बैठे हुए न्यायालय द्वारा दिए गए सम्पूर्ण आदेश या उसके किसी भाग का मूल पाठ या उचित और सही सारांश प्रकाशित करने से न्यायालय अवमान का दोषी न होगा जब तक कि न्यायालय ने लोक-नीति के आधारों पर, या लोक व्यवस्था अथवा राज्य की सुरक्षा से संबद्ध कारणों से, या इस आधार पर कि उसमें गुप्त प्रक्रिया खोज या आविष्कार से संबंधित जानकारी अन्तर्विष्ट है या अपने में निहित किसी शक्ति का प्रयोग करते हुए, उसका प्रकाशन स्पष्टतः प्रतिषिद्ध नहीं कर दिया है ।

8. **अन्य प्रतिवादों पर कोई प्रभाव न होना** – इस अधिनियम में अन्तर्विष्ट किसी भी बात का यह अर्थ न लगाया जाएगा कि उसमें यह विवक्षित है कि कोई अन्य ऐसा प्रतिवाद जो न्यायालय अवमान की किन्हीं कार्यवाहियों में विधिमान्य प्रतिवाद होता, केवल इस अधिनियम के उपबन्धों के कारण ही उपलभ्य नहीं रहा है ।

9. **अधिनियम द्वारा, अवमान की परिधि का बढ़ाना, विवक्षित न होना** – इस अधिनियम में अन्तर्विष्ट किसी भी बात का यह अर्थ न लगाया जाएगा कि उसमें यह विवक्षित है कि कोई ऐसी अवज्ञा या ऐसा भंग, प्रकाशन या अन्य कार्य जो इस अधिनियम से अन्यथा न्यायालय अवमान के रूप में दण्डनीय न होता ऐसे दण्डनीय है ।

10. **अधीनस्थ न्यायालयों के अवमान के लिए दण्डित करने की उच्च न्यायालय की शक्ति** – प्रत्येक उच्च न्यायालय को अपने अधीनस्थ न्यायालयों के अवमान के बारे में वही अधिकारिता, शक्तियां और प्राधिकार

प्राप्त होंगे और वह उसी प्रक्रिया और पद्धति के अनुसार उनका प्रयोग करेगा जैसे उसे स्वयं अपने अवमान के बारे में प्राप्त है और जिसके अनुसार वह उनका प्रयोग करता है :

परन्तु कोई भी उच्च न्यायालय अपने अधीनस्थ न्यायालय के बारे में किए गए अभिकथित अवमान का संज्ञान नहीं करेगा जबकि वह अवमान भारतीय दण्ड संहिता (1860 का 45) के अधीन दण्डनीय अपराध है ।

11. **अधिकारिता के बाहर किए गए अपराधों या पाए गए अपराधियों का विचारण करने की उच्च न्यायालय की शक्ति** – उच्च न्यायालय को अपने या अपने अधीनस्थ किसी न्यायालय के अवमान की जांच करने और उसका विचारण करने की अधिकारिता होगी, चाहे ऐसे अवमान का उसकी अधिकारिता की स्थानीय सीमाओं के भीतर किया जाना अभिकथित हो या बाहर और चाहे वह व्यक्ति जो अवमान का दोषी अभिकथित है ऐसी सीमाओं के भीतर हो या बाहर ।

12. **न्यायालय अवमान के लिए दण्ड** – (1) इस अधिनियम या किसी अन्य विधि में अभिव्यक्त रूप से जैसा अन्यथा उपबंधित है उसके सिवाय न्यायालय अवमान सादे कारावास से, जिसकी अवधि छह मास तक की हो सकेगी, या जुर्माने से, जो दो हजार रुपए तक का हो सकेगा, अथवा दोनों से, दण्डित किया जा सकेगा :

परन्तु न्यायालय को समाधानप्रद रूप से माफी मांगे जाने पर अभियुक्त को उन्मोचित किया जा सकेगा या अधिनिर्णीत दण्ड का परिहार किया जा सकेगा ।

स्पष्टीकरण – कोई भी माफी, जो अभियुक्त ने सद्भावपूर्वक मांगी है, केवल इस आधार पर नामंजूर नहीं की जाएगी कि वह सापेक्ष अथवा सशर्त है ।

(2) तत्समय प्रवृत किसी विधि में किसी बात के होते हुए भी कोई न्यायालय चाहे अपने या अपने अधीनस्थ किसी न्यायालय के अवमान के बारे में उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट दण्ड से अधिक दण्ड अधिरोपित नहीं करेगा ।

(3) इस धारा में किसी बात के होते हुए भी जब कोई व्यक्ति सिविल अवमान का दोषी पाया जाता है तब यदि न्यायालय यह समझता है कि जुर्माने से न्याय का उद्देश्य पूरा नहीं होगा और कारावास का दण्ड

आवश्यक है, तो वह उसे सादे कारावास से दण्डादिष्ट करने के बजाय यह निदेश देगा कि वह छह मास से अनधिक की इतनी अवधि के लिए, जितनी न्यायालय ठीक समझे, सिविल कारागार में निरुद्ध रखा जाए ।

(4) जहां न्यायालय से किए गए वचनबंध के बारे में न्यायालय अवमान का दोषी पाया गया व्यक्ति, कोई कम्पनी है, वहां प्रत्येक व्यक्ति जो अवमान के किए जाने के समय कम्पनी के कारबार के संचालन के लिए कम्पनी का भारसाधक और उसके प्रति उत्तरदायी था, और साथ ही वह कम्पनी भी, अवमान के दोषी समझे जाएंगे और न्यायालय की इजाजत से, दण्ड का प्रवर्तन, प्रत्येक ऐसे व्यक्ति को सिविल कारागार में निरुद्ध करके किया जा सकेगा :

परन्तु इस उपधारा की कोई बात किसी ऐसे व्यक्ति को दण्ड का भागी नहीं बनाएगी यदि वह साबित कर देता है कि अवमान उसकी जानकारी के बिना किया गया था अथवा उसने उसका किया जाना निवारित करने के लिए सब सम्यक् तत्परता बरती थी ।

(5) उपधारा (4) में किसी बात के होते हुए भी जहां उसमें निर्दिष्ट न्यायालय अवमान किसी कम्पनी द्वारा किया गया है और यह साबित हो जाता है कि वह अवमान कम्पनी के किसी निदेशक, प्रबन्धक, सचिव या अन्य अधिकारी की सम्मति अथवा मौनानुकूलता से किया गया है या उसकी किसी उपेक्षा के कारण हुआ माना जा सकता है, वहां ऐसा निदेशक, प्रबन्धक, सचिव या अन्य अधिकारी भी उस अवमान का दोषी समझा जाएगा और न्यायालय की इजाजत से, दण्ड का प्रवर्तन, उस निदेशक, प्रबन्धक, सचिव या अन्य अधिकारी को सिविल कारागार में निरुद्ध करके किया जा सकेगा ।

स्पष्टीकरण – उपधारा (4) और (5) के प्रयोजन के लिए –

(क) "कम्पनी" से कोई निगमित निकाय अभिप्रेत है और उसके अन्तर्गत फर्म या व्यष्टियों का अन्य संगम भी है ; और

(ख) किसी फर्म के सम्बन्ध में, "निदेशक" से उस फर्म का भागीदार अभिप्रेत है ।

[1][13. **कतिपय मामलों में अवमानों का दंडनीय न होना** – तत्समय प्रवृत्त किसी विधि में किसी बात के होते हुए भी, –

(क) कोई न्यायालय इस अधिनियम के अधीन न्यायालय अवमान के लिए दंड तब तक अधिरोपित नहीं करेगा जब तक उसका यह समाधान नहीं हो जाता है कि अवमान ऐसी प्रकृति का है कि वह न्याय के सम्यक् अनुक्रम में पर्याप्त हस्तक्षेप करता है, या उसकी प्रवृत्ति पर्याप्त हस्तक्षेप करने की है ;

(ख) न्यायालय, न्यायालय अवमान के लिए किसी कार्यवाही में, किसी विधिमान्य प्रतिरक्षा के रूप में सत्य द्वारा न्यायानुमत की अनुज्ञा दे सकेगा यदि उसका यह समाधान हो जाता है कि वह लोकहित में है और उक्त प्रतिरक्षा का आश्रय लेने के लिए अनुरोध सद्भाविक है।]

14. **जहां अवमान उच्चतम न्यायालय या किसी उच्च न्यायालय के सम्मुख है, वहां प्रक्रिया** – (1) जब यह अभिकथित किया जाता है या उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय को, अपने अवलोकन पर यह प्रतीत होता है कि कोई व्यक्ति उसकी उपस्थिति में या उसके सुनते हुए किए गए अवमान का दोषी है तब वह न्यायालय ऐसे व्यक्ति को अभिरक्षा में निरुद्ध करा सकेगा और न्यायालय के उठने से पूर्व उसी दिन किसी भी समय या उसके पश्चात् यथासम्भवशीघ्र –

(क) उसे उस अवमान की लिखित जानकारी कराएगा जिसका उस पर आरोप है ;

(ख) उसे आरोप का प्रतिवाद करने का अवसर देगा ;

(ग) ऐसा साक्ष्य लेने के पश्चात् जो आवश्यक हो या जो ऐसे व्यक्ति द्वारा दिया जाए और उस व्यक्ति को सुनने के पश्चात् चाहे तत्काल या स्थगन के पश्चात्, आरोप के मामले का अवधारण करने के लिए अग्रसर होगा ; और

(घ) ऐसे व्यक्ति को दण्डित करने या उन्मोचित करने का ऐसा आदेश करेगा जो न्यायसंगत हो ।

(2) उपधारा (1) में किसी बात के होते हुए भी, जहां कोई व्यक्ति जिस पर उस उपधारा के अधीन अवमान का आरोप लगाया गया है, चाहे

---

[1] 2006 के अधिनियम सं. 6 की धारा 2 द्वारा धारा 13 के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

मौखिक रूप से या लिखित रूप से, आवेदन करता है, कि उसके विरुद्ध आरोप का विचारण उस न्यायाधीश या उन न्यायाधीशों से, जिसकी या जिनकी उपस्थिति में या जिसके या जिनके सुनते हुए अपराध का किया जाना अभिकथित है, भिन्न किसी न्यायाधीश द्वारा किया जाए और न्यायालय की राय है कि ऐसा करना साध्य है और आवेदन को उचित न्याय प्रशासन के हित में मंजूर किया जाना चाहिए तो वह उस मामले के तथ्यों के कथन सहित मुख्य न्यायमूर्ति के समक्ष ऐसे निदेशों के लिए रखवाएगा जिन्हें वह उसके विचारण की बाबत जारी करना ठीक समझे ।

(3) किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी यह है कि उस व्यक्ति के जिस पर उपधारा (1) के अधीन अवमान का आरोप है, उस विचारण में जो उपधारा (2) के अधीन दिए गए निदेश के अनुसरण में उस न्यायाधीश या उन न्यायाधीशों से, जिसकी या जिनकी उपस्थिति में जिसके या जिनके सुनते हुए अपराध का किया जाना अभिकथित है, भिन्न किसी न्यायाधीश द्वारा किया जाता है, यह आवश्यक न होगा कि वह न्यायाधीश या वे न्यायाधीश जिसकी या जिनकी उपस्थिति में या जिसके या जिनके सुनते हुए अपराध का किया जाना अभिकथित है, साक्षी के रूप में उपस्थित हो या उपस्थित हों और उपधारा (2) के अधीन मुख्य न्यायमूर्ति के समक्ष रखा गया कथन मामले में साक्ष्य माना जाएगा ।

(4) न्यायालय निदेश दे सकेगा कि वह व्यक्ति जिस पर इस धारा के अधीन अवमान का आरोप है आरोप का अवधारण होने तक ऐसी अभिरक्षा में निरुद्ध रखा जाएगा जैसी वह न्यायालय विनिर्दिष्ट करे :

परन्तु यदि प्रतिभुओं सहित या रहित बन्धपत्र निष्पादित कर दिया जाता है जो उतनी रकम का है जितनी न्यायालय पर्याप्त समझता है और जिसमें यह शर्त है कि वह व्यक्ति जिस पर आरोप है, बन्धपत्र में वर्णित समय और स्थान पर हाजिर होगा और जब तक न्यायालय द्वारा अन्यथा निदेश नहीं दे दिया जाता ऐसे हाजिर होता रहेगा तो उसे जमानत पर छोड़ दिया जाएगा :

परन्तु यह और कि यदि न्यायालय ठीक समझता है तो ऐसे व्यक्ति से जमानत लेने के बजाय उसकी यथापूर्वोक्त हाजिरी के लिए प्रतिभुओं के बिना उसके द्वारा बन्धपत्र निष्पादित किए जाने पर उसे उन्मोचित कर सकेगा ।

15. **अन्य दशाओं में आपराधिक अवमान का संज्ञान** – (1) धारा 14

में निर्दिष्ट अवमान से भिन्न आपराधिक अवमान की दशा में उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय या तो स्वप्रेरणा से या –

(क) महाधिवक्ता के, अथवा

(ख) महाधिवक्ता की लिखित सम्मति से किसी अन्य व्यक्ति के, [1][अथवा]

[1][(ग) दिल्ली संघ राज्यक्षेत्र के उच्च न्यायालय के सम्बन्ध में, ऐसे विधि अधिकारी के, जिसे केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, इस निमित्त विनिर्दिष्ट करे, या ऐसे विधि अधिकारी की लिखित सम्मति से किसी अन्य व्यक्ति के,] समावेदन पर कार्रवाई कर सकेगा ।

(2) किसी अधीनस्थ न्यायालय के आपराधिक अवमान की दशा में उच्च न्यायालय, उस अधीनस्थ न्यायालय द्वारा किए गए निर्देश पर या महाधिवक्ता द्वारा, या किसी संघ राज्यक्षेत्र के सम्बन्ध में, ऐसे विधि अधिकारी द्वारा जिसे केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, इस निमित्त विनिर्दिष्ट करे, किए गए आवेदन पर कार्रवाई कर सकेगा ।

(3) इस धारा के अधीन किए गए प्रत्येक समावेदन या निर्देश में वह अवमान विनिर्दिष्ट होगा जिसका कि वह व्यक्ति जिस पर आरोप है, दोषी अभिकथित है ।

स्पष्टीकरण – इस धारा में "महाधिवक्ता" पद से अभिप्रेत है –

(क) उच्चतम न्यायालय के सम्बन्ध में, महान्यायवादी या महासालिसिटर ; तथा

(ख) उच्च न्यायालय के सम्बन्ध में राज्य का या उन राज्यों में से किसी का जिनके लिए उच्च न्यायालय स्थापित किया गया है महाधिवक्ता ; तथा

(ग) न्यायिक आयुक्त के न्यायालय के सम्बन्ध में ऐसा विधि अधिकारी जिसे, केन्द्रीय सरकार राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, इस निमित्त विनिर्दिष्ट करे ।

16. **न्यायाधीश, मजिस्ट्रेट या न्यायिकतः कार्य करने वाले अन्य व्यक्ति द्वारा अवमान** – (1) तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के उपबन्धों के अधीन रहते

---

[1] 1976 के अधिनियम सं. 45 की धारा 2 द्वारा (30-3-1976 से) अन्तःस्थापित ।

हुए कोई न्यायाधीश, मजिस्ट्रेट या न्यायिकतः कार्य करने वाला अन्य व्यक्ति भी अपने न्यायालय के या किसी अन्य न्यायालय के अवमान के लिए उसी रीति से दण्डनीय होगा जिससे कोई अन्य व्यक्ति होता है, और इस अधिनियम के उपबन्ध, यावत्शक्य तदनुसार लागू होंगे ।

(2) इस धारा की कोई बात किसी न्यायाधीश, मजिस्ट्रेट या न्यायिकतः कार्य करने वाले अन्य व्यक्ति द्वारा, किसी अधीनस्थ न्यायालय के आदेश या निर्णय के विरुद्ध उस न्यायाधीश, मजिस्ट्रेट या अन्य व्यक्ति के समक्ष लम्बित किसी अपील अथवा पुनरीक्षण में उस अधीनस्थ न्यायालय की बाबत की गई किन्हीं समुक्तियों या टिप्पणों को लागू नहीं होगी ।

17. **संज्ञान के पश्चात् प्रक्रिया** – (1) धारा 15 के अधीन प्रत्येक कार्यवाही की सूचना की तामील उस व्यक्ति पर जिस पर आरोप है, वैयक्तिक रूप से की जाएगी जब तक कि न्यायालय, ऐसे कारणों से जो अभिलिखित किए जाएंगे, अथवा निदेश न दे ।

(2) सूचना के साथ निम्नलिखित होंगे –

(क) किसी समावेदन पर प्रारम्भ की गई कार्यवाही की दशा में, समावेदन की प्रतिलिपि तथा उन शपथपत्रों की भी प्रतिलिपियां, यदि कोई हों, जिन पर ऐसा समावेदन आधारित है; तथा

(ख) किसी अधीनस्थ न्यायालय द्वारा, किए गए निर्देश पर प्रारम्भ की गई कार्यवाही की दशा में, उस निर्देश की प्रतिलिपि ।

(3) यदि न्यायालय का समाधान हो जाता है कि उस व्यक्ति के, जिस पर धारा 15 के अधीन आरोप है, सूचना की तामील से बचने के लिए फरार होने या छिपे जाने की सम्भावना है तो वह उसकी उतने मूल्य या रकम की संपत्ति की, जो वह न्यायालय युक्तियुक्त समझे, कुर्की का आदेश कर सकेगा ।

(4) उपधारा (3) के अधीन प्रत्येक कुर्की सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) में धन के संदाय की डिक्री के निष्पादन में सम्पत्ति की कुर्की के लिए उपबन्धित रीति से क्रियान्वित की जाएगी और यदि ऐसी कुर्की के पश्चात्, आरोपित व्यक्ति उपस्थित हो जाता है और न्यायालय को समाधानप्रद रूप से दर्शित कर देता है कि वह सूचना की तामील से बचने के लिए फरार नहीं हुआ था या छिपा नहीं था तो न्यायालय खर्चे के बारे में या अन्यथा ऐसे निबन्धनों पर, जैसे वह ठीक समझे, उसकी सम्पत्ति को

कुर्की से निर्मोचित करने का आदेश देगा ।

(5) कोई व्यक्ति जिस पर धारा 15 के अधीन अवमान का आरोप है अपने प्रतिवाद के समर्थन में शपथपत्र फाइल कर सकेगा, और न्यायालय या तो फाइल किए गए शपथपत्रों पर या ऐसा अतिरिक्त साक्ष्य लेने के पश्चात् जैसा आवश्यक हो, आरोप के विषय को अवधारित कर सकेगा और ऐसा आदेश पारित कर सकेगा जैसा मामले में न्याय के लिए अपेक्षित हो ।

18. **आपराधिक अवमान के मामलों की सुनवाई न्यायपीठों द्वारा किया जाना** – (1) धारा 15 के अधीन के आपराधिक अवमान के प्रत्येक मामले की सुनवाई और अवधारण कम से कम दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा किया जाएगा ।

(2) उपधारा (1) न्यायिक आयुक्त के न्यायालय को लागू न होगी ।

19. **अपीलें** – (1) अवमान के लिए दण्डित करने की अपनी अधिकारिता के प्रयोग में उच्च न्यायालय के किसी आदेश या विनिश्चय की साधिकार अपील –

(क) यदि आदेश या विनिश्चय एकल न्यायाधीश का है, तो न्यायालय के कम से कम दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ को होगी;

(ख) यदि आदेश या विनिश्चय न्यायपीठ का है, तो उच्चतम न्यायालय को होगी :

परन्तु यदि आदेश या विनिश्चय किसी संघ राज्यक्षेत्र के किसी न्यायिक आयुक्त के न्यायालय का है तो ऐसी अपील उच्चतम न्यायालय को होगी ।

(2) किसी अपील के लम्बित रहने पर, अपील न्यायालय आदेश दे सकेगा कि –

(क) उस दण्ड या आदेश का निष्पादन, जिसके विरुद्ध अपील की गई है, निलम्बित कर दिया जाए ;

(ख) यदि अपीलार्थी परिरोध में है तो वह जमानत पर छोड़ दिया जाए ; और

(ग) अपील की सुनवाई इस बात के होते हुए भी की जाए कि अपीलार्थी ने अपने अवमान का मार्जन नहीं किया है ।

(3) यदि किसी आदेश से, जिसके विरुद्ध अपील फाइल की जा सकती है, व्यथित कोई व्यक्ति उच्च न्यायालय का समाधान कर देता है कि वह अपील करने का आशय रखता है तो उच्च न्यायालय उपधारा (2) द्वारा प्रदत्त सभी शक्तियों का या उनमें से किन्हीं का प्रयोग भी कर सकेगा ।

(4) उपधारा (1) के अधीन अपील, उस आदेश की तारीख से जिसके विरुद्ध अपील की जाती है –

(क) उच्च न्यायालय की किसी न्यायपीठ की अपील की दशा में, तीस दिन के भीतर की जाएगी ;

(ख) उच्चतम न्यायालय को अपील की दशा में, साठ दिन के भीतर की जाएगी ।

20. **अवमान के लिए कार्यवाहियां करने की परिसीमा** – कोई न्यायालय अवमान के लिए कार्यवाहियां, या तो स्वप्रेरणा पर या अन्यथा, उस तारीख से, जिसको अवमान का किया जाना अभिकथित है, एक वर्ष की अवधि के अवसान के पश्चात् प्रारम्भ नहीं करेगा ।

21. **अधिनियम का न्याय पंचायतों या अन्य ग्राम न्यायालयों को लागू न होना** – इस अधिनियम की कोई भी बात न्याय प्रशासन के लिए किसी विधि के अधीन स्थापित न्याय पंचायतों या अन्य ग्राम न्यायालयों के, चाहे वे किसी भी नाम से ज्ञात हों, अवमान को लागू नहीं होगी ।

22. **अधिनियम का अवमान से सम्बन्धित अन्य विधियों के अतिरिक्त होना, न कि उनका अल्पीकारक** – इस अधिनियम के उपबन्ध, न्यायालयों के अवमान से सम्बन्धित किसी अन्य विधि के उपबन्धों के अतिरिक्त होंगे, न कि उनके अल्पीकारक ।

23. **उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों की नियम बनाने की शक्ति** – यथास्थिति, उच्चतम न्यायालय या कोई उच्च न्यायालय किसी ऐसे विषय का उपबन्ध करने के लिए जो उसकी प्रक्रिया से सम्बन्धित हो, ऐसे नियम बना सकेगा जो इस अधिनियम के उपबन्धों से असंगत न हों ।

24. **निरसन** – न्यायालय अवमान अधिनियम, 1952 (1952 का 32) एतद्द्वारा निरसित किया जाता है ।